परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानंद जी महाराज

सत्य की ओर यात्रा

संशय से सत्य तक: जीवंत गुरु के साथ 25 वर्षों की यात्रा

अनिल पांडेय

BlueRose ONE .com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Anil Pandey 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-81-182484-1-5

Cover design: Anuj
Typesetting: Tanya Raj Upadhyay

First Edition: November 2026

“सत्य की ओर यात्रा” पर अभिमत:

वैज्ञानिक जब प्रकाश के रहस्यों को समझने का प्रयास करते हैं, तो कभी उन्हें प्रकाश एक तरंग के रूप में परिलक्षित होता है, जबकि कभी वह कण के रूप में अपना स्वरूप दिखाता है। परंतु वह वास्तव में क्या है उसे ठीक-ठीक समझा नहीं जा सकता है, क्योंकि हमारी बुद्धि मात्र इन्हीं दो रूपों को समझती है। परंतु उसका वास्तविक रूप इससे भिन्न हो सकता है जिसे समझने में हम असमर्थ होते हैं। उसी तरह आध्यात्मिक अनुभवों को हम अपने-अपने ढंग से समझने का प्रयास करते है, कभी अपने तर्कों से तो कभी अपने आत्म ज्ञान से। परंतु उसे ठीक-ठीक समझा नहीं जा सकता। परंतु किसी सद्गुरु के निकट रहकर धीरे-धीरे उस सत्य के निकट पहुँचा जा सकता है।

इस पुस्तक से मेरा संबंध केवल एक पाठक का नहीं है। अनिल को मैं तब से जानता हूँ जब मैं लगभग पाँच वर्ष का था। वे मुझसे ३-४ वर्ष बड़े थे। जीवन के पाँच दशकों से भी अधिक समय में मैंने उसे बहुत निकट से देखा है—उसके बचपन, संघर्षों, प्रश्नों, महत्वाकांक्षाओं और जीवन के कठिन दौरों से लेकर आज तक। उसकी जिज्ञासु-प्रवृत्ति, तर्कशीलता और किसी बात को केवल इसलिए स्वीकार न करने की आदत कि वह परम्परा या विश्वास से कही गई है, मेरे लिए पुस्तक में निर्मित कोई लेखक-छवि नहीं है; मैं स्वयं वर्षों से इसका साक्षी रहा हूँ। इसीलिए “सत्य की ओर यात्रा” को पढ़ते हुए मेरे सामने केवल लेखक नहीं, वह पुराना मित्र भी उपस्थित रहता है जिसे मैंने जीवन से जूझते, प्रश्न करते और उत्तर खोजते देखा है। एक वैज्ञानिक होने के नाते यह जनता हूँ कि विज्ञान किसी घटना को केवल मान लेने के बजाय उसके स्वरूप, प्रभाव और परिणामों को तथ्यों और तर्कों से समझने का प्रयास करता है। अध्यात्म के क्षेत्र में भी मनुष्य के सामने ऐसा ही एक मूल प्रश्न उपस्थित होता है। क्या सत्य को केवल तर्क और बौद्धिक विश्लेषण से जाना जा सकता है, अथवा कुछ सत्य ऐसे भी हैं जिन्हें जानने के लिए स्वयं अनुभव से होकर गुजरना पड़ता है?

श्रीमद्भगवद्गीता कहती है—

“तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥”

यहाँ ‘परिप्रश्न’ और ‘तत्त्वदर्शी’ दोनों अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जिज्ञासु मन प्रश्न करता है, तर्क करता है और सत्य को अपनी बुद्धि की कसौटी पर समझने का भरसक प्रयास करता है। परंतु जब जीवन में किसी सद्गुरु का सान्निध्य प्राप्त होता है, तो इस खोज का स्वरूप धीरे-धीरे बदलने लगता है।

सद्गुरु शिष्य पर कोई निष्कर्ष आरोपित नहीं करते और न ही उससे अंधविश्वास की अपेक्षा करते हैं। वे शिष्य के मन, उसकी प्रकृति और उसकी ग्रहण-क्षमता को समझते हुए कभी किसी प्रश्न, कभी किसी संकेत, कभी साधना और कभी किसी ऐसे अनुभव के माध्यम से उसे आगे बढ़ाते रहते हैं, जिस पर चिंतन करते-करते उसकी अपनी दृष्टि बदलने लगती है। यह परिवर्तन कई बार इतनी सहजता से घटता है कि उस समय शिष्य स्वयं भी नहीं समझ पाता कि उसके भीतर क्या घटित हो रहा है। परंतु कालांतर में जब परिणाम उसे चमत्कृत कर देते हैं तब वह उन घटनाओं का अलग ढंग से विश्लेषण कर उन्हें समझने का प्रयास करता है। तब उसे सद्गुरु की कृपा और मार्गदर्शन का बोध होता है।

इस पुस्तक में इसके अनेक सुंदर संकेत मिलते हैं। कहीं सद्गुरु लेखक की किसी प्रवृत्ति को सीधे रोकने के बजाय उसी को एक नई दिशा दे देते हैं—इतनी सहजता से कि लेखक को वर्षों बाद समझ आता है कि जिसे उसने उस समय एक साधारण निर्देश समझा था, वह वास्तव में उसकी साधना का आरम्भ था। कहीं एक छोटी-सी टिप्पणी वर्षों बाद अपने भीतर छिपी शिक्षा की पोटली खोल देती है। इस प्रकार सद्गुरु केवल उत्तर नहीं देते; वे शिष्य को देखने और चिंतन करने की नई दृष्टि देते हैं।

सद्गुरु सत्य को केवल शब्दों अथवा विश्वास के रूप में नहीं देते। पहले वे उसे अनुभव करने देते हैं। समय के साथ वे शिष्य को इस योग्य बनाते हैं कि सत्य उसके अपने अनुभव और चिंतन में स्वयं ही प्रकट होने लगे।

मेरे लिए "सत्य की ओर यात्रा" की सबसे बड़ी विशेषता इसी प्रक्रिया का सत्यनिष्ठापूर्वक वर्णन है। अनिल एक वैज्ञानिक और अभियंता की प्रश्नाकुल तथा तर्कशील दृष्टि लेकर सद्गुरु के पास पहुँचता है। आरम्भ में वह प्रश्नों और अपनी स्थापित धारणाओं के साथ जाता है; लेकिन कुछ ही दिनों में ऐसे अनुभवों से उसका सामना होने लगता है जिन्हें उसकी तत्कालीन बौद्धिक संरचना आसानी से समाहित नहीं कर पाती। फिर भी वह अपनी तर्कशीलता को त्यागता नहीं है बल्कि वह अपने अनुभवों के वैकल्पिक और संशयवादी स्पष्टीकरणों को भी स्थान देना सिखाता है।

यही बात पुस्तक को विश्वसनीय बनाती है। लेखक न तो प्रत्येक असामान्य घटना को न हैं चमत्कार घोषित करता है और न ही केवल इसलिए उसे अस्वीकार करता है कि उसका तत्कालीन तार्किक स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं है। वह अपने अनुभवों को अनुभवों की तरह हैं रखता है, उन पर चिंतन करता है और कई बार उत्तर न मिलने पर उसे अनुत्तरित छोड़ देने का साहस भी दिखाता है। यही बौद्धिक सत्यनिष्ठा एक आध्यात्मिक संस्मरण को गंभीर खोज की ओर मोड़ देती है।

लगभग पच्चीस वर्षों की यह यात्रा एक साधारण से घर में धार्मिक परिवेश से शुरू होती है, त्सुकता और ज्ञान-पिपासा उसे कई ग्रंथ पढ़वाती है। सत्पुरुषों का संग उसे सद्गुरु तक पहुँचाते हैं। सद्गुरु के पास पहुँचने पर सद्गुरु की शिक्षा मात्र उनकी साधारण-सी कही हुई बातों में नहीं होती। कई बार साधारण दिखाई देने वाली घटनाएँ भी उसी शिक्षा का अंग बन जाती हैं — जिनका अर्थ शिष्य को बहुत बाद में समझ में आता है।

"सत्य की ओर यात्रा" इसलिए केवल एक शिष्य का अपने सद्गुरु के साथ बिताए वर्षों का संस्मरण नहीं है। यह उस सूक्ष्म प्रक्रिया का सजीव वृत्तांत है जिसमें एक सद्गुरु प्रश्न करने वाले मन को दबाते नहीं, बल्कि उसी प्रश्नशीलता को साधन बनाकर उसे चिंतन की ओर, चिंतन को अनुभव की ओर और अनुभव को सत्य की खोज की ओर मोड़ देते हैं। परंतु वे ऐसा करते हुए दिखाई नहीं पड़ते हैं।

मेरे लिए इस पुस्तक का महत्व कुछ और भी है। जिस व्यक्ति को मैंने बचपन से संघर्ष करते और प्रश्न करते देखा है, उसी व्यक्ति की चेतना में दशकों के दौरान आए इस परिवर्तन को पढ़ना मेरे लिए केवल साहित्यिक या आध्यात्मिक अनुभव नहीं हो सकता। इसमें मेरे लिए

एक मित्र की जीवन-यात्रा की सत्यता और रोचकता भी जुड़ी हुई है। यह पुस्तक विश्वास थोपती नहीं— एक जिज्ञासा जगाती है। यह निष्कर्ष सुनाती नहीं —यह देखने की एक नई दृष्टि देती है। और शायद सद्गुरु की शिक्षा भी अंततः यही है—सत्य को केवल बताया नहीं जा सकता; सतगुरु के सानिध्य में धीरे-धीरे शिष्य को उस सत्य को स्वयं हीं अनुभवों से समझना होता है, जो अंततः उसके योग्य हो जाता है। यही गुरु कृपा है।

डॉ. उमेश प्रसाद सिंह

०५- अगस्त २०२६

प्रस्तावना

यह ऐसी पुस्तक नहीं जिसे लिखने मैं निकला था। अपने जीवन के अधिकांश भाग में मैं इसे लिखने वाला अंतिम व्यक्ति होता — स्वभाव से एक संशयवादी और प्रशिक्षण से एक अभियंता, किसी भार-गणना के साथ किसी विश्वास की छलाँग की अपेक्षा अधिक सहज। कि ऐसा व्यक्ति एक जीवित सद्गुरु के चरणों में पच्चीस वर्ष बिताने आया, और फिर जो हुआ उसे अंकित करने, यह स्वयं इन पृष्ठों की उन बहुत-सी वस्तुओं में से पहली है जिन्हें मैं पूर्णतः समझा नहीं सकता।

मैंने इसे इसलिए लिखा है क्योंकि मुझसे कहा गया, उस मौन ढंग से जिस ढंग से सबसे महत्वपूर्ण वस्तुएँ हमसे कही जाती हैं — किसी एक स्वर से नहीं, बल्कि एक संचय से। उन अनुभवों के भार से जो उस ढाँचे में न बैठे जिसे मैंने संसार को थामने के लिए बनाया था। उस व्यक्ति की स्मृति से जिसने मेरा जीवन बदल दिया बिना एक बार भी मुझसे किसी वस्तु पर विश्वास करने को कहे। और इस सादे भय से कि यदि मैंने इसे लिख न लिया, तो यह उस संत के मार्ग जाएगा जिसकी समाधि के बगल में मैं एक बालक के रूप में बैठा था — भक्ति बची रहती, ज्ञान लुप्त हो जाता। मैं नहीं चाहता था कि जो मैंने देखा वह घिसकर एक बृहस्पतिवार और भोजन की एक गंध में बदल जाए। मैं चाहता था, एक बार, यह अंकित करना कि वास्तव में क्या कहा गया, और वास्तव में क्या किया गया, इससे पहले कि वह पतला होकर किंवदंती में बदल जाए।

इस पुस्तक को पढ़ने के विषय में एक शब्द। यह एक संस्मरण है, न कोई शास्त्र और न प्रमाण की कोई कृति। मैंने पूरे में एक अधिवक्ता के बजाय एक ईमानदार साक्षी होने का प्रयास किया है। जहाँ मुझे ठीक-ठीक शब्द स्मरण हैं, मैंने उन्हें ठीक-ठीक शब्दों के रूप में अंकित किया है — और जहाँ वे शब्द मेरे सद्गुरु के थे, हिंदी में कहे गए, मैंने उन्हें उनकी अपनी भाषा में रखा है, क्योंकि वे इस पुस्तक की सबसे सच्ची वस्तुएँ हैं और मैं उनका अनुवाद करके उन्हें बेहतर नहीं बनाऊँगा। जहाँ मुझे केवल किसी वस्तु का आकार स्मरण है, मैंने ऐसा कहा है। जहाँ मैं नहीं जानता, मैंने लिखा है कि मैं नहीं जानता। मैंने हर पृष्ठ पर मुझमें बैठे संशयवादी

को उसकी पूरी बात कहने दी है, क्योंकि वह समूचे मार्ग मेरे साथ था और उसे अब छोड़ देना बेईमानी होगी।

सबसे बढ़कर, मैंने आपको किसी वस्तु के विषय में आश्वस्त करने का प्रयास नहीं किया है। मेरे सद्गुरु ने कभी मुझे आश्वस्त करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने मुझे भोगने देकर, और मुझ पर देखने का विश्वास करके सिखाया। मैंने उसी ढंग से लिखने का प्रयास किया है — आपके बगल में चलने का, जैसे वे मेरे बगल में चले, और आपको वह दिखाने का जो मैंने देखा, और वह देखना आप पर छोड़ देने का।

शेष, जैसा आप अंत में पाएँगे, आपका है।

अनिल पाण्डेय

भूमिका

वे सद्गुरु जिनकी उपस्थिति इन पृष्ठों को भरती है, परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानंद जी महाराज हैं — उस वंश के एक जीवित संत जो चित्रकूट के जंगलों में अनुसुइया के परमहंस परमानंद जी से प्रवाहित होता है, और हमारे अपने युग में, यथार्थ गीता के रचयिता। यह पुस्तक उनकी नहीं है, और उनके रचयितृत्व या समर्थन का कोई दावा नहीं करती; यह एक शिष्य का निजी विवरण है, मेरे अपने स्वर में लिखा गया, कि मैंने उन वर्षों में क्या अनुभव किया जो मैं उनके निकट बिताने का सौभाग्य पा सका। शिक्षा उनकी है; कहना, अपनी सारी सीमाओं के साथ, पूर्णतः मेरा है।



The dhuna ghar — Paramanand Ji Maharaj's mandir, where Swamiji prays and meditates before his own Master.

यथार्थ गीता भगवद्गीता पर एक भाष्य है — किन्तु उसे केवल यही कहना उसे कम आँकना है जो उसने बहुत-से जीवनों के साथ किया, मेरे सहित। जहाँ अधिकांश भाष्य कृष्ण के शब्दों पर पहले से ढेर की गई व्याख्या के पर्वत में जोड़ते हैं, वहाँ यथार्थ गीता कुछ अधिक विरल करती है: वह गीता को वास्तविक साधना की एक नियमावली के रूप में पढ़ती है, एक ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखी गई जिसने वह साधना की थी और उसके अंत तक पहुँचा था। वह लगभग

पंद्रह अंतरराष्ट्रीय भाषाओं में और उतनी ही भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत की जा चुकी है, और हर उस व्यक्ति को निःशुल्क दी गई है जो उसे चाहता है। वह मुझ तक पहुँची, एक ऊबी हुई दोपहर बम्बई में एक मित्र के फ़्लैट में, एक ऐसी पुस्तक के रूप में जिसे मैं पहले ही न पढ़ने का निश्चय कर चुका था। वह वैसी न रही।

मुझे स्पष्ट रूप से कहना चाहिए कि यह पुस्तक क्या है और क्या नहीं, ताकि कोई पाठक स्वयं को गुमराह हुआ अनुभव न करे। यह स्वामी जी की जीवनी नहीं है; वंश की प्रकाशित जीवनियाँ वह काम करती हैं, और जहाँ उनके अपने जीवन का प्रश्न है वहाँ मैंने उन पर सहारा लिया है। यह धर्मशास्त्र की कोई कृति नहीं है, यद्यपि यह हर मोड़ पर धर्मशास्त्र को छूती है, क्योंकि मेरे सद्गुरु का समूचा जीवन देह में ढला धर्मशास्त्र था। और यह यह सिद्ध करने का प्रयास नहीं है कि वे वही थे जो मैं मानने आया कि वे थे। एक प्रमाण उनका और आपका, दोनों का अपमान करेगा।

जो यह है, वह एक अभिलेख है — उतना सावधान जितना एक अभियंता उसे बनाना जानता है — कि उनके निकट होना वास्तव में कैसा था। वह रुका हुआ मन और वह पूर्वज्ञात पुत्र; वह वर्षा जो उनके बताए दिन आई; वे स्वप्न जो मृत्यु के व्याकरण में बोले और जागृति का अर्थ रखते थे; वे छोटे असह्य उत्तर जो उन्होंने सबसे बड़े प्रश्नों को दिए। मैंने इन्हें सपाट रखा है, बिना अलंकरण के, और उन्हें संचित होने दिया है। यदि वे प्रतीति कराते हैं, तो वे उसी ढंग से कराएँगे जिस ढंग से उन्होंने मुझे कराई: धीरे-धीरे, प्रतिरोध के विरुद्ध, एक-एक अनुभव करके।

पुस्तक के आकार के विषय में एक टिप्पणी। यह एक संशयवादी और उसके सिद्धांत से आरम्भ होती है, और वह उस संशयवादी को नहीं त्यागती; वह अंतिम पृष्ठ तक उपस्थित है, और मेरी पत्नी भी, जिन्होंने यह सब निकटतम दूरी से पच्चीस वर्ष देखा है और, प्रेम के साथ और बिना किसी क्षमायाचना के, अनाश्वस्त बनी हुई हैं। पुस्तक दोनों को थामती है। यह पहली भेंटों, जंगल और उसके स्वप्नों, एक असाधारण शिक्षा के अधीन जिए गए एक साधारण जीवन के लंबे वर्षों से होकर बढ़ती है, और पहुँचती है — अंत के निकट — किसी घोषणा पर नहीं बल्कि एक देहली पर। उनका जीवन देर से आता है, नौवें भाग में, और जान-

बूझकर: मैं उनसे एक उपस्थिति के रूप में मिला, एक जीवनी के रूप में नहीं, और मैं चाहता था कि आप उनसे उसी ढंग से मिलें।

इस पुस्तक को पढ़ने के लिए आपको किसी वस्तु पर विश्वास करने की आवश्यकता नहीं है। आपको केवल मेरे बगल में चलने, और देखने की आवश्यकता है। बस इतना ही उन्होंने कभी मुझसे माँगा। बस इतना ही मैं आपसे माँगता हूँ।

सत्य की ओर यात्रा

विधि पर एक टिप्पणी

> जहाँ मुझे शब्द ठीक-ठीक स्मरण हैं, वहाँ मैंने उन्हें उन्हीं शब्दों में रख दिया है। जहाँ मुझे केवल किसी वार्तालाप का आकार-भर याद है, वहाँ मैंने ऐसा कह दिया है। और जहाँ मैं नहीं जानता, वहाँ मैंने लिख दिया है कि मैं नहीं जानता। सत्य पर लिखी गई पुस्तक छोटे-छोटे सत्यों के प्रति लापरवाह नहीं हो सकती।

◆

वह व्यक्ति जिसे एक और गीता की आवश्यकता न थी

◆

विषय-सूची

अध्याय एक: वह बहस जो मैंने जीती 1
अध्याय दो: वट-वृक्ष के नीचे 8
अध्याय तीन: खाली फ़्लैट 24
अध्याय चार: वह दूरभाष 34
अध्याय पाँच: प्रतीक्षालय में बैठा वह व्यक्ति 38
अध्याय छह: टूटी हुई जीप 43
अध्याय सात: वह फ़र्श 49
अध्याय आठ: वह श्वेत प्रकाश 54
अध्याय नौ: वे सब एक हैं 62
अध्याय दस: चिता 68
अध्याय ग्यारह: तीन उतर आए 73
अध्याय बारह: बंदर और संतरा 77
अध्याय तेरह: वापसी का मार्ग 102
अध्याय चौदह: चौथी मंज़िल पर चाय 106
अध्याय पंद्रह: मेरे हाथों में वह बालक 120
अध्याय सोलह: वे जानते थे 124
अध्याय सत्रह: मैंने आपको देखा है 130
अध्याय अठारह: मैं आपके पास कब आऊँगा? 136
अध्याय उन्नीस: वह आदेश जो मैंने नहीं माना 141
अध्याय बीस: दर्पण में सद्गुरु 147
अध्याय इक्कीस: वह भाषा जो उन्होंने मुझे सिखाई 156
अध्याय बाईस: गरुड़ और मगर 163
अध्याय तेईस: पत्थर पर माता 169

अध्याय चौबीस: वह चिता, चिता न थी 174
अध्याय पच्चीस: जब मूसलधार बरसती है 180
अध्याय छब्बीस: वह चाल जो मैं पहले ही देख चुका था 199
अध्याय सत्ताईस: आपको किसने बताया? 204
अध्याय अट्ठाईस: शिखर पर वह झील 209
अध्याय उनतीस: नौ ऐब 233
अध्याय तीस: वे कौन थे, इससे पहले कि मैं उन्हें जानता 242
अध्याय इकतीस: उन्होंने मुझे देखना सिखाया 254
परिशिष्ट — वे वचन जो उन्होंने कहे 259
वंश-परम्परा पर एक टिप्पणी 262
शब्दावली 264
संदर्भ-ग्रंथ 266

अध्याय एक:

वह बहस जो मैंने जीती

यदि किसी ने मुझसे कहा होता कि एक दिन मैं अपना जीवन किसी संत को समर्पित कर दूँगा, तो सम्भवतः मैं शिष्टता से मुस्कुराता और वहाँ से चल देता।

मैं यहाँ सावधान रहना चाहता हूँ, क्योंकि इस वाक्य का ग़लत अर्थ निकाला जा सकता है। बात यह नहीं थी कि मुझे संतों पर विश्वास नहीं था। मेरे पास उनके विषय में एक सिद्धांत था — और यह एक भिन्न वस्तु है, तथा अब मैं सोचता हूँ, एक अधिक ख़तरनाक वस्तु। अविश्वास कम-से-कम मनुष्य को बेचैन तो छोड़ देता है। किन्तु एक सिद्धांत उसे सुला देता है।

मेरा सिद्धांत यह था। मनुष्य अर्थ के बिना जी नहीं सकता, और अर्थ को स्वयं अपने बल पर उत्पन्न करना महँगा पड़ता है। अतः समाज किसी एक व्यक्ति को नियुक्त कर देता है कि वह उनके लिए अर्थ उत्पन्न करे। उस व्यक्ति के चारों ओर समाज अपनी अभिलाषाएँ जमा करता जाता है — अपना शोक, अपने अनचुकाए ऋण, अपनी यह आवश्यकता कि दुःख निरर्थक नहीं है, ऐसा विश्वास बना रहे। एक-दो पीढ़ियों में ये जमा हुई वस्तुएँ कठोर होकर जम जाती हैं। मनुष्य लुप्त हो जाता है; प्रतिमा शेष रह जाती है। मैंने यह प्रक्रिया निकट से देखी थी — छोटे-छोटे रूपों में, साधारण जीवनों में। मैं इसे छल नहीं मानता था। मैं इसे गणित मानता था।

यह एक अच्छा सिद्धांत है। यह बहुत कुछ समझा देता है। इसमें उन सभी अच्छे सिद्धांतों वाला विशेष आकर्षण है — कि वह प्रमाण को भी समझा देता है, और जो कोई उससे असहमत हो, उसे भी समझा-बुझाकर किनारे कर देता है। मैंने अपने वयस्क जीवन के अधिकांश भाग तक इसे थामे रखा, और एक बार भी यह ध्यान न दिया कि मैंने इसकी कभी परीक्षा ही नहीं ली।

एक ऐसे व्यक्ति के लिए यह कोई छोटी स्वीकारोक्ति नहीं है, जिसने अपना समूचा कार्यजीवन वस्तुओं की परीक्षा लेने में बिताया हो।

◆

मैं एक अभियंता हूँ।

मैं यह उस प्रकार नहीं कहता जिस प्रकार अन्य लोग कहते हैं कि वे उत्तर प्रदेश के हैं, या कि वे बाएँ हाथ से काम करते हैं — मूल के विषय में एक तथ्य के रूप में। मैं यह उस प्रकार कहता हूँ जिस प्रकार कोई व्यक्ति उस यंत्र का वर्णन करे जिसमें से वह तीस वर्षों से देखता आया है, जिसने न केवल यह गढ़ा है कि वह क्या देखता है, बल्कि यह भी कि वह देखने में समर्थ ही किस वस्तु को है।

एक अभियंता का सत्य के साथ सम्बन्ध भावुकता-रहित होता है। आपके हाथ में एक विशिष्टि थमा दी जाती है। आपको ऐसी सामग्री थमा दी जाती है जो ठीक वैसा व्यवहार नहीं करेगी जैसा पुस्तिका वचन देती है। आपको एक बजट थमा दिया जाता है और एक तिथि। और फिर आपको वह वस्तु थमा दी जाती है जिसका सामना अधिकांश व्यवसाय कभी सीधे नहीं करते: एक भार। कोई वस्तु या तो खड़ी रहेगी या नहीं रहेगी। संरचना आपके अभिप्रायों को नहीं जानती। वह नहीं जानती कि आपने अपनी गणनाओं पर कितनी सच्चाई से विश्वास किया था। उसे इससे कोई सरोकार नहीं कि आपके गुरु ने आपसे क्या कहा, या आपका समाज किसे स्वीकार करता है। वह केवल उसी का उत्तर देती है जो वास्तव में सत्य है।

यह एक कठोर शिक्षा है और यह स्थायी चिह्न छोड़ जाती है। यह सिखाती है कि आत्मविश्वास और सत्यता दो असम्बद्ध राशियाँ हैं। यह सिखाती है कि किसी भी गणना में सबसे ख़तरनाक संख्या वही होती है जिसे जाँचना सबने बंद कर दिया है। और यह भाषा के प्रति एक विशेष अधीरता सिखाती है — इस बात के प्रति कि किस प्रकार शब्दों को ऐसी संरचनाओं में जोड़ा जा सकता है जो देखने में सुदृढ़ लगें, सुनने में सुदृढ़ लगें, और जो रत्ती-भर भी भार न सँभालें।

मैंने ऐसी मशीनें बनाई थीं जो स्वयं चलती थीं। इससे पहले कि कम्प्यूटरों ने मेरा कार्यजीवन अपने अधिकार में ले लिया, मैंने अपने आरम्भिक वर्ष लार्सन एंड टूब्रो में रोबोट बनाते हुए बिताए थे — ऐसी भुजाएँ जो एक ही गति को दस हज़ार बार बिना किसी शिकायत के दोहरातीं, और जो उसी क्षण थमकर रुक जातीं जिस क्षण आपके तर्क की एक पंक्ति भी ग़लत होती। ऐसी मशीन से कोई बहस नहीं की जा सकती। वह न झुकती है, न समझौता करती है। वह बस वही करती है जो आपकी समझ वास्तव में थी — न कि वह, जो आप मानते थे कि

वह है। जिस व्यक्ति को किसी मशीन ने कई हज़ार बार सुधारा हो, उसमें मन की ऐसी आदतें पड़ जाती हैं जिन्हें वह मंदिर के द्वार पर छोड़ नहीं सकता।

जब यह कथा आरम्भ होती है, तब तक मैं बम्बई में था, एक ऐसे कार्यजीवन के मध्य में जो इस्पात से चलकर सॉफ़्टवेयर तक आ पहुँचा था — बड़े संगठनों के लिए एंटरप्राइज़ प्रणालियाँ लागू करते हुए। अर्थात् मैं मशीनों से आज्ञापालन कराने से आगे बढ़कर मनुष्यों और प्रक्रियाओं से आज्ञापालन कराने तक आ गया था, और यह पा लिया था कि दूसरा काम कहीं अधिक कठिन है और कहीं कम ईमानदार।

मैं बहुत पढ़ता था — अधिकतर अपने क्षेत्र से बाहर, अधिकतर सप्ताहांतों में। मैं आनंद के लिए बहस करता था। यदि आपने मुझसे पूछा होता कि मैं जीवन से क्या चाहता हूँ, तो मैं आपको काम और परिवार के विषय में एक समझदारी-भरा उत्तर देता, और वह सच होता, और वह पूरा सच नहीं होता, और मुझे इसका पता ही न होता।

◆

पहली धार्मिक वस्तु जो मुझे स्मरण है, वह कोई सिद्धांत नहीं है। वह ऊष्मा है।

अम्बेडकर नगर ज़िले में मेरे गाँव में एक संत की समाधि थी। मैं उनका नाम नहीं जानता। मुझे विश्वास भी नहीं कि मैंने उसे कभी जाना हो। कुछ विशेष बृहस्पतिवारों को घर की स्त्रियाँ वहाँ जातीं और भोजन पकातीं, और जो पकता वह चढ़ाया जाता और फिर बाँटा जाता, और लोग एकत्र होते, खाते, साथ बैठते, और कुछ ऐसा सम्पन्न हो जाता जिसे नाम देना किसी ने आवश्यक न समझा।

इसका जो मुझे स्मरण है, वह पूर्णतः भौतिक है। प्रातःकाल भूमि पर नीचे-नीचे ठहरे हुए लकड़ी के धुएँ की गंध। टहनियों की झाड़ू से बुहारी गई धरती का वह विशेष स्वच्छ-खुरचा हुआ रूप। फ़र्श पर बैठे रहना, हाथों में गरम भोजन लिए हुए। स्त्रियों के स्वर, जो उस स्थान के निकट आते ही अपना सुर बदल लेते — ठीक-ठीक गम्भीर नहीं, पर भिन्न प्रकार से सधे हुए, जैसे किसी कक्ष में प्रवेश करते समय स्वर बदल जाता है जहाँ कोई सो रहा हो।

यही मेरा धर्म था, जब तक मैं इतना बड़ा न हो गया कि प्रश्न पूछ सकूँ — और एक बालक के लिए यह पूर्णतः उपयुक्त धर्म था। बालकों को सिद्धांत की आवश्यकता नहीं होती। बालक

पवित्रता का अनुभव तापमान और गंध के रूप में करते हैं, और किसी विशाल वस्तु के भीतर छोटे होने की उस अनुभूति के रूप में।

प्रश्न बाद में आए, जैसे कि वे आते ही हैं। मैंने पूछा कि वह संत कौन थे। मुझे उत्तर मिले। वे परस्पर सहमत न थे और उनमें से कोई विस्तृत न था। मैंने पूछा कि उन्होंने क्या शिक्षा दी थी। यहाँ मुझे उत्तर अधिक स्पष्ट रूप से स्मरण हैं, क्योंकि कोई उत्तर था ही नहीं। कोई नहीं जानता था। वे एक महान आत्मा थे; इतना निश्चित था। किन्तु उन्होंने वास्तव में क्या कहा था, वास्तव में किसका अभ्यास किया था, वास्तव में क्या जाना था — यह बचा न रह सका था। यह घिस-घिसकर मिट चुका था, और उसके स्थान पर शेष रह गया था वह बृहस्पतिवार, वह भोजन पकाना, वह धुआँ, वह जमघट।

मैं यह उन लोगों का उपहास करने के लिए नहीं कहता जिनमें से मैं आया हूँ। मैं उनसे प्रेम करता था और वे मूर्ख न थे। मैं इसे इसलिए कहता हूँ, क्योंकि एक बालक इससे क्या निष्कर्ष निकालता है, और वह निष्कर्ष आगामी तीस वर्षों में उसके साथ क्या करता है।

मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि भक्ति ज्ञान की मृत्यु से बचे रहने में उल्लेखनीय रूप से निपुण है।

एक बार जब आप यह देख लेते हैं — एक बार जब आप किसी समुदाय को किसी कर्मकांड को पूर्णता से निभाते हुए और उसका समस्त अभिप्राय खोते हुए देख लेते हैं — तब आप इसे अनदेखा नहीं कर सकते। आप इसे सर्वत्र लक्षित करने लगते हैं। मंदिरों में। उन लोगों द्वारा श्लोकों के पाठ में, जो आपसे स्पष्ट रूप से कह देंगे कि वे नहीं जानते कि उन शब्दों का अर्थ क्या है, और इसे कोई समस्या नहीं मानते। और, यदि आप ईमानदार हैं, तो स्वयं अपने भीतर भी।

अतः मैंने एक बचाव विकसित कर लिया। किसी भी आध्यात्मिक दावे से मैं वही माँग करता था जो किसी अभिकल्प (डिज़ाइन) से करता था: मुझे भार-पथ दिखाओ। मुझे दिखाओ कि यह उससे कैसे जुड़ता है। मुझे दिखाओ कि यदि यह असत्य होता, तो क्या भिन्न होता।

उस प्रश्न से बहुत कम बच पाता है। मैंने इस तथ्य को कि बहुत कम बचता है, इस बात की पुष्टि मान लिया कि मैं सही प्रश्न पूछ रहा हूँ।

मुझे यह सूझा ही नहीं कि कोई प्रश्न पूर्णतः वैध हो सकता है और फिर भी ग़लत उपकरण हो सकता है। आप किसी रंग को तौल नहीं सकते। तराज़ू का कुछ भी अंकित न कर पाना उस रंग के विषय में कोई प्रमाण नहीं है।

◆

वह पुस्तक मुझे विनय से मिली, घाटकोपर में, एक भोजनालय के बाहर।

उस वस्तु को मैं उस क्षण से कहीं अधिक स्पष्टता से स्मरण करता हूँ।

मुझे स्मरण है कि मैंने उसे उलट-पुलटकर देखा और पूछा कि इसे किसने लिखा है, और मुझे बताया गया: स्वामी अड़गड़ानंद।

मुझे स्मरण है कि मैंने पूछा कि यह क्या है, और मुझे बताया गया: श्रीमद्भगवद्गीता पर एक भाष्य।

और मुझे स्मरण है, एक ऐसी सटीकता के साथ जिस पर मुझे गर्व नहीं, वह आनंद जो मैंने अनुभव किया। क्योंकि मेरे पास एक तर्क तैयार था। मैं उसे वर्षों से बिना अवसर के ढोता आ रहा था — जैसे कोई व्यक्ति ऐसा औज़ार ढोता है जो उसकी किसी वस्तु में ठीक न बैठता हो।

मैंने कुछ इससे मिलता-जुलता कहा।

गीता इस सभ्यता के इतिहास में सर्वाधिक भाष्य-प्राप्त ग्रंथ है। शंकर ने इस पर लिखा। रामानुज ने इस पर लिखा और शंकर से उस सर्वाधिक मौलिक बिंदु पर असहमत हुए जिस पर असहमत हुआ जा सकता था। मध्व ने इस पर लिखा और दोनों से असहमत हुए। ज्ञानेश्वर ने इस पर मराठी में उस आयु में लिखा जब अधिकांश मनुष्य अपनी मूर्खता से उबर भी नहीं पाते। तिलक ने इस पर एक ब्रिटिश कारागार में लिखा और इसमें कर्म का आह्वान पाया। गांधी ने उन्हीं अठारह अध्यायों को पढ़ा और इसमें अहिंसा का आह्वान पाया। अरविंद ने इसमें विकास (उद्विकास) पाया। विनोबा ने वही पाया जो गांधी ने पाया, और उसे अधिक कोमलता से कहा। राधाकृष्णन ने इसे ऑक्सफ़ोर्ड को समझाया।

ये छोटे मनुष्य न थे। इनमें से कोई भी असावधान न था। इनमें से कोई भी निष्कपट में असत्य न था।

और वे परस्पर सहमत नहीं हैं।

अब विचार कीजिए कि इसका अर्थ क्या है, मैंने कहा — और यही वह भाग है जिस पर मैं प्रसन्न था। यदि भाष्य ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ होता, तो यह विषय नवीं शताब्दी में ही समाप्त हो गया होता। एक व्यक्ति ने इसे ठीक-ठीक समझ लिया होता और शेष सब पादटिप्पणियाँ भर होते। प्रत्येक उस क्षेत्र में यही होता है जहाँ ज्ञान वास्तव में हस्तांतरित होता है। कोई इस विषय पर चौदहवाँ प्रतिस्पर्धी विवरण नहीं लिखता कि कोई शहतीर भार कैसे सँभालती है। वह प्रश्न सुलझ चुका था और वह समाधान टिका हुआ है, क्योंकि उसकी परीक्षा किसी ऐसी वस्तु के विरुद्ध ली गई थी जिसका कोई मत नहीं होता।

गीता बारह सौ वर्षों में नहीं सुलझी। अतः या तो इसमें कुछ भी निश्चित नहीं है — जिस पर मैं विश्वास नहीं करता था, क्योंकि उस स्तर के मनुष्य अपना जीवन किसी शून्य पर नहीं लगाते — या फिर इसमें जो कुछ भी है, वह उस प्रकार की वस्तु ही नहीं है जो भाष्य के माध्यम से हस्तांतरित होती हो।

तो मुझे दूसरा वाला दीजिए, मैंने कहा। मुझे वही कहने दीजिए जो मैं वास्तव में सोचता हूँ। व्याख्याओं का बहुगुणन ज्ञान की अनुपस्थिति का प्रमाण है, उसकी प्रचुरता का नहीं। एक ही तटरेखा के सौ मानचित्र, जिनमें कोई दो एक समान न हों, आपको यह नहीं बताते कि वह तटरेखा समृद्ध है। वे आपको यह बताते हैं कि उस पर कोई चला ही नहीं।

और फिर अंतिम बात, जिसका मुझे सबसे अधिक अभिप्राय था।

पुस्तक स्वयं इसके विपरीत कोई दावा नहीं करती। अर्जुन कृष्ण से कोई ग्रंथ नहीं माँगते। कृष्ण अर्जुन से पढ़ने को नहीं कहते। उन दोनों के बीच उस रणभूमि पर जो कुछ भी बीतता है, वह सूचना नहीं है; यदि वह सूचना होती, तो उसे किसी दूत के हाथ भेजा जा सकता था और तब दोनों में से किसी को वहाँ खड़े रहने की आवश्यकता ही न होती। सत्य, यदि ऐसी कोई वस्तु है, तो उसे भोगना पड़ता है। वह किसी मनुष्य पर घटित होना चाहिए।

मैंने अपना समूचा कार्यजीवन विशिष्टियाँ (स्पेसिफ़िकेशन) पढ़ने में बिताया था। मैं ठीक-ठीक जानता था कि विशिष्टि और वस्तु में क्या अंतर है। आप जल की आँकड़ा-तालिका को अंतिम दशमलव तक पढ़ सकते हैं — उसका घनत्व, उसकी वाष्पन-ऊष्मा, चार अंश पर उसका विचित्र व्यवहार — और अंत में आप उतने ही प्यासे रहेंगे जितने आरम्भ में थे।

तो फिर, मैंने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा, मैं जल का एक और वर्णन क्यों पढ़ूँ?

◆

उन वर्षों में मैंने उस तर्क पर बार-बार लौटकर विचार किया है। मैंने उसमें वह दोष खोजा है जैसे कोई उस दरार को खोजता है जिसने किसी संरचना को गिरा दिया हो।

उसमें कोई दोष नहीं है। यही वह विचित्र और कठिन बात है। प्रत्येक चरण सुदृढ़ है। मैं आज भी वही तर्क दूँगा। एक अर्थ में यह समूची पुस्तक इस बात का एक विस्तृत प्रमाण है कि वह तर्क सही था।

वह सही था, और वह किसी काम का न था, और बहुत लंबे समय तक मैं यह नहीं समझ पाया कि ये दोनों बातें एक साथ सत्य कैसे हो सकती हैं।

◆

विनय ने मुझसे बहस नहीं की।

मैं इस विषय में सटीक रहना चाहता हूँ, क्योंकि यह इस अध्याय की किसी भी अन्य बात से अधिक महत्वपूर्ण है, और क्योंकि इतनी दूरी से स्मृति वाक्यों की विश्वसनीय साक्षी नहीं होती। मुझे उनके ठीक-ठीक शब्द स्मरण नहीं हैं। मैंने प्रयास किया है। मुझे जो स्मरण है वह उस घटना का आकार है, और वह आकार यह था: उन्होंने मुझे कह लेने दिया, उन्होंने पुस्तक का बचाव नहीं किया, उन्होंने उसके रचयिता का बचाव नहीं किया, उन्होंने मुझे यह नहीं कहा कि मैं ग़लत हूँ, और उन्होंने पुस्तक वापस नहीं ली।

तब से मैंने इस पर बहुत विचार किया है। उस समय मैंने इसे एक विजय के रूप में अंकित किया। जो व्यक्ति उत्तर नहीं देता, उसके पास कोई उत्तर नहीं होता।

उस समय मैं यह नहीं जानता था कि एक तीसरी सम्भावना भी होती है — कि किसी व्यक्ति के पास उत्तर हो, और वह जानता हो कि वह उत्तर शब्दों में नहीं, केवल समय में दिया जा सकता है।

अध्याय दो:

वट-वृक्ष के नीचे

अम्बेडकर नगर के एक बरगद के पेड़ और बम्बई की एक कार्यशाला के रोबोट के बीच एक दूरी है, और मैंने उसे पैदल तय किया।

मैं इसका उल्लेख गर्व से नहीं करता, यद्यपि मैं यह ढोंग भी नहीं करूँगा कि इसमें रत्ती-भर गर्व नहीं है। मैं इसका उल्लेख इसलिए करता हूँ, क्योंकि वही यात्रा इस बात का कारण है कि मैं विनय के थमाए हुए ग्रंथ को पढ़ न सका। किसी मनुष्य का दर्शन विरले ही ऐसी वस्तु होती है जिस तक वह सोच-विचार कर पहुँचा हो। वह प्रायः वही आकार होता है जो उसके जीवन ने उस पर अंकित कर दिया हो। मुझ पर यह आकार कठोरता से, लंबे समय तक अंकित हुआ था, और वह आकार यह था:

संसार सत्यापन-योग्य ज्ञान पर लगाए गए प्रयत्न के आगे झुकता है, और किसी अन्य वस्तु के आगे नहीं।

मैंने उस विश्वास को अपनाया नहीं था। मैंने उसे जिया था। उस दोपहर तक मेरे जीवन का प्रत्येक वर्ष उसका प्रमाण था। अतः जब एक मित्र ने मुझे एक ऐसी पुस्तक दी जो यह प्रस्तावित करती थी कि सर्वोच्च ज्ञान अध्ययन से प्राप्य नहीं है, तो मैंने उसे इसलिए अस्वीकार नहीं किया कि मैं अहंकारी था। मैंने उसे इसलिए अस्वीकार किया क्योंकि मेरे साथ जो कुछ भी कभी घटा था, वह सब उसके विरुद्ध तर्क देता था।

सब कुछ, अर्थात्, एक बात को छोड़कर। और उस एक बात को मैंने इतनी सावधानी से सँभालकर रख दिया था कि मुझे वह और पच्चीस वर्षों तक नहीं मिलने वाली थी।

◆

मैंने बम्बई में, पहली कक्षा में, एक नगरपालिका विद्यालय में पढ़ाई आरम्भ की। मुझे उसका लगभग कुछ भी स्मरण नहीं है, और जो मुझे स्मरण नहीं, उसे मैं अलंकृत नहीं करूँगा।

फिर हम गाँव गए, और तीन वर्षों तक मेरी शिक्षा एक बरगद के पेड़ के नीचे हुई।

मैं चाहूँगा कि पाठक इस वाक्यांश के साथ ठहरे, न कि इसे पार कर आगे बढ़ जाए, क्योंकि यह उस प्रकार का विवरण बन चुका है जो प्रेरक भाषणों में प्रकट होता है और दोहराव से घिसकर चिकना हो गया है। वह प्रेरक नहीं था। वह बस वही था जो उपलब्ध था।

विद्यालय तीन किलोमीटर दूर था। मैं उसे नंगे पाँव, दिन में दो बार, सप्ताह में छह दिन चलकर तय करता था, और मैं इसे कष्ट नहीं मानता था क्योंकि मेरे पास कोई तुलना उपलब्ध ही न थी। उस स्थान पर कोई भी विद्यालय जाने के लिए जूते नहीं पहनता था। किसी कष्ट के लिए यह आवश्यक है कि निकट कोई ऐसा हो जो उसे न भोग रहा हो।

चलने के अंत में वह पेड़ था। कोई भवन नहीं जिसके बगल में एक पेड़ हो — वह पेड़ ही विद्यालय था। बरगद इस प्रयोजन के लिए एक अच्छा चुनाव है, और सम्भवतः यही कारण है कि हर वह गाँव जो एक बरगद पा सका, उसका उपयोग करता था: उसकी छत्र-छाया विस्तृत होती है, छाया घनी होती है, हवाई जड़ें नीचे उतरकर वहाँ दीवारें बना देती हैं जहाँ कोई दीवार नहीं होती। गरमी के महीनों में वही हमारी समूची शिक्षा की वास्तुकला था। वही छत था, वही दीवार, और वही कारण कि विद्यालय वहीं खड़ा था, न कि पचास गज़ दूर।

सब लड़के। कोई लड़की नहीं। मैं इसे अंकित करता हूँ क्योंकि यह उस समय और उस स्थान का सत्य है, और क्योंकि जो पुस्तक अपने ही समुदाय के विषय में असहज बातें कहने को तैयार है, वह शेष हर बात में विश्वास किए जाने का अधिकार अर्जित कर लेती है।

गुरुजी मुंशी जी थे।

मुझे स्मरण नहीं कि मुंशी जी ने मुझे क्या पढ़ाया। मुझे स्मरण है कि उन्होंने मुझे पढ़ाया। ये दोनों एक ही तथ्य नहीं हैं, और इन दोनों के बीच का अंतर, अब मैं सोचता हूँ, वह सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है जो उस पेड़ ने मुझे दी — यद्यपि तीस वर्ष और महाराष्ट्र का एक जंगल बीत गए, तब कहीं जाकर मैं समझ पाया कि मुझे क्या दिखाया गया था।

क्योंकि यही वह बात है जिसे मैं कभी समझा-बुझाकर टाल नहीं पाया। वह व्यवस्था काम करती थी। एक ऐसे व्यक्ति द्वारा पढ़ाया गया बालक, जिसके पास कोई भवन न था, कोई उपकरण न था, कोई पुस्तकालय न था, न बिजली और न ही ऐसा कोई वेतन जिसे वेतन

कहा जा सके — जहाँ तक मैं निर्धारित कर सकता हूँ, जो वास्तव में महत्वपूर्ण था उसमें किसी हानि में न था। गुरु से शिष्य तक जो कुछ भी जाता है — और अब मुझे संदेह होता है कि वह सूचना नहीं है, और तब मुझे यह संदेह न था — वह किसी भवन के बिना भी पूर्णता से यात्रा करता है।

मैं उस सिद्धांत से पुनः मिलने वाला था, पचास गुना तीव्रता के साथ, रात में एक जंगल में भूमि पर बैठे हुए। और मैं उसे पहचान नहीं पाने वाला था।

◆

फिर पुनः बम्बई। घाटकोपर। एक नगरपालिका विद्यालय।

उसमें कोई शुल्क नहीं लगता था। वह हमें दोपहर का भोजन भी देता था।

बीते बीस वर्षों में मैंने उस भोजन के विषय में उन दस वर्षों की तुलना में कहीं अधिक सोचा है जो मैंने उसे खाने के बाद बिताए। उस समय वह बस दिन का मध्य था। तुम जाते, तुम खाते, तुम लौट आते। किसी ने नहीं समझाया कि वह क्या था, और मुझे प्रसन्नता है कि किसी ने नहीं समझाया, क्योंकि जिस बालक को यह बता दिया जाए कि वह दान पा रहा है, वह उसके बाद जीवन-भर भिन्न ढंग से खाता है।

किन्तु गणित जटिल नहीं है और मैंने अंततः उसे हल कर लिया। किसी ऐसे व्यक्ति ने, जो मुझसे कभी नहीं मिला और जिसे मैं कभी पहचान नहीं पाऊँगा, यह निश्चय किया कि मुझ जैसे बालकों को कक्षा और भोजन के बीच चुनाव न करना पड़े। उस निर्णय से लेकर उसे लेने वाले व्यक्ति तक मैं कोई रेखा नहीं खींच सकता। मैं किसी को धन्यवाद नहीं दे सकता। वह लाभ गुमनाम रूप से आया, एक ऐसी दिशा से जिसे मैं देख नहीं सकता था, और उसने एक समूचे जीवन की आगामी दिशा बदल दी।

मैं इसे यहाँ एक ऐसे कारण से अंकित करता हूँ जो अब से चार सौ पृष्ठ आगे महत्वपूर्ण होगा। मुझे तीन दशक इस बात पर बल देते हुए बिताने थे कि मैं कुछ भी ऐसा स्वीकार न करूँ जिसे मैंने सत्यापित न किया हो। और फिर भी बारह वर्ष की आयु से पहले मेरे जीवन में सबसे बड़ा एकल योगदान वह वस्तु थी जिसे मैंने न माँगा था, न अर्जित किया था, न जिसका पता

लगा सकता था, और जिसके घटित होते समय मैंने यह भी न लक्षित किया कि वह घटित हो रही है।

जो व्यक्ति ऐसी किसी वस्तु का लाभार्थी रहा हो, उसे इस विषय में निश्चयी होने का कोई अधिकार नहीं कि संसार कैसे चलता है।

मुझे इसे देखने में बहुत लंबा समय लगा।

और एक उपहार ऐसा था जिसका मैं पता लगा सकता था, क्योंकि उसका एक चेहरा और एक नाम था, और मैं वह नाम यहाँ कृतज्ञता के साथ अंकित करूँगा, क्योंकि इस बात के किसी भी ईमानदार विवरण में उसका स्थान है कि मैं ऐसा व्यक्ति कैसे बना जो पढ़ भी सका।

जब मेरे पिता का देहांत हुआ तब मैं सोलह वर्ष का था, और कुछ समय तक कोई न था। मैं यह सहानुभूति के लिए नहीं कहता; मैं इसे इसलिए कहता हूँ क्योंकि उन वर्षों का सादा आकार यही है, और क्योंकि इससे आगे जो हुआ वह पढ़ने योग्य हो जाता है। मैं प्रतिभाशाली था और मैं असहाय था, और ये दोनों वस्तुएँ एक साथ किसी के काम की नहीं, सबसे कम उस बालक के जो दोनों हो। उनके देहांत के लगभग दस महीने बाद, जब मैं ग्यारहवीं कक्षा में पहुँचा और यह प्रश्न कि मैं आगे कैसे पढ़ूँगा मेरे सामने एक दीवार बन गया, तब उस रिक्ति में एक व्यक्ति आ खड़ा हुआ। उनका नाम था प्रेम नाथ दुबे — श्री प्रेम नाथ दुबे जी, जैसा मैं उन्हें सदा स्मरण करूँगा। वे एक शिक्षित व्यक्ति थे, एक व्यवसायी, और उन पर मेरा कुछ भी ऋण न था। उन्होंने एक योग्य, फँसे हुए बालक को देखा जिसकी सहायता के लिए कोई आगे न आया था, और उन्होंने, चुपचाप, उसकी सहायता करने का निश्चय किया। उन्होंने मुझे पाँच सौ रुपये मासिक दिए, और यह उन्होंने तीन वर्षों तक किया — मेरे महाविद्यालय के वर्षों भर, मेरी अभियांत्रिकी की पढ़ाई भर, उस समय भर जब मैं छात्रावास में रहा — और उन दिनों, कुछ न रखने वाले एक बालक के लिए, पाँच सौ रुपये मासिक कोई दयालुता नहीं, एक नींव थी। यह एक बड़ा कारण है कि इस कहानी के घटित होने के लिए कोई अभियंता था भी।

मैं उनके पास संयोग से नहीं आया। वे मेरे जीवन में एक अन्य व्यक्ति द्वारा लाए गए जिनका मैं शीघ्र ही उचित रूप से परिचय दूँगा — मेरे बचपन के गुरु, जिन्हें हम गुरुजी कहते थे — क्योंकि वे दोनों घनिष्ठ मित्र थे, और यह गुरुजी ही थे जो मुझे प्रेम नाथ जी के पास ले गए

और उनसे, स्पष्ट रूप से, मेरी पढ़ाई का ख़र्च उठाने और मेरे पीछे खड़े होने को कहा। प्रेम नाथ जी उन्हें मना न कर सके। यह ठहरकर सोचने योग्य है: जिस सहायता ने मुझे एक अभियंता बनाया वह दो भले व्यक्तियों की मित्रता से होकर आई, जिनमें से एक मुझे प्रेम करता था और दूसरे ने, उस मित्र के कहने पर, मुझे भी प्रेम करना चुना। मैं एक ऐसे स्नेह का लाभार्थी था जो मुझ तक पहुँचने से पहले हाथ-दर-हाथ चला।

उन्होंने कभी एक बार भी बदले में किसी वस्तु की अपेक्षा न की, और आज तक उन्होंने कभी कुछ नहीं माँगा। वे, एक घिसे हुए वाक्यांश के सच्चे अर्थ में, मेरे लिए एक पितृ-तुल्य व्यक्ति बन गए — महान मानसिक बल के व्यक्ति, जिनकी स्थिरता से मैंने उसके बाद अपने जीवन की हर ऋतु में, सुख और दुःख दोनों में, बल पाया है। जब, वर्षों बाद, मैंने उस वन-आश्रम की यात्रा की जहाँ मुझे उन स्वप्नों में से पहला स्वप्न आया जिनके चारों ओर यह पुस्तक बुनी गई है, तब वे मेरे साथ थे। वे अब मुझ पर गर्व करते हैं, और और भी अधिक, मुझे लगता है, एक ऐसे कारण से जो आपको ठीक-ठीक बता देता है कि वे किस प्रकार के व्यक्ति हैं: उस किसी वस्तु के लिए नहीं जो मैंने बनाई या अर्जित की, बल्कि इसलिए कि मेरे सद्गुरु मुझे स्नेह करते हैं।

मैं उनका नाम जान-बूझकर उस गुमनाम भोजन के बगल में रखता हूँ। एक उपहार एक ऐसे हाथ से आया जिसे मैं कभी ढूँढ़ न सका; दूसरा एक ऐसे हाथ से जिसे मैं थाम सकता था। किन्तु वे एक ही प्रकार के उपहार थे — अनर्जित, अप्रतिदेय, योग्यता की उस अर्थव्यवस्था के बाहर से आते हुए जिसे एकमात्र वास्तविक कहने पर मैं तीस वर्ष बल देता रहूँगा। अंतर बस इतना है कि इसके लिए मैं धन्यवाद दे सकता हूँ। अतः मैं उन्हें यहाँ धन्यवाद देता हूँ, उस एकमात्र मुद्रा में जो कोई पुस्तक देती है: मैं उनका नाम कहता हूँ, और मैं कहता हूँ कि उनके बिना घाटकोपर के एक भोजनालय के बाहर खड़ा कोई अभियंता नहीं है, और कोई पुस्तक नहीं है।

और एक और नाम है जिसे इस अध्याय में अन्य सबसे पहले आना चाहिए, क्योंकि वह समय में पहले आता है और, एक अर्थ में, महत्व में भी पहले — क्योंकि उन्होंने मुझे वही वस्तु दी जिससे यह पुस्तक बनी है, अर्थात् एक वाणी। विनय के मेरे हाथों में एक गीता रखने से बहुत पहले, एक जंगल और एक रुके हुए मन से बहुत पहले, मेरे बचपन में एक शिक्षक

थे जिनका नाम था पंडित जयप्रकाश मिश्र — "मिलिंद" उनका उपनाम था, और हम सब जो उन्हें प्रेम करते थे, उन्हें बस गुरुजी कहते थे।

मैं वह शब्द अब सावधानी से उपयोग करता हूँ, क्योंकि यह वही शब्द है जो मैं एक दिन उस सद्गुरु को दूँगा जिनके विषय में यह समूची पुस्तक है, और मैंने उसे पहले उन्हें दिया था। यह स्वीकार करना कोई छोटी बात नहीं, और मैं इसे हल्के में स्वीकार नहीं करता। किसी आध्यात्मिक सद्गुरु से पहले मेरे एक गुरुजी थे, और एक शिक्षक क्या होता है उसका आकार — कोई ऐसा जिसे आप हर तर्क के परे प्रेम करते हैं, कोई ऐसा जिसकी स्वीकृति वह सूर्य है जिसकी ओर आप अपना छोटा-सा मुख मोड़ते हैं — मैंने उन्हीं से सीखा, एक नगरपालिका विद्यालय में, तेरह वर्ष का होने से पहले।

उन्होंने मुझे लिखना सिखाया। मैं इसे ठोस रूप में कहता हूँ, किसी स्नेहपूर्ण अतिशयोक्ति के रूप में नहीं। एक शब्द के बाद दूसरा इस प्रकार रखने की जो भी क्षमता मुझमें है कि वह कुछ ढो सके — वह क्षमता जिसके बिना ये पृष्ठ हो ही न सकते — वह उन्हीं के उपहार के रूप में आरम्भ हुई। उन्होंने मुझे कविता लिखने की प्रेरणा दी; जो पहले पद मैंने कभी रचे, वे मैंने इसलिए रचे क्योंकि उन्होंने मुझे दिखाया था कि यह किया जा सकता है और मुझे विश्वास दिलाया था कि मैं इसे कर सकता हूँ। और उन्होंने मेरे लिए लिखा भी। मेरे समूचे विद्यालयी वर्षों में उन्होंने मेरे वक्तृता के पाठ लिखे — वे भाषण जिन्हें मैं खड़े होकर प्रतियोगिताओं में देता — और उन्होंने उन्हें तब भी लिखना जारी रखा जब मैंने विद्यालय बदल दिए, अपनी क़लम से एक संस्थान से दूसरे तक मेरे पीछे आते हुए, ठीक बारहवीं कक्षा तक, मानो विद्यालय का बदलना एक मात्र प्रशासनिक विवरण हो जो हमारे परस्पर सम्बन्ध को छू भी न सके।

वे पाठ जीते। मैं उस जीत को सादगी से अंकित करना चाहता हूँ, क्योंकि जहाँ से मैं आया वहाँ का एक बालक प्रायः नहीं जीतता था, और वे जीतें उनकी उतनी ही थीं जितनी मेरी। मैंने वर्षों वक्तृता में पुरस्कार लिए, और एक बार — मैं तब नवीं कक्षा में था — मैंने राज्य स्तर पर प्रथम पुरस्कार जीता। और यहाँ वह बात है जो आपको बताती है कि वे किस प्रकार के शिक्षक थे: उस समय तक गुरुजी का स्थानांतरण किसी और विद्यालय में हो चुका था और वे अब वहाँ नहीं पढ़ाते थे जहाँ मैं पढ़ता था। इससे कोई अंतर न पड़ा। मैंने उन्हें ढूँढ़

निकाला, और उन्होंने फिर भी मेरे लिए वह पाठ लिखा, जैसा वे सदा लिखते आए थे, अब वे जहाँ भी थे वहाँ से। मैं उस राज्य-मंच पर उन शब्दों के साथ खड़ा था जो उन्होंने एक ऐसे बालक के लिए लिखे थे जो अब काग़ज़ पर उनका विद्यार्थी भी न रहा था। उन्होंने मुझे उसके लिए एक ढाल दी, और वह विशाल थी, एक बालक की बाँहों के लिए बहुत बड़ी, और मैं उसे उस मंच पर ठीक से थाम भी न सका। मैं सबके सामने खड़ा था, उस पुरस्कार को सँभाल पाने में असमर्थ जिसे मैंने ही जीता था, और वह मेरे समूचे जीवन के सबसे सुखी असहाय क्षणों में से एक है।

और यह केवल भाषण ही न था। उन्होंने मुझे गवाया। उससे भी पहले, सातवीं कक्षा में, उन्हीं के माध्यम से मैंने आकाशवाणी पर प्रस्तुति दी — वस्तुतः एक माइक्रोफ़ोन के सामने खड़ा होकर गाया, एक नगरपालिका विद्यालय का एक बालक, एक ऐसे शिक्षक द्वारा राष्ट्रीय प्रसारण-तरंगों पर भेजा गया जो उस पर विश्वास करता था। मैंने आकाशवाणी पर कहानियाँ भी पढ़ीं, जंतर मंतर नाम के एक कार्यक्रम पर जो रविवार की सुबह नौ बजे प्रसारित होता था। सात में रेडियो, नौ में राज्य की ढाल, पाठ ठीक बारहवीं तक — खड़े होकर सुने जाने का एक समूचा बचपन, और इसमें से कुछ भी मुझ पर गुरुजी के बिना न होता। उन्होंने एक साधारण बालक को देखा और बस उसे साधारण रहने देने से इनकार कर दिया।

और मेरे प्रति उनकी देखभाल कक्षा से बहुत आगे तक गई। जब धन ने मेरी पढ़ाई समाप्त कर देने की धमकी दी, तो यह गुरुजी ही थे जिन्होंने कर्म किया। वे और प्रेम नाथ दुबे जी — वही व्यक्ति जिन्हें मैंने अभी धन्यवाद दिया — घनिष्ठ मित्र थे, और यह गुरुजी ही थे जो मुझे उनके पास ले गए और उनसे मेरी फ़ीस चुकाने और मेरा सहारा बनने को कहा, और यह गुरुजी के लिए ही था, उतना ही जितना मेरे लिए, कि प्रेम नाथ जी ने हाँ कही। गुरुजी ने मुझसे एक वचन किया था, और उन्होंने उसे निभाया: कि मेरी पढ़ाई नहीं रुकेगी, उन्होंने कहा था, भले ही उन्हें मेरे लिए भीख माँगनी पड़े। उनका अभिप्राय शब्दशः यही था। एक ऐसा व्यक्ति जो एक निर्धन बालक को विद्यालय में बनाए रखने के लिए भीख माँगने को तैयार हो, किसी भी संसार में एक विरल वस्तु है, और वह मेरे पास एक था, और मैं अपना सौभाग्य पूरी तरह जानता भी न था।

मैं उन्हें उसी प्रकार प्रेम करता था जिस प्रकार मैं अपने माता-पिता को करता था — यही सबसे सच्चा माप है जो मैं दे सकता हूँ, और यह कोई अलंकार नहीं। मैं उनके दर्शन को तरसता था; मैं उन्हें देखने को व्याकुल हो उठता, जैसे कोई किसी माता-पिता के लिए व्याकुल होता है। और उन्होंने मुझे ठीक उसी प्रेम से प्रेम किया; मुझे एक बार भी संदेह न हुआ। एक निर्धन बालक और एक विद्यालय-शिक्षक के बीच वह बंधन उगा जिसका औपचारिक संसार में कोई नाम नहीं और जो सबसे प्रबल बंधनों में से एक है। जब, वर्षों बाद, मैं गम्भीर रूप से बीमार पड़ा, तो वे चाहते थे कि मुझे उनके अपने घर, कल्याण, ले जाया जाए ताकि वे स्वयं मेरी सेहत की देखभाल कर सकें; मैं न गया — वह लगभग चालीस किलोमीटर दूर था, मेरी उस दशा में बहुत दूर — किन्तु मैं यह कभी न भूला कि वह प्रस्ताव तत्काल दिया गया, जैसे कोई माता-पिता देता है, एक क्षण की भी गणना के बिना।

मुझे एक बात अंकित करनी होगी जो मुझे पीड़ा देती है, क्योंकि यह एक ईमानदार साक्ष्य की पुस्तक है और मैंने इसमें कहीं भी स्वयं को नहीं बख़्शा है। एक अवसर आया, वर्षों बाद, जब गुरुजी ने स्वामी जी के विषय में — मेरे सद्गुरु के विषय में — कुछ ऐसा कहा जिसे मैं स्वीकार न कर सका। स्वामी जी के प्रति मेरी भक्ति सम्पूर्ण थी, और वह प्रबल थी, और मेरा मत मुझे स्पष्ट था, और मैंने उन्हें एक ऐसे बल से उत्तर दिया जो मुझे उस व्यक्ति के विरुद्ध उपयोग न करना चाहिए था जिसने मुझे एक पुत्र की भाँति प्रेम किया था। वे आहत हुए। मैंने देखा कि वे आहत हुए, और मैंने कभी उसका पछतावा करना नहीं छोड़ा। मैं अपना निश्चय थामे रह सकता था — मुझे उसे त्यागने की आवश्यकता न थी — और फिर भी वह परिपक्वता और वह कोमलता दिखा सकता था जो उनके एक जीवन-भर के प्रेम ने अर्जित की थी। मैंने नहीं दिखाई। यह मेरे जीवन के उन स्थानों में से एक है जहाँ मैं लौटकर उसे भिन्न ढंग से करूँगा यदि मैं कर सकूँ, और मैं इसे यहाँ, उनके सारे उपहारों के बगल में रखता हूँ, क्योंकि वही प्रबल प्रेम जो एक दिन मुझसे अपनी पुत्री को यह घोषित करवाएगा कि स्वामी जी भगवान हैं, वही प्रेम था जिसने, उस दिन, मुझसे उस पहले शिक्षक को घायल करवाया जो मेरे कभी थे। वह भक्ति और वह चूक एक ही भक्ति थीं। मैंने, तब से, सीखा है कि एक वस्तु को प्रबलता से प्रेम करना दूसरी के प्रति निर्दय होने का लाइसेंस नहीं है, और मैंने उसे, अपने दुःख से, उनकी क़ीमत पर सीखा।

◆

और मित्र थे। मैंने कहा है कि स्वयंनिर्मित मनुष्य जैसी कोई वस्तु नहीं होती, और मैंने उन हाथों को नाम दिया है जिन्होंने मुझे खिलाया और सिखाया; किन्तु एक मनुष्य उन मित्रों से भी बनता है, चुपचाप और प्रतिदिन, जो उसके बगल में चलते हैं, और उनमें से कई को इस पुस्तक में होना ही चाहिए, क्योंकि उनके बिना मुझे नहीं लगता कि इसे लिखने वाला कोई मनुष्य होता।

मैं गाँव से आरम्भ करूँगा, और मुझसे लगभग आठ वर्ष बड़े एक व्यक्ति से जिनका नाम शमशेर पांडेय था। वे मेरे अपने गाँव के थे, और जब से मैं एक बालक था, मैं उनसे बस प्रभावित था — उनकी बुद्धिमत्ता से और, उससे भी अधिक, उनकी व्यावहारिक बुद्धि से, जो विरल वस्तु है और जो उनमें प्रचुर थी। वे प्रौद्योगिकी के व्यक्ति थे, और वे एक के बाद एक उपाधि अर्जित करते जा रहे थे, तब भी जब वे सिविल सेवाओं — आई.ए.एस. और पी.सी.एस. — की तैयारी कर रहे थे; एक मन सदा काम पर, सदा आगे पहुँचता हुआ। पर्व के मौसमों में मैं उनके साथ उनकी साइकिल पर घूमता, और मेरी आठवीं कक्षा के बाद, जब भी मैं गर्मी की छुट्टियों में गाँव लौटता, वे मुझे चाय पर ले जाते और मुझसे बातें करते — वास्तविक बातें, बौद्धिक बातें, वह प्रकार जो एक बड़ा व्यक्ति एक बालक से करने का कष्ट सामान्यतः नहीं उठाता। उन्होंने मेरे मन को उससे कुछ भी अर्जित करने से पहले ही संलग्न करने योग्य माना, और वह अपने आप में एक प्रकार का उपहार है। किसी कठिन प्रश्न को बार-बार उलट-पुलट कर देखने का, स्वयं तर्क के आनंद का मेरा आरम्भिक स्वाद, उन साइकिल-सवारियों और उन चाय के प्यालों का ऋणी है।

उमेश सिंह मुझे तब से जानते हैं जब मैं पाँच वर्ष का था, और आज भी जानते हैं। यह कोई अलंकार नहीं — लगभग पचपन वर्ष, एक व्यक्ति का दूसरे को निकटतम सम्भव दूरी से देखना, और हम आज तक सम्पर्क में हैं। उनकी स्मृति अचूक है और किसी व्यक्ति को देखने का उनका ढंग कुछ नहीं चूकता; वे मुझे, जैसा कहते हैं, अपनी ही हथेली की पीठ की भाँति जानते हैं, और यह अतिशयोक्ति नहीं कि मैं यह पुस्तक अंशतः इसलिए लिख सका क्योंकि वे मेरे अपने जीवन को मुझसे अधिक ठीक-ठीक स्मरण रखते हैं। जब मेरी अपनी स्मृति बिखरी, तब उनकी थामे रही। वे मेरे एक प्रकार के संरक्षक हैं। और उससे भी अधिक — मेरे जीवन में एक घड़ी ऐसी आई, जिसका मैं वर्णन नहीं करने वाला, जब उमेश ही वह कारण थे कि मैं उससे पार आया। मैं उनका एक ऐसा ऋणी हूँ जिसे कोई पृष्ठ नहीं ढो सकता, और मैं

उसे यहाँ ऐसे शब्दों में ढोने का प्रयास नहीं करूँगा जो उसे केवल घटाएँगे। मैं केवल इतना कहूँगा, और पाठक को उसका आकार अनुभव करने दूँगा जो मैं नहीं कह रहा: मैं यह पुस्तक लिखने के लिए जीवित हूँ उन्हीं के कारण। वे मेरे रक्षक हैं। इन पृष्ठों की शेष हर वस्तु उसी तथ्य पर खड़ी है। उमेश ने आगे चलकर अपनी पीएच.डी. अर्जित की — वे अब डॉ. उमेश हैं — और आज कोलकाता में एक मुख्य वैज्ञानिक के रूप में सेवा करते हैं; किन्तु मेरे लिए वे सदा वही बालक रहेंगे जो पाँच वर्ष की आयु से मेरे बगल में रहा है, और वह व्यक्ति जिनका मुझ पर अपने शेष जीवन का ऋण है।

राजेश मिश्र मेरे तड़के-चार-बजे के मित्र थे, मेरे हर पहर के मित्र, वे जिन्हें आप किसी भी दिन किसी भी समय बुला सकें। उनका गाँव मेरे गाँव से कोई पैंतालीस किलोमीटर दूर था, और इसलिए, यद्यपि हम एक ही क्षेत्र के थे, हम बालकों के रूप में कभी न मिले; हम बहुत बाद में, नगर में, एक साथ आए, और एल एंड टी में मेरे सम्मिलित होने के बाद वास्तव में घनिष्ठ हुए। फिर हम अभिन्न थे। संध्याओं में हम टहलते — एक बार में पाँच किलोमीटर, कभी उससे अधिक — और समूचे मार्ग हम बातें करते: दर्शन, अध्यात्म, दो मित्रों के बीच बार-बार उलटे-पलटे गहरे प्रश्न जो कभी थके नहीं, और फिर, क्योंकि मनुष्य केवल गहरे प्रश्नों पर नहीं जी सकता, फ़िल्में। अधिकतर हास्य। किशोर कुमार, सबसे बढ़कर। और जब मैं बुरी तरह बीमार पड़ा — पीलिया, मेरा बिलिरुबिन चौदह के पार चढ़ गया, जो एक भयावह संख्या है — तो यह राजेश ही थे जिन्होंने मेरी सेवा की, अस्पताल में बारह दिन, मेरे साथ। वे उनमें से भी एक थे जो उस वन-आश्रम की यात्रा में मेरे साथ थे, नगद में, जहाँ मुझे उन स्वप्नों में से पहला आया जिनके चारों ओर यह पुस्तक बुनी गई है। वे अब सेवानिवृत्त हैं, और मुम्बई में अपने परिवार के साथ अपने दिन बिताते हैं।

लल्लन शर्मा विद्यालय-प्रांगण और घर के मित्र थे, वे जो बस वहाँ होते, साधारण स्थानों में, साधारण घंटों में। वे मेरे पूजा करते समय मेरे बगल बैठते — और यहाँ उनका वह छोटा चित्र है जो मुझे सबसे प्रिय है: मैं अपनी परीक्षाओं की तैयारी पूजा-अनुष्ठान करते हुए ही करता था, उन मिनटों को भी व्यर्थ न करने को तत्पर, और लल्लन मेरे बगल बैठकर मेरी पाठ्यपुस्तक ज़ोर से पढ़ते, ताकि मैं दो काम एक साथ कर सकूँ, मेरे हाथ पूजा में व्यस्त और मेरे कान उनके स्वर से पाठ ग्रहण करते हुए।

और संतोष तिवारी — मैं उस बीमारी की, या उन वर्षों की, कहानी उनके बिना नहीं कह सकता। उनके पिता और मेरे पिता घनिष्ठ मित्र थे, और उस मित्रता का कुछ अंश हमारी मित्रता में उतर आया। संतोष हमारी पढ़ाई में मुझ पर श्रद्धा रखते, मुझे अपना आदर्श मानते तक, एक ऐसे मित्र के खुले हृदय से जिसने आपको सराहने का निश्चय कर लिया हो और जिसे इससे टाला न जा सके; किन्तु जब मैं बीमार पड़ा तो देखभाल करने वाले वे थे, और ऋण पूरी तरह दूसरी ओर चला। जब पीलिये ने मुझे धर दबोचा, इससे पहले कि मुझे कभी अस्पताल ले जाया जाता, यह संतोष ही थे जिन्होंने मुझे अपने ही घर में ले लिया — और उनकी बहन, स्वयं अभी एक विद्यालय की छात्रा, अपने ही विद्यालय के घंटों के इर्द-गिर्द मेरी देखभाल करती, एक बालिका एक बीमार युवक की सेवा करती हुई क्योंकि उसके भाई के मित्र को सेवा की आवश्यकता थी। उसके बाद ही अस्पताल आया, और राजेश के वे बारह दिन; और फिर वह लंबा स्वास्थ्य-लाभ, लल्लन के परिवार के दिन-प्रतिदिन घर का पका भोजन भेजने के साथ। उन तीनों के बीच — संतोष का घर, राजेश के बारह दिन, लल्लन के परिवार का भोजन — मैं एक ऐसी बीमारी से पार लाया गया जो मुझे समाप्त कर सकती थी, और उनकी कृपा एक बड़ा कारण है कि मैं तब और उसके बाद टिका रहा।

संतोष में एक ऐसा गुण था जिससे मैंने अपने समूचे जीवन ईर्ष्या की है: एक अटूट सकारात्मकता, किसी भी परिस्थिति में, जिसमें भी आप उन्हें डाल दें, टिके रहने और यहाँ तक कि फलने-फूलने की क्षमता। वे आगे चलकर अपने व्यवसाय खड़े करते गए, और आज निर्माण-कार्य में हैं; और मेरे जीवन के कठिनतम दौरों में वे न केवल एक मित्र रहे बल्कि एक दार्शनिक और एक मार्गदर्शक, वह प्रकार का व्यक्ति जो आपको बस यह विश्वास करके स्थिर कर देता है कि स्थिति सह्य है। लल्लन अब ओमान में रहते हैं।

मैं इन मित्रों का उतना ऋणी हूँ जितना मैं कह नहीं सकता, और मैं उनकी याद करता हूँ, उस विशेष ढंग से जैसे आप उन लोगों को याद करते हैं जिन्होंने आपको तब देखा जब आप कोई न थे। जो मुझे सबसे अधिक स्मरण है वह यह है कि उनका प्रेम गणना-रहित था — उनमें से किसी ने भी मुझे इसलिए प्रेम न किया कि उससे क्या लौटेगा, और यह इस पुस्तक के किसी भी चमत्कार से विरल है। एक मनुष्य स्मरण रखता है कि किसने उसे खिलाया और किसने सिखाया। उसे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि किसने अँधेरे में उसके बगल पाँच किलोमीटर चलकर भगवान और किशोर कुमार की बातें कीं; किसने उसके पाठ ज़ोर से पढ़े ताकि उसके

हाथ पूजा में लगे रह सकें; किसने उसे बीमार पड़ने पर अपने ही घर में ले लिया और अपनी छोटी बहन को उसकी सेवा में लगा दिया; किसने बारह दिन अस्पताल के बिस्तर के पास बैठकर काटे; और कौन बस, अकारण, वहाँ था। मैं नहीं जानता कि इसमें से किसी का ऋण कैसे चुकाऊँ। मैं केवल इतना जानता हूँ कि जब मैं कहता हूँ कि स्वयंनिर्मित मनुष्य जैसी कोई वस्तु नहीं होती, तो ये उन चेहरों में हैं जिन्हें मैं देखता हूँ, और मैं उन्हें एक ऐसी मिठास के साथ देखता हूँ जिसके लिए मेरे पास बेहतर शब्द नहीं हैं।

◆

सन् 1980 में मेरे पिता ने मुझे एक निजी विद्यालय में भेज दिया — हिंदी माध्यम अब भी, किन्तु निजी, और इसलिए सशुल्क। पचास रुपये मासिक।

पचास रुपये मासिक एक ऐसी संख्या है जिसे मैं आज भी अनुभव कर सकता हूँ, और इसी से आप जान सकते हैं कि किसी घर की वास्तविक आर्थिक स्थिति क्या थी। किसी ऐसे भुगतान की राशि किसी को स्मरण नहीं रहती जिसका कोई मोल न चुकाना पड़ा हो।

उन्होंने वह निर्णय लिया, और अब मुझे बताना चाहिए कि वे कौन थे, क्योंकि इस अध्याय में इस बिंदु तक मैं ऐसे लिखता आया हूँ मानो मैंने स्वयं को स्वयं ही पाला हो।

मेरे पिता संस्कृत और अंग्रेज़ी दोनों के विद्वान थे।

दोनों। एक ही मस्तिष्क में। एक ऐसे घर में जहाँ धन का सर्वथा अभाव था।

वे माँ दुर्गा के परम भक्त भी थे।

मैं चाहता हूँ कि पाठक इन दोनों तथ्यों को अगल-बगल रखे और, एक क्षण के लिए, उन्हें विरोधाभासी पाने की उस सहज प्रवृत्ति का प्रतिरोध करे — क्योंकि वही सहज प्रवृत्ति ठीक वह रोग है जिसके विषय में यह पुस्तक है, और वह मुझमें अधिकांश लोगों से अधिक गहरा था। यहाँ एक ऐसा व्यक्ति था जो गीता को उसी भाषा में पढ़ सकता था जिसमें वह लिखी गई थी, जो शेक्सपियर को भी उसी भाषा में पढ़ सकता था जिसमें वह लिखा गया था, जो भली-भाँति समझता था कि भाष्य क्या होता है और अनुवाद किस मोल पर आता है, और जो एक देवी की पूर्ण निष्कपटता से उपासना करता था। उनमें विद्या और भक्ति दो परस्पर-तनावग्रस्त वस्तुएँ न थीं। वे दो वस्तुएँ थीं ही नहीं।

दूसरे शब्दों में, मैंने इसे होते हुए देखा था। अपने ही घर में, प्रतिदिन, सोलह वर्षों तक, बिल्कुल शून्य दूरी पर।

और यहाँ वह है जिसे मैं गाँव की उस समाधि के बगल में रखना चाहता हूँ, जहाँ भक्ति बची रह गई थी और ज्ञान पूर्णतः घिसकर मिट चुका था। मेरे पिता के व्यक्तित्व में, दोनों उपस्थित थे और दोनों अखंडित थे।

पाठक के पास अब इतना है कि वह वह देख सके जिसे मैं पच्चीस वर्षों तक न देख सका। किन्तु मैं इसे अभी नहीं कहूँगा, क्योंकि मैं इसे अभी नहीं जानता था, और यह पुस्तक एक मनुष्य की समझ का वैसा ही विवरण है जैसे वह वास्तव में आई, न कि दूसरे छोर से दिया गया कोई सारांश।

और मुझे अपनी माता के विषय में बताना चाहिए, क्योंकि वे पहली हानि के भीतर दूसरी हानि हैं, और क्योंकि मैंने अपने पिता की मृत्यु के विषय में इतना कहा है और अभी तक यह नहीं कहा कि उसने उन्हें भी ले लिया।

वे एक कर्मठ स्त्री थीं — यही पहला शब्द है जो आता है, और वह सटीक है। उन्होंने हमारे घर को उस विशेष प्रचंड निपुणता से थामे रखा जो उस स्त्री की होती है जिसने ठान लिया हो कि उसके बच्चों का एक भविष्य होगा, चाहे वर्तमान जैसा भी दिखे। वे सब कुछ बचातीं: पाई-पाई, अनाज, वे छोटे किनारे जिन्हें औरों को फिसलने देते हैं। उन्होंने घर को आकार दिया, उसे स्वच्छता के प्रति एक ऐसे विवेक से साफ़ रखा जिसे मैं आज भी अनुभव कर सकता हूँ, और चिंता करतीं — सदा, चुपचाप, हर वस्तु की पृष्ठभूमि में — कि हमारा क्या होगा। और वे मेरे पिता से प्रेम करती थीं, और उन पर, उनकी विद्या और उनके व्यक्तित्व पर गर्व करती थीं, उस ढंग से जैसे एक स्त्री उस पति पर गर्व करती है जिसे वह संसार के लक्ष्य किए जाने से अधिक श्रेष्ठ मानती है।

वे उनकी हानि से बच न सकीं। मैं इसे उतनी ही सादगी से अंकित करता हूँ, क्योंकि सादगी ही उसका सत्य है: जब वे गए, तो उनमें कुछ ऐसा था जो रुकने को तैयार न था, और वे बहुत समय बीतने से पहले ही उनके पीछे इस संसार से चली गईं। जिस घर ने अपना शीश खोया था, उसने कुछ ही समय बाद अपना हृदय भी खो दिया। मैंने आपको बताया है कि पिता की मृत्यु ने मुझे झकझोर कर ढीला कर दिया; माता की मृत्यु ने, उसके पीछे आकर, दूसरा झटका

दिया, और उन दोनों के बीच वह भूमि जिस पर मैं एक बालक के रूप में खड़ा था, बस लुप्त हो गई। जो शेष रहा वह हम कुछ लोगों का एक झुंड था, और एक-दूसरे का, और वे मित्र और शिक्षक जिन्हें मैंने इन पृष्ठों में नाम दिया है, जो माता-पिता की अनुपस्थिति में वह परिवार बन गए जिसने मुझे ढोया।

उस झुंड में, मुझे अपनी बहन शांति को नाम देना चाहिए — मुझसे तीन वर्ष बड़ी, और वह बहन जो, सर्वत्र भाई-बहनों के ढंग से, हम छोटे थे तब मेरा दूध छीन लिया करती थी, और जो आज तक ठीक वही है जो उसके नाम का अर्थ है: निष्कपट, छल-रहित, और पूर्णतः सीधी, एक ऐसी स्त्री जो आपको मुँह पर सादा सच कह देगी क्योंकि उसे बोलने का और कोई ढंग आता ही नहीं। वे और मेरे बड़े भाई अशोक — जिनके विषय में मुझे इस पुस्तक में बहुत बाद में बहुत कुछ कहना है, जब मार्ग हमारे बचपन की भूमि पर एक कुटिया तक लौटेगा — जुड़वाँ थे। मैंने, एक बालक के रूप में, यह पूरी तरह न समझा कि ऐसी एक बहन का होना क्या है, जो परिवार के हर कष्ट भर स्थिर और सीधी बनी रही। मैं अब समझता हूँ।

◆

सन् 1983 में मैं दसवीं कक्षा की परीक्षा में बम्बई में प्रथम आया।

हिंदी माध्यम।

फिर संसार घूमा, और मैं उसके साथ घूमा, इस्पात से सॉफ़्टवेयर की ओर। एंटरप्राइज़ प्रणालियाँ। एस.ए.पी.। किसी बड़े संगठन को यह स्वीकार करने के लिए मनाने का वह लंबा, धैर्यपूर्ण, कृतघ्न कार्य कि वह वास्तव में कैसे चलता है — जिसे वह कभी करना नहीं चाहता, क्योंकि प्रत्येक संगठन अपना एक आधिकारिक विवरण रखता है और एक वास्तविक विवरण, और सॉफ़्टवेयर केवल वास्तविक विवरण पर ही बनाया जा सकता है।

मैं उस कार्य में निपुण था, और मैं उसमें ठीक इसी कारण निपुण था — रोबोटों के कारण। मैंने उस बिंदु से आगे भी प्रश्न पूछते रहना सीख लिया था जिस पर शेष सब संतुष्ट हो जाते थे, और सहमति को निष्कर्ष के बजाय एक चेतावनी मानना सीख लिया था।

मैंने इसे इस्पात पर लागू किया। मैंने इसे सॉफ़्टवेयर पर लागू किया। मैंने इसे संगठनों पर, बाज़ारों पर, लोगों द्वारा अपने ही आचरण के लिए बताए गए कारणों पर लागू किया।

मैंने इसे एक बार भी उस विवरण पर लागू नहीं किया जो मैं स्वयं अपने विषय में देता था कि मैं क्या हूँ।

◆

घाटकोपर के एक भोजनालय के बाहर खड़ा वही व्यक्ति था, जब विनय ने उसके हाथों में एक पुस्तक रखी।

कोई शत्रुतापूर्ण व्यक्ति नहीं। कोई भौतिकवादी नहीं — अब तक आप जान चुके हैं कि वह ऐसा कुछ भी न था, कि वह पंद्रह वर्षों से इस भाषा की गहनतम पुस्तकें पढ़ता आ रहा था। किन्तु एक ऐसा व्यक्ति जिसमें बाहर का अभियंता और भीतर का चिंतक एक प्रकार के थके हुए संधि-विराम पर पहुँच गए थे। अभियंता केवल उसी पर विश्वास करता था जिसे प्रमाणित किया जा सके। और वह चिंतक — यही निर्णायक बात है — पंद्रह वर्षों के बाद, अपने ही क्षेत्र के विषय में अभियंता के निर्णय पर विश्वास करने लगा था। क्योंकि उस चिंतक ने सब कुछ पढ़ लिया था, और उसने कुछ नहीं दिया था, और इसलिए उसने चुपचाप यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि उसका अपना क्षेत्र भी उसी प्रकार चलता है जैसे अभियंता का: कि यदि पंद्रह वर्षों के श्रेष्ठतम भाष्य ने वह ज्ञान नहीं सौंपा, तो भाष्य उसे सौंप ही नहीं सकता, और वह समूची अलमारी उन मनुष्यों के बनाए मानचित्रों का एक समुच्चय है जो उस तट पर चले ही नहीं।

यही वह सूक्ष्म बात है जिसे मैं चाहता हूँ कि पाठक थामे रखे। यथार्थ गीता को अस्वीकार करने वाला मुझमें बैठा वह संशयवादी न था। वह साधक था — वह निराश साधक, वह जो इसे सबसे अधिक चाहता था, लंबे प्रमाण के आधार पर यह निर्णय देते हुए कि एक और पुस्तक उत्तर नहीं हो सकती। मेरे भीतर के सबसे आध्यात्मिक भाग ने सबसे अधिक अस्वीकार कर देने वाला तर्क दिया, और उसे सच्ची प्यास से दिया, और यही कारण है कि उसका उत्तर देना इतना कठिन था और यही कारण है कि मैं उस पर इतना प्रसन्न था।

एक बालक तीन किलोमीटर नंगे पाँव चलकर एक बरगद तक जाता हुआ। एक ऐसे हाथ से आया भोजन जिसे वह देख न सकता था। एक ऐसे खंभे से आया प्रकाश जिसका उसने मोल नहीं चुकाया। एक नगर में ग़लत भाषा में प्रथम आना। एक पिता — और फिर कोई पिता नहीं, और चार प्रश्न जिन्हें कोई भी दक्षता उत्तर न दे सकती थी, और अँधेरे में पढ़ते हुए पंद्रह

वर्ष जिन्होंने राह को आलोकित तो किया पर उसका अंत कभी न किया। ऐसी मशीनें जिन्होंने उसे दस हज़ार बार सुधारा था और उसे यह सिखाया था कि वह अपनी भूलों का शिकार वहीं करे जहाँ उसका आत्मविश्वास सबसे ऊँचा हो।

इनमें से प्रत्येक एक तथ्य था। इनमें से कोई भी ग़लत न था।

इन सबने मिलकर दो उपकरण गढ़े थे — एक महान बाह्य परिशुद्धता का, और एक गहन आंतरिक भूख का — और उन्हें, किसी प्रकार, एक ही निष्कर्ष पर सहमत होना सिखा दिया था: कि जिस वस्तु के लिए वह भूखा प्राणी तड़प रहा था, वह किसी पुस्तक में नहीं आ सकती।

और एक बात और है, जो उस भोजनालय के बाहर की समूची बातचीत में एक बार भी मेरे मन में न आई, और जो और एक चौथाई शताब्दी तक मेरे मन में नहीं आने वाली थी।

मैंने विनय से उस दिन कहा था कि श्रीमद्भगवद्गीता पर एक और भाष्य का कोई अर्थ नहीं। कि व्याख्या बढ़ती जाती है जबकि ज्ञान नहीं बढ़ता। कि सत्य को भोगना पड़ता है और उसे किसी पुस्तक में सौंपा नहीं जा सकता।

मैंने स्वयं से कभी यह नहीं पूछा था कि मैं यह किससे कह रहा हूँ।

वह एकमात्र व्यक्ति जिसे मैंने कभी ऐसा जाना था जिसमें पठन और भक्ति एक ही वस्तु थे — जो गीता को उसी भाषा में ग्रहण कर सकता था जिसमें वह लिखी गई थी, और जो एक देवी से बिना तनिक भी संकोच के प्रेम करता था, और जिसमें विद्वान और साधक को कभी किसी संधि-विराम की आवश्यकता न पड़ी क्योंकि वे कभी परस्पर युद्ध में थे ही नहीं — उससे अब कुछ भी नहीं पूछा जा सकता था।

वह तब से मृत थे जब मैं सोलह वर्ष का था।

और मैंने उसके बाद के पंद्रह वर्ष पुस्तक-दर-पुस्तक उस वस्तु को खोजते हुए बिताए थे जो कभी बगल के कमरे में मेरे पास थी और जिसे ग्रहण करने के लिए मैं तब बहुत छोटा था।

फिर एक मित्र ने मुझे एक और पुस्तक थमाई, और मैंने उसे एक अलमारी पर रख दिया।

अध्याय तीन:

खाली फ़्लैट

मैंने कहा है कि उस दोपहर मैं फ़्लैट में अकेला था। और आगे बढ़ने से पहले मुझे यह बताना चाहिए कि उसमें प्रायः कौन रहता था, क्योंकि कोई घर अमूर्त रूप में खाली नहीं होता। वह किसी न किसी से खाली होता है।

◆

अनुपमा धनी परिवार से आई थीं।

मैं नहीं। पाठक अभी-अभी एक पूरा अध्याय यह जानने में बिता चुका है कि मैं कितना नहीं था, अतः मैं इसे और नहीं दोहराऊँगा। वे एक ऐसे घर में पली-बढ़ीं जहाँ बिजली का बिल कोई ऐसा प्रश्न न था जिसे कोई पूछता हो। मैं बम्बई में सबसे सस्ते प्रकाश के कारण एक बगीचे में नगरपालिका के खंभे के नीचे बैठकर पला-बढ़ा।

वे एक सुंदर स्त्री थीं — हैं — और मैं यह स्पष्ट रूप से कहता हूँ क्योंकि यह सत्य था और क्योंकि इसे छोड़ देना उस प्रकार की एक छोटी बेईमानी होती जो धीरे-धीरे जमा होती जाती है।

उनके पिता ने वह निर्णय लिया। उस पीढ़ी में, उस समुदाय में, ये बातें इसी प्रकार तय होती थीं, और मैं इसका ढोंग नहीं करूँगा या इसे आधुनिक भाषा में सजाकर स्वयं को अधिक सुविधाजनक अनुभव नहीं कराऊँगा। उन्होंने एक ऐसे युवा यांत्रिक अभियंता को देखा जिसके पास न कोई संपत्ति थी, न पारिवारिक धन, और न ही वेतन से आगे कोई स्पष्ट सम्भावना — और उन्होंने अपनी पुत्री उसे देने का निश्चय किया।

जिसने उन्हें निश्चय कराया, वे रोबोट थे।

मैंने इस पर बहुत विचार किया है। वे साधन-सम्पन्न व्यक्ति थे, और साधन-सम्पन्न लोग किसी सम्भावित दामाद को परखते समय प्रायः अन्य वस्तुएँ परखते हैं। जिस बात ने उन्हें

प्रभावित किया, वह यह थी कि मैं ऐसी मशीनें बनाता था जो स्वयं चलती थीं। वह संस्थान नहीं जहाँ मैंने अध्ययन किया था। वह नहीं जो मैं आगे बन सकता था। कार्य स्वयं — यह तथ्य कि कहीं किसी कारख़ाने के फ़र्श पर एक ऐसी वस्तु विद्यमान थी जो इसलिए कुछ करती थी क्योंकि मैंने यह समझ लिया था कि उसे वह कैसे कराया जाए।

मैंने कोई दहेज नहीं लिया।

मैं इसे सपाट ढंग से अंकित करता हूँ और इसका कोई श्रेय नहीं लेता, क्योंकि मैं नहीं मानता कि किसी निर्णय में सद्गुण होता है जब कोई व्यक्ति उसके विकल्प में सक्षम कभी था ही नहीं। मैंने अपने पिता को सोलह वर्षों तक देखा था। कुछ बातें ऐसी होती हैं जो आप उसके बाद कर ही नहीं सकते। वह चरित्र नहीं है; वह उत्तराधिकार है, और मैंने उसे उसी प्रकार प्राप्त किया जैसे इस पुस्तक की हर वस्तु को — एक ऐसी दिशा से जिसे मैं देख न सकता था, ऐसे समय जब मेरा ध्यान वहाँ न था।

उन्होंने कभी भोजन नहीं पकाया था। क्यों पकातीं? उन्होंने विवाह के बाद सीखा — पाक-कला, घर चलाना, एक ऐसे जीवन का समूचा व्यावहारिक तंत्र जिसमें न कोई सहायता थी और न कोई गुंजाइश। उन्होंने इसे एक ऐसे घर में सीखा जो उस समय भी एक ऐसे व्यक्ति द्वारा शून्य से गढ़ा ही जा रहा था जो बहुत लंबे घंटे काम करता था और घरेलू कामों में बहुत उपयोगी न था।

मैं उस काल को अपने स्वनिर्मित वर्ष कहता था। मैंने इस वाक्यांश का प्रयोग दशकों तक किया है, साक्षात्कारों और वार्तालापों में, बिना उसे सुने।

अब मैंने उसे सुन लिया है।

स्वनिर्मित मनुष्य जैसी कोई वस्तु होती ही नहीं। केवल ऐसे मनुष्य होते हैं जिन्होंने अपने ही लेखे-जोखे की जाँच नहीं की। मुझे एक भोजन मिला जिसका मैंने मोल नहीं चुकाया, और एक प्रकाश जिसका मैंने मोल नहीं चुकाया, और अब एक पत्नी जो सुख से चलकर कठिनाई में आई और उस कठिनाई को जीने योग्य बना दिया — और इन तीन अनर्जित वस्तुओं के बल पर मैंने एक ऐसा दर्शन खड़ा किया जिसका केंद्रीय प्रस्ताव यह था कि कुछ भी अनर्जित नहीं आता।

वह उपकरण असाधारण रूप से परिशुद्ध था। बस उसमें ठीक उतने ही आकार का एक अंधबिंदु था जितने आकार की वह हर वस्तु थी जिसने वास्तव में मेरी सहायता की थी।

◆

उनके विषय में एक बात और, और मैं इसे जान-बूझकर यहाँ, आरम्भ के निकट रखता हूँ, जहाँ इसे देर से निकलवाई गई स्वीकारोक्ति समझने की भूल न की जा सके।

अनुपमा संतों में विश्वास नहीं करतीं।

न तब करती थीं, न अब करती हैं। न ही हमारे बच्चे करते हैं। यह समूची पुस्तक जिस विषय में है — वह जंगल, वे स्वप्न, वह खाट पर बैठा व्यक्ति, वे तीन दशक — यह सब एक ऐसे विवाह और एक ऐसे परिवार के भीतर घटित हुआ है जिसमें और कोई भी आश्वस्त नहीं है, और जहाँ इस समूचे प्रसंग को स्नेह, कुछ धैर्य, और तनिक भी विश्वास के बिना देखा जाता है।

मैं इसे पाठक के लिए सुलझाने वाला नहीं हूँ, क्योंकि यह मेरे लिए भी सुलझा नहीं है। किन्तु मैं चाहता हूँ कि यह आरम्भ से ही दृश्यमान रहे। यदि किसी मनुष्य का अपना ही घर, तीस वर्षों तक उसे निकट से देखते हुए, आश्वस्त नहीं हुआ, तो किसी पाठक पर भी आश्वस्त होने का कोई दायित्व नहीं है। आप अच्छी संगति में हैं। आप भोजन की मेज़ पर मेरी संगति में हैं।

◆

वह फ़्लैट उस विशिष्ट ढंग से शांत था जिस ढंग से कोई घर तब शांत होता है जब उसका कोलाहल रचने वाले लोग अन्यत्र होते हैं। शांतिपूर्ण नहीं। विशाल नहीं। बस बेसुरा — किसी बंद कर दी गई मशीन की चुप्पी, न कि किसी विश्राम करते हुए स्थान की चुप्पी। जिसने भी कुछ दिन ऐसे घर में अकेले बिताए हों जो सामान्यतः भरा रहता हो, वह इस अंतर को जानता है और यह भी जानता है कि वह विश्रामदायक नहीं होती।

मेरे पास करने को कुछ न था।

मैं इस विषय में सटीक रहना चाहता हूँ, क्योंकि उसके बाद के वर्षों में बहुत-से लोगों ने मुझसे पूछा है कि उस दिन मैंने क्या अनुभव किया। वे आशा भरकर पूछते हैं। वे चाहते हैं कि उत्तर

यह हो कि मैंने कुछ अनुभव किया — एक खिंचाव, एक पुकार, कंधे पर एक हाथ, एक हलचल। मैं समझता हूँ क्यों। इससे कहानी अधिक सुव्यवस्थित हो जाती और इससे ब्रह्मांड उससे अधिक सचेत प्रतीत होता जितना प्रमाण समर्थन करता है।

मैंने कुछ अनुभव नहीं किया। मैं ऊब गया था।

कोई पूर्वाभास न था और आत्मा की कोई बेचैनी न थी। एक गरम दोपहर में एक खाली फ़्लैट में एक व्यक्ति था जिसके सामने घंटे पड़े थे और जिनका उसके लिए कोई उपयोग न था — एक ऐसी दशा जो इतनी साधारण है कि उल्लेख के योग्य भी नहीं, और जो — अब मुझे संदेह होने लगा है — उन अत्यंत विरल दशाओं में से एक है जिनमें कोई नई वस्तु भीतर प्रवेश कर सकती है।

हम प्रायः उपलब्ध नहीं होते। यही समूची कठिनाई है। मनुष्य का ध्यान जागते ही किसी न किसी के नाम बँधा होता है। प्रत्येक घंटे का कोई दावेदार होता है। उस पूर्णतः बँधी हुई दशा में कोई अपरिचित वस्तु प्रवेश नहीं कर सकती, क्योंकि उसके बैठने के लिए कोई स्थान ही नहीं होता।

ऊब कोई आध्यात्मिक अवस्था नहीं है। किन्तु वह एक रिक्ति है।

और रिक्ति कोई शून्य नहीं होती।

◆

मैं पढ़ने के लिए कुछ ढूँढ़ने अलमारी के पास गया।

आगे जो हुआ उसमें कोई नाटकीयता नहीं है और मैं कोई गढ़ूँगा भी नहीं।

मैंने पुस्तकों की पीठों पर दृष्टि दौड़ाई जैसे कोई दौड़ाता है, पढ़ते हुए भी वास्तव में न पढ़ते हुए, इस प्रतीक्षा में कि कोई वस्तु स्वयं आगे आ जाए।

और मुझे आपको बताना चाहिए कि वे पीठें क्या थीं, क्योंकि अब यह उस ढंग से महत्वपूर्ण है जिस ढंग से एक अध्याय पूर्व न होता। वह कोई सामान्य पुस्तकालय न था। वह असमानुपातिक रूप से एक साधक का पुस्तकालय था — उस छिपे हुए भीतरी मनुष्य का संचय जिसका मैंने वर्णन किया है, पंद्रह वर्षों का: कई हाथों की गीता, उपनिषद्, विवेकानंद,

दयानंद, ज्ञानेश्वरी, वे पुस्तकें जो कोई तब ख़रीदता है जब वह सोलह वर्ष की आयु से खोज रहा हो और किसी को न बता रहा हो। मैं इस अलमारी के लिए अजनबी न था। मैं उस पर की प्रत्येक पुस्तक को जानता था। मैंने उस पर की प्रत्येक पुस्तक पढ़ ली थी।

एक को छोड़कर हर पुस्तक।

और किसी क्षण मेरी दृष्टि उस एक पुस्तक पर आकर ठहर गई जिसे मैंने नहीं पढ़ा था — वही जो विनय ने एक वर्ष पूर्व मुझे एक भोजनालय के बाहर थमाई थी, और जिसके विरुद्ध मैंने तर्क दिया था और फिर उसे रखकर भुला दिया था।

मैं यहाँ सावधान रहना चाहता हूँ, क्योंकि यह ठीक वही प्रकार का क्षण है जिसे कोई व्यक्ति, पीछे मुड़कर देखने पर, महत्व से भरने के प्रलोभन में पड़ जाता है। मैंने कोई महत्व अनुभव नहीं किया। मैंने यह नहीं सोचा आह, वही पुस्तक जिसे मैंने निरस्त किया था, कितना उपयुक्त। मैं एक ऊबा हुआ व्यक्ति था जिसकी दृष्टि उसकी एकमात्र अपठित वस्तु पर आ ठहरी थी, और उस स्थिति का एकमात्र रोचक तथ्य — एक ऐसा रोचक तथ्य जिसे मैंने वर्षों तक नहीं लक्षित किया — यह था: किसी साधक के पुस्तकालय की वह एकमात्र पुस्तक जिसे उस साधक ने पढ़ने से मना कर दिया था, वही थी जिसे एक ऐसे व्यक्ति ने लिखा था जिसने वास्तव में वह वस्तु पा ली थी जिसे शेष समूचा पुस्तकालय केवल खोज रहा था।

और फिर मैंने कुछ ऐसा किया जिसे मैं कभी समझा नहीं पाया, और जिसे समझाने का प्रयास करना मैंने छोड़ दिया है, क्योंकि जो भी व्याख्या मैं रचता हूँ वह संदेहास्पद रूप से मेरी ही चापलूसी करती निकलती है।

मैंने उसे आरम्भ से नहीं खोला।

मैंने यह देखने के लिए भूमिका नहीं पढ़ी कि लेखक ने स्वयं के लिए क्या दावा किया है। मैंने प्रकाशक की टिप्पणी या अनुशंसाएँ नहीं देखीं। मैंने वह कुछ भी नहीं किया जो एक संशयवादी तब करता है जब वह किसी पुस्तक को खंडन करने के अभिप्राय से उठाता है — जो सब के सब अंतर्वस्तु न पढ़नी पड़े, इसके लिए आवरण पढ़ने के ढंग-भर हैं।

मैंने उसे कहीं बीच में से खोला, जैसे कोई ऐसी पुस्तक खोलता है जिसे समाप्त करने का उसका कोई अभिप्राय नहीं होता।

अध्याय तेरह।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग। क्षेत्र, और क्षेत्र का ज्ञाता।

मैंने खड़े-खड़े पढ़ा, क्योंकि मैंने अभी बैठने का निश्चय नहीं किया था।

◆

अब मुझे यह वर्णन करने का प्रयास करना होगा कि क्या हुआ, और मैं पाता हूँ कि यह इस अध्याय का सबसे कठिन अनुच्छेद है, क्योंकि कुछ भी नहीं हुआ।

कोई दिव्य-दर्शन न था। कोई सिहरन नहीं। सम्बोधित किए जाने की कोई अनुभूति नहीं। मैं द्रवित नहीं हुआ। यदि आप उस फ़्लैट में चले आते तो आप एक व्यक्ति को पुस्तक पढ़ते हुए देखते, और यदि आप उससे पूछते कि वह क्या सोचता है तो वह आपको एक सुविचारित तकनीकी उत्तर देता।

मैं जिससे मिला वह एक गुण था, और वह गुण था ईमानदारी।

मुझे ठीक-ठीक बताना होगा कि मेरा अभिप्राय क्या है, क्योंकि यह शब्द प्रयोग से नरम पड़ चुका है। मेरा अभिप्राय निष्कपटता नहीं है। निष्कपट मनुष्य निरंतर निरर्थक बातें लिखते हैं और उनके प्रत्येक शब्द में उनका पूरा अभिप्राय होता है। मेरा अभिप्राय किसी ऐसी वस्तु के अधिक निकट है जो एक अभियंता का तब होता है जब वह कोई प्रतिवेदन पढ़ता है और दो पृष्ठों के भीतर बता सकता है कि जिस व्यक्ति ने उसे लिखा वह वास्तव में उस स्थल पर गया था या नहीं।

कुछ संकेत होते हैं। एक बार जान लेने पर वे सूक्ष्म नहीं रह जाते।

जो व्यक्ति वहाँ गया नहीं होता, वह चिकना कर देता है। वह कठिन अंश पर पहुँचता है और उसका गद्य तेज़ हो जाता है; वह जोड़ को एक ऐसे वाक्यांश से ढक देता है जो व्याख्या-सा सुनाई देता है और, यदि आप रुककर उसे परखें, तो वही बात दुबारा कहना निकलता है। जो व्यक्ति वहाँ गया होता है, वह कठिनाई पर धीमा हो जाता है। वह आपको बताता है कि यह कठिन है। वह आपको बताता है कि वह कहाँ आगे न जा सका, और उसने उसके विषय में क्या किया, और क्या अस्पष्ट रह गया। उसे उस वस्तु में अधिक रुचि होती है, न कि उस वस्तु

के विषय में वह जो प्रभाव जमा रहा है उसमें — जो किसी भी क्षेत्र में एक विरल दशा है और इस क्षेत्र में तो लगभग अज्ञात।

यही मुझे मिला। वह लेखन प्रदर्शन नहीं कर रहा था। वह प्रतिद्वंद्वी भाष्यकारों के विरुद्ध किसी पक्ष का बचाव नहीं कर रहा था। वह वह नहीं कर रहा था जो इतना सारा धार्मिक लेखन करता है, अर्थात् अपनी प्रशंसा की अलंकृतता से लेखक की योग्यता प्रमाणित करना। वह पाठक को बार-बार किसी वस्तु की ओर मोड़ता रहता था — उसकी ओर संकेत करते हुए, आग्रहपूर्वक, और फिर मार्ग से हट जाते हुए।

और एक दूसरी बात थी, जिसे शब्दों में बाँधने में मुझे थोड़ा अधिक समय लगा और जिसे मैंने, उस दोपहर, एक अलमारी के पास खड़े-खड़े, शब्दों में बाँधा।

यह व्यक्ति किसी ऐसी वस्तु का वर्णन कर रहा है जिसे इसने देखा है।

किसी ऐसी वस्तु का नहीं जिसके विषय में इसने पढ़ा हो। किसी ऐसी वस्तु का नहीं जिस तक इसने तर्क से पहुँचा हो, या जिसे उत्तराधिकार में पाया हो, या अन्य मनुष्यों के विवरणों से पुनर्निर्मित किया हो। इसके और इसकी सामग्री के बीच का सम्बन्ध एक साक्षी का किसी घटना से सम्बन्ध था — और उस सम्बन्ध की गद्य में एक ऐसी छाप होती है जिसे जाली नहीं बनाया जा सकता, और जिसे पहचानना मैंने पूर्णतः लौकिक कारणों से पंद्रह वर्ष सीखा था, क्योंकि मेरा कार्यजीवन यह जानने पर निर्भर था कि दो प्रतिवेदनों में से कौन-सा उस व्यक्ति द्वारा लिखा गया था जो वास्तव में उस स्थल पर खड़ा हुआ था।

मैं सावधान रहना चाहता हूँ। मैं यह नहीं कह रहा कि मैंने उन पर विश्वास किया। मैंने उन पर विश्वास नहीं किया। विश्वास इसमें सम्मिलित ही न था और समय से पूर्व होता।

मैं यह कह रहा हूँ कि मैंने एक कोटि को पहचाना। मैं कई वर्षों से गीता के विषय में बहुत कुछ पढ़ता आ रहा था, उस ढीले ढंग से जैसे एक शिक्षित भारतीय पढ़ता है, और मैंने जो कुछ भी पढ़ा था वह अपने विषय से भाष्य के सम्बन्ध में खड़ा था। यह नहीं था। यह साक्ष्य के सम्बन्ध में खड़ा था।

और एक अभियंता साक्ष्य को अस्वीकार नहीं कर सकता। वह उस पर संदेह कर सकता है, उसे परख सकता है, उसका मिलान कर सकता है, पुष्टि की माँग कर सकता है। किन्तु साक्ष्य

प्रमाण होता है। उन घटनाओं के विषय में यही एकमात्र प्रकार का प्रमाण है जो किसी एक स्थान पर, किसी एक समय, किसी एक व्यक्ति की उपस्थिति में घटती हैं — जो कि समूचा इतिहास है, अधिकांश विधि है, और, जैसा कि मैं अंततः जानने वाला था, यह समस्त कथा है।

◆

फिर मैंने वह किया जो, पीछे मुड़कर देखने पर, वास्तविक मोड़-बिंदु था, और जिसे मैंने तनिक भी महत्व-बोध के बिना किया।

मैंने पुस्तक बंद की, पहले पृष्ठ पर लौटा, और भली-भाँति फिर से आरम्भ किया।

मैं चाहता हूँ कि पाठक यह लक्षित करे कि वह कितनी छोटी बात थी। एक व्यक्ति जिसके पास एक ख़ाली दोपहर है, किसी पुस्तक को आरम्भ से पढ़ने का निश्चय करता है। इसमें कुछ भी नहीं है। यह कोई ऐसा निर्णय नहीं जिसे कोई अंकित करे।

किन्तु विचार कीजिए कि उसने किसे उलट दिया। मैंने एक पूर्ण और अकाट्य तर्क रचा था, अभ्यस्त किया था, और एक मित्र के समक्ष ऊँचे स्वर में प्रस्तुत किया था कि इस पुस्तक को क्यों नहीं पढ़ा जाना चाहिए। वह तर्क अब भी अखंडित था। अध्याय तेरह में किसी वस्तु ने उसका खंडन नहीं किया था। मैं उस संध्या उसे शब्दशः फिर से कह सकता था, और वह उतना ही सुदृढ़ होता जितना वह उस भोजनालय के बाहर था।

और फिर भी मैं पहले पृष्ठ पर लौट गया।

यह इस समूचे विवरण की पहली वस्तु है जिसे मैं अपने ही सिद्धांतों से समझा नहीं सकता। वे स्वप्न नहीं, वह जंगल नहीं, बाद में जो कुछ आया उनमें से कुछ भी नहीं। यह। एक व्यक्ति जिसकी समूची विधि तर्क का अनुसरण करना थी, चुपचाप तर्क का अनुसरण करने से इनकार करते हुए, और यह लक्षित न करते हुए कि वह ऐसा कर रहा है।

मैंने उसे पूरा पढ़ा।

◆

मैं जो पढ़ा उसका सारांश नहीं दूँगा, दो कारणों से। पहला यह कि वह पुस्तक विद्यमान है और उपलब्ध है और मेरा कोई सारांश उससे बेहतर न होगा। दूसरा अधिक महत्वपूर्ण है: उस पुस्तक का सारांश ठीक वही वस्तु होती जिसके विषय में पुस्तक स्वयं तर्क देती है कि वह की ही नहीं जा सकती, और मैं एक आध्यात्मिक संस्मरण का आरम्भ ठीक वही भूल करके नहीं करना चाहूँगा जिसे करना छोड़ने में मुझे पच्चीस वर्ष लगे।

अंतर्वस्तु के विषय में मैं केवल इतना कहूँगा, और फिर आगे बढ़ूँगा।

मैंने, बहुत सारे पूर्व पठन के बल पर, यह मान लिया था कि गीता एक दार्शनिक दस्तावेज़ है — कि उसका विषय वास्तविकता के स्वरूप के विषय में मतों का एक समुच्चय है, जिन पर विद्वान लोग बारह सौ वर्षों से असहमत रहे हैं। इसके बजाय मैंने यह पाया कि वह ग्रंथ बार-बार एक प्रक्रिया का वर्णन कर रहा था। कोई अपनाया जाने वाला निष्कर्ष नहीं। किसी व्यक्ति द्वारा, समय के साथ, किए जाने वाली एक वस्तु, जिसके परिणाम उसे करने वाले व्यक्ति के लिए देखे जा सकते।

यह दर्शन नहीं है। मैं जानता हूँ कि दर्शन कैसा दिखता है।

यह एक विधि-खंड (मेथड सेक्शन) है।

और विधि-खंड एक अत्यंत विशिष्ट प्रकार का दावा होता है। वह मिथ्या सिद्ध किया जा सकने योग्य होता है। वह कहता है: यह करो, और यह घटित होगा। वह उस एकमात्र प्रतिक्रिया को आमंत्रित करता है जिसे कोई भी भाष्य कभी आमंत्रित नहीं कर सकता, अर्थात् करके देखो।

और मैंने पाया कि मैं उस व्यक्ति से मिलना चाहता हूँ जिसने इसे लिखा था।

मैं इसे सटीकता से प्रस्तुत करना चाहूँगा, क्योंकि वह कोई आध्यात्मिक अभिलाषा न थी और मैं उसे किसी में फुलाकर बदलने से इनकार करता हूँ। वह उसके अधिक निकट थी जो मुझे किसी अपरिचित प्रयोगशाला से आए किसी उत्कृष्ट तकनीकी शोधपत्र को पढ़ने पर अनुभव होता: लेखक के सामने बैठकर उससे वे चार-पाँच प्रश्न पूछने की एक पूर्णतः व्यावहारिक इच्छा जो उस शोधपत्र ने उठाए थे और सुलझाए न थे।

मेरे पास प्रश्न थे। बस इतना ही था। मेरे पास बहुत सारे प्रश्न थे और मैं, अपने वयस्क जीवन में पहली बार, एक ऐसे दस्तावेज़ से मिला था जिसने मुझे यह सोचने पर विवश किया कि सम्भवतः कोई ऐसा व्यक्ति विद्यमान हो जो उनका उत्तर देने में सक्षम हो।

वह व्यक्ति जिसने, आठ या नौ वर्ष की आयु में, लकड़ी के धुएँ में, अम्बेडकर नगर के एक बुहारे हुए फ़र्श पर, यह पूछा था उस संत ने वास्तव में क्या जाना था — और जिसने फिर तीस वर्ष अपनी ही संतुष्टि के लिए यह सिद्ध करने में बिताए थे कि वह प्रश्न अनुत्तरणीय है —

अभी-अभी, बिना लक्षित किए, उसे फिर से पूछ चुका था।

किसी ऐसे व्यक्ति के विषय में जो अब भी जीवित था।

अध्याय चार:

वह दूरभाष

मैं पुस्तक समाप्त कर चुका था, और मैं उस व्यक्ति से मिलना चाहता था जिसने उसे लिखा था, और मैं उस चाह के साथ बैठा था — उसे उलट-पुलटकर देखते हुए, उसे कुछ हास्यास्पद पाते हुए, यह सोचते हुए कि कोई कहेगा भी तो क्या — जब दूरभाष बजा।

मैं यहाँ धीमा होना चाहता हूँ, क्योंकि यह पुस्तक की पहली घटना है जिसका मैं कोई हिसाब नहीं दे सकता, और मैंने ठीक वहीं सावधान रहना सीखा है जहाँ मैं वस्तुओं का हिसाब नहीं दे सकता। ठीक इन्हीं बिंदुओं पर एक व्यक्ति कहानी को सुधारने के सर्वाधिक प्रलोभन में पड़ता है, और यदि वह ऐसा करे तो पाठक को खो देने की सर्वाधिक सम्भावना होती है।

अतः मुझे इस विषय में सटीक रहने दीजिए कि क्या हुआ और उतना ही सटीक इस विषय में कि वह क्या सिद्ध करता है और क्या नहीं।

◆

मैंने उसे उठाया।

वह विनय थे।

वही मित्र। वह व्यक्ति जिसने लगभग एक वर्ष पूर्व घाटकोपर के एक भोजनालय के बाहर मेरे हाथों में वह पुस्तक रखी थी और फिर, जिसे मैं अब पर्याप्त कौशल के रूप में पहचानता हूँ और जिसे तब मैं तनिक भी नहीं पहचानता था, उसके विषय में मुझसे बहस करने से इनकार कर दिया था।

मैंने उनसे कहा — इससे पहले कि उन्होंने वास्तव में कुछ कहा हो, मुझे लगता है, क्योंकि मुझे स्मरण है कि शब्द शिष्टाचार से तनिक आगे लुढ़क पड़े — कि मैंने अभी-अभी वह पुस्तक समाप्त की है। कि मैंने उसे पूरा पढ़ लिया है। और कि मैं स्वामी अड़गड़ानंद से मिलना चाहता हूँ।

एक ऐसा विराम आया जो, स्मृति में, एक ऐसा महत्व अर्जित कर लेता है जो सम्भवतः उस समय उसमें न रहा हो। और फिर विनय ने मुझे बताया कि उन्होंने फ़ोन क्यों किया था।

स्वामी जी बम्बई आ रहे थे।

◆

अब। मैं इस समय-संयोग का क्या अर्थ निकालूँ?

मेरे पास निश्चय करने के लिए एक चौथाई शताब्दी रही है, और मैं पाठक को इस विषय की ईमानदार स्थिति दूँगा, न कि कोई समाधान, क्योंकि कोई समाधान बेईमानी होगी।

यहाँ संशयवादी का विवरण है, और मैं इसे पूरा देता हूँ क्योंकि संशयवादी मैं ही था और मुझ पर उसकी बात कहने का ऋण है। विनय वही व्यक्ति थे जिन्होंने मुझे वह पुस्तक दी थी। वे स्वामी जी की यात्रा-योजनाओं को जानते थे, सम्भवतः, क्योंकि वे उस संसार से एक ऐसे ढंग से जुड़े थे जिस ढंग से मैं नहीं था। हो सकता है वे उन सभी को फ़ोन कर रहे हों जिन्हें वे जानते थे और जिन्हें जाने के लिए मनाया जा सकता था। कि उन्होंने ठीक उसी दोपहर मुझे फ़ोन किया जिस दिन मैंने पुस्तक समाप्त की, यह स्वयं में असाधारण नहीं है। मेरे पास पुस्तक लगभग एक वर्ष रही थी; मैंने उसे चार दिनों में पढ़ा; इस बात की सम्भावना कि उस वर्ष में विनय का कोई फ़ोन किसी भी चार-दिवसीय अंतराल में आ पड़े, नगण्य न थी। और मानव-स्मृति एक ऐसी संपीड़न-प्रणाली है जो साधारण को त्याग देती है और चौंकाने वाले को रख लेती है, फिर, और बुरा यह कि, चौंकाने वाले को उससे भी अधिक चौंकाने वाली किसी वस्तु में सुव्यवस्थित कर देती है। सम्भव है उन्होंने अगले दिन फ़ोन किया हो और मैंने उसे खिसका दिया हो। सम्भव है मैंने पुस्तक इसलिए समाप्त की हो क्योंकि मेरे किसी भाग को पता था कि वे फ़ोन कर सकते हैं। मैं इन्हें अस्वीकार नहीं कर सकता। यदि मैं ढोंग करूँ कि मैं कर सकता हूँ तो मैं एक बुरा अभियंता होऊँगा।

यह ईमानदार संशयपूर्ण विवरण है और मुझे नहीं लगता कि यह ग़लत है। मुझे लगता है कि यह पूर्ण है, इस अर्थ में कि यह किसी तथ्य को अव्याख्यात नहीं छोड़ता।

और मैं इसके विषय में कुछ ऐसा कहना चाहता हूँ जिसे कह पाने में मुझे कई वर्ष लगे, क्योंकि यही वह धुरी है जिस पर इन घटनाओं से मेरा समूचा सम्बन्ध अंततः घूमा।

संशयपूर्ण विवरण पूर्ण है, और उसने कुछ भी नहीं बदला।

क्योंकि संयोग के प्रश्न के नीचे, जिसे संयोग का प्रश्न छूता तक नहीं, वास्तव में जो हुआ वह यह था। एक व्यक्ति जिसने तीस वर्ष एक विशेष प्रकार की पुस्तक न पढ़ने के लिए एक अकाट्य तर्क रचने में बिताए थे, उसने वह पुस्तक पढ़ ली थी, उसे रख न पाया था, अपने ही तर्क के विरुद्ध पहले पृष्ठ पर लौट गया था, उसे चार दिनों में समाप्त कर लिया था, और स्वयं को — एक ऐसी तीव्रता के साथ जिसने उसे लज्जित किया — यह चाहते हुए पाया था कि वह एक ऐसे जंगल में उड़ जाए जिसके विषय में उसने कभी सुना न था, एक ऐसे संत के चरणों में बैठने के लिए जिस पर वह विश्वास नहीं करता था।

दूरभाष संयोग से बजा या किसी और वस्तु से, यह एक सचमुच रोचक प्रश्न है और मैं उसका उत्तर नहीं दे सकता। किन्तु वह मेरा प्रश्न नहीं है। मेरा प्रश्न यह है कि दूरभाष थामे हुए वह व्यक्ति, उस संक्रमण को लक्षित किए बिना, ऐसा कैसे बन गया जो हाँ कहेगा।

वह संयोग, यदि वह कोई था, बाह्य है। वह संसार में घटा, और संसार संयोगों से भरा है, और एक और संयोग कुछ भी सिद्ध नहीं करता। जिस वस्तु को वास्तव में व्याख्या की आवश्यकता थी वह भीतर घटी थी, चार दिनों में, और मेरे पास उसका कोई भी हिसाब न था। मेरे उपकरण उस तक पहुँच ही न पाते थे। मेरे वयस्क जीवन में वह पहली बार था जब कोई ऐसी वस्तु घटी थी जिस तक मेरे उपकरण न पहुँचते थे, और मैं तब यह नहीं समझता था कि यही — न कि किसी फ़ोन-कॉल का समय — वह वास्तविक विसंगति थी, यंत्र-पटल पर वह पाठ जो सम्भव ही न होना चाहिए था।

मैंने संयोग को लक्षित किया। हर कोई संयोग को लक्षित करता है; यह उस प्रकार की वस्तु है जो भोजन की मेज़ पर एक अच्छी कहानी बनाती है। मैंने, वर्षों तक, उसके ठीक बगल में बैठी हुई कहीं अधिक विचित्र वस्तु को नहीं लक्षित किया, जो यह थी कि मैं बदल गया था और बता नहीं सकता था कैसे।

◆

और कुछ दिनों बाद मैं हवाई अड्डे पर था, एक छोटे थैले और बड़ी संख्या में प्रश्नों के साथ, एक ऐसे व्यक्ति की प्रतीक्षा करते हुए जिसे मैंने कभी देखा न था, अपने वयस्क जीवन का

सर्वाधिक अपने-स्वभाव-के-विपरीत कार्य करने ही वाला, और समूचे समय स्वयं से यह कहते हुए कि मैं तो बस एक लेखक से उसकी पुस्तक के विषय में कुछ प्रश्न पूछने जा रहा हूँ।

मैं उस पर भी विश्वास करता था। मैं स्वयं अपने विषय में समझदारी-भरी बातों पर विश्वास करने में बहुत निपुण था।

यह उल्लेखनीय है कि एक व्यक्ति कितने लंबे समय तक अपने ही आचरण को स्वयं के समक्ष विवेकसंगत शब्दों में समझाता रह सकता है, ठीक एक जंगल के छोर तक, और कभी-कभी उससे बहुत आगे तक भी।

अध्याय पाँच:

प्रतीक्षालय में बैठा वह व्यक्ति

किसी के बताने से पहले ही मैं जान गया था कि वे कौन हैं, और इस तथ्य के साथ मैं कभी सहज नहीं रहा।

मैं यह बताना अधिक पसंद करता कि उनकी ओर मेरा ध्यान किसी ने दिलाया, कि मैंने एक भीड़-भरे टर्मिनल में खोजा और किसी साथी ने उन्हें पहचनवाया, क्योंकि किसी अजनबी को पहचानने का यही एक साधारण ढंग होता और यह पुस्तक साधारण के प्रति समर्पित है, जहाँ भी साधारण सत्य हो। किन्तु वह सत्य न होता। मैंने उन्हें हवाई अड्डे में दूर से, तत्काल, छाँट लिया, और मैंने ऐसा किसी ऐसी प्रक्रिया से नहीं किया जिसे मैं पुनर्निर्मित कर सकूँ।

मुझे सटीक रहने का प्रयास करने दीजिए, क्योंकि यहाँ प्रलोभन इसे रहस्यमय बना देने का है और वास्तविकता रहस्यमय से अधिक रोचक थी।

◆

हवाई अड्डा यह देखने के लिए एक अच्छा स्थान है कि मनुष्यों के बीच महत्व किस प्रकार वितरित होता है, क्योंकि हवाई अड्डा लगभग हर उस संकेत को छीन लेता है जिसका हम सामान्यतः उपयोग करते हैं। हर कोई थका हुआ है। हर कोई कुछ न कुछ उठाए हुए है। प्रकाश बुरा और सपाट कर देने वाला है। उस वातावरण में पद-प्रतिष्ठा प्रायः अदृश्य होती है — धनी और साधारण एक ही पंक्तियों में खड़े होते हैं और एक ही ढले हुए प्लास्टिक के आसनों पर बैठते हैं, और आप यह नहीं बता सकते कि कोई व्यक्ति उड़ान की प्रतीक्षा किस ढंग से करता है, इससे उसके विषय में बहुत कुछ।

और उस समतल कर देने वाले, अनकहे स्थान के मध्य में, उस क्षेत्र में एक विक्षोभ था।

यही वह सर्वाधिक सटीक ढंग है जिससे मैं इसे कह सकता हूँ, और मैंने इस पर वर्षों विचार किया है। बात यह न थी कि वे उल्लेखनीय दिखते थे, यद्यपि वे दिखते थे। बात यह थी कि

उनके चारों ओर हर किसी का व्यवहार स्वयं को, सूक्ष्म रूप से, पुनर्व्यवस्थित कर चुका था — जैसे लोहे की बुरादी किसी ऐसी वस्तु के चारों ओर पुनर्व्यवस्थित हो जाती है जिसे वह देख नहीं सकती। लोग उनकी ओर उन्मुख हो रहे थे, बिना ऐसा प्रतीत हुए। उनके चारों ओर एक स्थान खुल गया था जो भीड़ें प्रायः नहीं देतीं। और सुरक्षा-जाँच पर — यह मैंने स्पष्ट रूप से देखा, और यही वह वस्तु है जिस पर मैं बार-बार लौटता हूँ — कर्मचारी झुक रहे थे। उनमें से सब नहीं, और नाटकीय ढंग से नहीं। किन्तु वर्दीधारी लोग, जिनका समूचा कार्य ही सबसे समान रूप से अप्रभावित रहना है, इस एक यात्री के प्रति सिर झुका रहे थे जब वे गुज़रे। उनमें बैठे पुलिसवालों ने भी वही किया।

अब, मुझमें बैठे अभियंता के पास इसका एक हिसाब तैयार था, और मैं उसे उसका उचित स्थान देना चाहता हूँ, क्योंकि वह एक अच्छा हिसाब था और मैंने उस पर विश्वास किया।

वह हिसाब यह था: यह ठीक वही परिघटना है जिसका मेरा समूचा संत-सिद्धांत वर्णन करता है। समुदाय किसी व्यक्ति में महत्व जमा करता है; वह महत्व समुदाय के व्यवहार में दृश्यमान हो जाता है; और एक नवागंतुक, भीतर चलकर, समुदाय के व्यवहार को पढ़ता है और उसे उस व्यक्ति का गुण समझ बैठता है। झुकते हुए सुरक्षाकर्मी उनके विषय में प्रमाण न थे। वे उन लोगों के विषय में प्रमाण थे जो उनके विषय में पहले ही निश्चय कर चुके थे। मैं अपने ही सिद्धांत को एक हवाई अड्डे में प्रमाणित होते देख रहा था, और मुझे पुष्ट अनुभव करना चाहिए था।

मैंने उन्हें उसी प्रकार सूचीबद्ध किया जैसे मैं हर वस्तु को सूचीबद्ध करता था। एक वृद्ध व्यक्ति। श्वेत दाढ़ी, श्वेत वस्त्र। एक ऐसे स्थान पर अत्वरित जहाँ कोई अत्वरित नहीं होता। वह अत्वरितता एकमात्र वस्तु थी जिसे मेरी सूची तत्काल फ़ाइल न कर सकी, क्योंकि वह किसी शांत व्यक्ति की स्थिरता जैसी नहीं दिखती थी; वह ऐसे व्यक्ति की स्थिरता जैसी दिखती थी जो कहीं और है और जो अपने शरीर को शिष्टाचारवश साथ ले आया है।

मैंने यह सब अंकित किया। और फिर मैंने कुछ ऐसा किया जिसके लिए मेरे सिद्धांत में कोई स्थान न था।

मैं झुक गया।

◆

मैं उस पर ठहरना चाहता हूँ, क्योंकि यह पहली दरार है, और मैं इसकी तिथि ठीक-ठीक बता सकता हूँ: यह तब हुआ जब उन्होंने मुझसे एक शब्द भी न कहा था, इससे पहले कि मुझे उनका कोई अनुभव हुआ हो, एक टर्मिनल के आर-पार से, एक ऐसे व्यक्ति के प्रति जिससे पूछताछ करने के लिए ही मैं वहाँ यात्रा करके गया था।

किसी ने मुझे ऐसा करने का निर्देश न दिया। मेरे ठीक आस-पास कोई भीड़ ऐसा नहीं कर रही थी जिसमें मैं सम्मिलित हो रहा होऊँ। मैं दूर था, एक पर्यवेक्षक, प्रश्नों से भरे थैले वाला एक संशयवादी, और ठीक उसी वस्तु को निरस्त करने के लिए एक पूर्ण सैद्धांतिक ढाँचे के साथ जिसे मैं देख रहा था।

और मेरा शरीर झुक गया। जहाँ मैं खड़ा था वहाँ से थोड़ा-सा, इससे पहले कि मेरे उस भाग से परामर्श किया जाता जो सिद्धांत चलाता है।

मैंने अपने व्यावसायिक जीवन का अच्छा-ख़ासा भाग इस अंतर पर बिताया है कि कोई व्यक्ति क्या कहता है कि वह करेगा और तंत्र वास्तव में क्या करता है, और मैं, उस क्षण में भी, जानता था कि मुझे अभी-अभी अपने ही भीतर उसी प्रकार का एक अंतराल दिखाया गया है। मेरी घोषित स्थिति संशय थी। वास्तविक उद्दीपन को देखते हुए, मेरा व्यवहार श्रद्धा था। और व्यवहार पहले आया — निर्णय से पहले, निर्णय से तेज़, उस प्रतिवर्ती परत में जो ऊपर बैठी समिति के मतदान की प्रतीक्षा नहीं करती।

एक अभियंता इसका सम्मान करता है। जब उपकरण, इससे पहले कि आपने निश्चय किया हो कि उसे क्या पढ़ना चाहिए, कुछ पढ़ लेता है, तो उपकरण प्रायः आपको कुछ ऐसा बता रहा होता है जिस तक आपका सिद्धांत अभी पहुँचा नहीं है। मैंने उससे कोई निष्कर्ष नहीं निकाला। मैंने बस उसे अंकित कर लिया, जैसे आप किसी ऐसी विसंगति को अंकित करते हैं जिसे आप अभी समझा नहीं सकते और जिसे अस्वीकार करने को तैयार नहीं: शरीर झुका। कारण अज्ञात। मत त्यागो।

यह उस बही की पहली प्रविष्टि है जिसे मैंने, यह भली-भाँति स्वीकार किए बिना कि मैं उसे रख रहा हूँ, अगले पच्चीस वर्षों तक रखा।

◆

हमने बात नहीं की।

मैंने स्वयं से कई बार पूछा है कि क्यों, और ईमानदार उत्तर न तो चापलूसी-भरा है और न रहस्यमय। मैंने इसलिए बात नहीं की क्योंकि मैं उपयुक्त सुर नहीं पा सका। हर आरम्भिक पंक्ति जो मैं रचता, परखते ही ग़लत सुनाई देती। मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी — और फिर क्या; ऐसे व्यक्ति की पुस्तक दस हज़ार लोगों ने पढ़ी है। मेरे कुछ प्रश्न हैं — मानो वे कोई परीक्षा-समिति हों और मैं एक अभ्यर्थी। हर उपागम जो मैंने आज़माया, हम दोनों के बीच एक ऐसे सम्बन्ध की कल्पना करता जिसे मैं वास्तव में ढूँढ़ ही न सकता था। मैं नहीं जानता था कि मैं उनके लिए क्या हूँ या वे मेरे लिए क्या हैं, और जब तक आप यह न जान लें, आप पहला वाक्य नहीं चुन सकते।

अतः मैं मौन रहा, और मैंने स्वयं से कहा कि यह मौन धैर्य है, और वह अंशतः धैर्य था और अंशतः कोई ऐसी वस्तु जिसे मैं बहुत समय तक नाम न दूँगा — यह कि मैं उनसे डरता था। उस किसी वस्तु से नहीं जो वे कर सकते थे। उस विशिष्ट ढंग से भयभीत जिस ढंग से आप किसी ऐसे मापन से भयभीत होते हैं जिसके विषय में आपको संदेह हो कि वह उससे भिन्न निकलेगा जिस पर आपने अपनी स्थिति दाँव पर लगा रखी है।

◆

और यहाँ वह विवरण है जिसने मेरी स्थिरता को उलट दिया, और मैं इसे पाठक को ठीक वैसे ही देता हूँ जैसे यह हुआ, बिना सजाए, क्योंकि इसे किसी सजावट की आवश्यकता नहीं।

वे मेरी ओर देखते रहे।

खुलकर नहीं। ऐसे ढंग से नहीं जिसे मैं आँख मिलाकर और सिर हिलाकर सुलझा सकूँ, जो कि वह ढंग है जिससे एक अजनबी की दृष्टि दूसरे की दृष्टि का उत्तर देती है और बात समाप्त कर देती है। वह तिरछी थी — अन्य वस्तुओं के बीच-बीच में, जब मैं, मेरे विचार से, देखा नहीं जा रहा था। मुझे उसका बोध घटित हो जाने के आधे क्षण बाद होता, उसी ढंग से जैसे आपको बोध होता है कि कमरे के उस पार किसी ने अभी-अभी आपसे दृष्टि हटाई है। मैं ऊपर

देखता और उनका ध्यान कहीं और होता — किसी साथी पर, मध्य-दूरी पर, किसी वस्तु पर नहीं।

और फिर, थोड़ी देर बाद, पुनः।

अब, मेरे सिद्धांत को झुकते हुए सुरक्षाकर्मियों से कोई कठिनाई न थी। उसे इससे बहुत बड़ी कठिनाई थी, और मैंने उस समय उस कठिनाई को लक्षित किया, जो मेरा एक छोटा श्रेय है। भीड़ की श्रद्धा भीड़ से पूर्णतः व्याख्यायित थी। किन्तु भीड़ का व्यवहार एक सामूहिक परिघटना है; वह उनके विषय में सामान्य रूप में है, किसी की ओर लक्षित नहीं। यह विशिष्ट था। यह लक्षित था। और चाहे यह जो भी रहा हो, यह वह समुदाय नहीं था जो किसी व्यक्ति में महत्व जमा कर रहा हो। यह एक विशिष्ट वृद्ध व्यक्ति था, एक प्रतीक्षालय में, एक विशिष्ट अजनबी में एक विशिष्ट और बार-बार लौटती रुचि लेते हुए, जिसने उन्हें अपने विषय में कुछ भी नहीं बताया था।

मैं व्याख्याएँ रच सकता था, और मैंने रचीं। वे नवागंतुकों को लक्षित करते हैं; एक संत जो जीवन-भर साधकों को ग्रहण करता है, उन लोगों को पहचानने की एक दृष्टि विकसित कर लेता है जो प्रश्नों का बोझ लिए आते हैं और नहीं जानते कि उसे कैसे उतारें। यह सम्भवतः सत्य भी है। किन्तु यह कोटि की व्याख्या है, और जिसका मैं अनुभव कर रहा था वह कोई कोटि न थी। वह देखा जाना था।

किसी तथ्य के साथ जिसे मैं अभी व्याख्यायित न कर सकता था, मेरे प्रशिक्षण ने मुझे जो एकमात्र कार्य करने योग्य बनाया था, वही मैंने किया। मैंने उसे उस बही में, उस झुकाव के नीचे, उसी हस्तलेख में लिख लिया।

वे मेरी ओर देख रहे हैं। मैंने कुछ नहीं कहा। कारण अज्ञात। मत त्यागो।

जब तक हम औरंगाबाद पहुँचे, उस बही में मेरी दो प्रविष्टियाँ थीं और मैंने एक शब्द भी न बोला था, और मैं, धुँधले ढंग से और प्रतिरोध के साथ, यह समझ गया कि मैं प्रश्न पूछने आया था और, इसके बजाय, पढ़ा जा रहा था।

अध्याय छह:

टूटी हुई जीप

अपने सद्गुरु से मैंने जो पहली बात कही, वह एक तर्क था। मुझे इस पर गर्व नहीं है और मैं इसे बदलूँगा भी नहीं, क्योंकि वह उस व्यक्ति के प्रति सच्चा था जो मैं तब था, और उन्होंने उसका उत्तर एक ऐसे ढंग से दिया जिसने मुझे बीस वर्षों से अधिक समय तक उलझाए रखा है।

◆

हवाई अड्डे से आते हुए, हम एक घर पर रुके।

मैं उन पहलवानों को अब एक ऐसी विडम्बना के साथ अंकित करता हूँ जो मैंने तब अनुभव नहीं की थी, और मैं पाठक को उसे अनुभव करने दूँगा, बिना उस पर बल दिए। मैं एक ऐसे संसार से आया था जिसमें मनुष्य स्वयं को प्रयत्न से गढ़ता है। मैं ऐसे पुरुषों से भरे एक घर में बैठा था जिन्होंने अपने शरीर को, ठीक-ठीक और दृश्य रूप से, प्रयत्न से गढ़ा था — ऐसे पुत्र जो अपने पिताओं जैसे उस प्रशिक्षण से बने थे जो झूठ नहीं बोलता और जिसे जाली नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि बारबेल, रोबोट की भाँति, ठीक वही करता है जो आपका अनुशासन वास्तव में था, न कि वह जो आप दावा करते हैं कि वह था। मेरे अपने ही दर्शन के जीवित प्रमाण से भरा एक कमरा। और मैं उसी कमरे में खड़े होकर यह पूछने ही वाला था कि वह दर्शन ठीक एक बिंदु पर विफल क्यों हो जाता है।

मैंने उस समय उस विडम्बना को नहीं देखा। यही तो इस पुस्तक का मूल भाव है। आप उस आकृति को नहीं देखते जिसके भीतर आप स्वयं खड़े होते हैं।

◆

मेरे पास बहुत-से प्रश्न थे। यह मैं कह चुका हूँ। किन्तु जो प्रश्न निकला — वह जो सबसे आगे बैठा था, वह जो सब के नीचे वास्तव में मूल-प्रश्न था — वह यह था। मैं उसे वैसे ही दूँगा जैसे मैंने पूछा, उसी आकार में जिस आकार में मैंने पूछा, क्योंकि आकार महत्वपूर्ण है।

गधे का पुत्र गधा होता है, मैंने कहा। ऊँट का पुत्र ऊँट होता है। घोड़े का पुत्र घोड़ा होता है। समूची प्रकृति में, संतान अपने जनक के समान ही कोटि की होती है; यह एक नियम है, और इसमें कोई अपवाद नहीं होता।

हमें बताया जाता है कि हम ईश्वर की संतान हैं।

तो फिर ईश्वर का पुत्र ईश्वर क्यों नहीं है?

क्यों, यदि यह एक सम्बन्ध वास्तविक है, तो केवल यही उस नियम को क्यों तोड़ता है जो प्रत्येक अन्य सम्बन्ध को अनुशासित करता है? हम वह क्यों नहीं हैं जिससे उत्पन्न कहा जाता है? जनक और संतान के बीच यह अंतराल — इस अंतराल की समूची विपदा — क्यों, जबकि सृष्टि में और कहीं ऐसा कोई अंतराल है ही नहीं?

◆

मैं चाहता हूँ कि पाठक देखे कि वह किस प्रकार का प्रश्न है, क्योंकि प्रकार अंतर्वस्तु से अधिक महत्वपूर्ण है।

वह कोई क्रंदन नहीं है। वह किसी पीड़ित मनुष्य का व्यथित हम दुःख क्यों भोगते हैं नहीं है, यद्यपि दुःख उसके भीतर है। वह एक न्याय-वाक्य (सिलॉजिज़्म) है। उसकी एक संरचना है। समान से समान उत्पन्न होता है; नियम सार्वभौमिक है; या तो नियम एक असम्भव अपवाद स्वीकार करता है, या फिर यह आधार-वाक्य कि "तुम ईश्वर की संतान हो" असत्य है — और मैं, मुझे लगता है, यह अपेक्षा कर रहा था कि उन्हें इन दो में से किसी एक सींग पर विवश किया जाएगा। या तो अपवाद का बचाव करें, जिसका बचाव नहीं किया जा सकता, या फिर आधार-वाक्य को छोड़ दें, जो उस समूची परम्परा की नींव है जिसका वे प्रतिनिधित्व करते थे। मैं, स्वयं के समक्ष भली-भाँति स्वीकार किए बिना, उनके लिए एक छोटा-सा जाल लाया था, उसी स्तर पर बनाया गया जिस स्तर पर मैं वस्तुएँ बनाता था।

वह एक ऐसे व्यक्ति का प्रश्न था जो विश्वास करता था कि सत्य प्रतिज्ञप्तियों (प्रस्तावों) का विषय है, और कि प्रतिज्ञप्तियाँ तर्क से टिकती या गिरती हैं, और कि किसी भी दावे पर लगाया गया एक पर्याप्त स्वच्छ तार्किक उपकरण या तो उसे तोड़ देगा या पुष्ट कर देगा।

मैं आज भी सोचता हूँ कि वह एक अच्छा प्रश्न है। मैं इस विषय में स्पष्ट रहना चाहता हूँ। पच्चीस वर्ष बाद मुझे नहीं लगता कि वह कोई मूर्खतापूर्ण या अहंकारी प्रश्न था। वह मेरे पास का श्रेष्ठतम प्रश्न था, जितना अच्छा मैं पूछ सकता था उतना अच्छा पूछा गया, और वह उस गहनतम वस्तु तक सीधा जाता है जिसे पूछा जा सकता है।

उन्होंने उसका उत्तर नहीं दिया।

◆

किन्तु स्वामी जी रुके नहीं।

यही वह विवरण है जिसे मैं कभी पार नहीं कर पाया, और मैं इसे यहाँ स्पष्ट रूप से रखता हूँ और पुस्तक में बहुत बाद में इस पर लौटूँगा, क्योंकि इसका अर्थ समझने में मुझे वर्षों लगे। उन्होंने प्रश्न पर विचार नहीं किया। उन्होंने वह नहीं किया जो कोई व्यक्ति तब करता है जब कोई कठिन प्रश्न आ गिरता है — वह छोटी-सी साँस भरना, वह एकत्रित होना, उत्तर गढ़ने की वह दृश्यमान क़ीमत। उन्होंने ऐसे उत्तर दिया मानो वे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मानो वे पहले से ही जानते थे कि वह आ रहा है और मेरे कहने से पहले ही उत्तर तैयार रखा था, जैसे किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर आपके पास तैयार होता है जो आपने स्वयं कभी पूछा हो।

और जो उन्होंने मुझे दिया वह कोई उत्तर न था। वह एक कथा थी।

◆

एक जीप थी, उन्होंने कहा।

वह पहाड़ों में चल रही थी, और उसकी दुर्घटना हो गई, और वह सड़क से नीचे उतरकर गिर पड़ी — नीचे, बहुत नीचे, उस ऊँचाई से जहाँ सड़क थी, बहुत नीचे बसे प्रदेश तक। और जहाँ वह आकर रुकी, वह जंगल और जनजाति का एक क्षेत्र था, ऐसे लोग जो अलग-थलग रहते थे, जो कभी वहाँ ऊपर नहीं गए थे जहाँ सड़कें और नगर थे, जिन्होंने उन स्थानों का जीवन कभी नहीं देखा था।

फिर भी उन्होंने एक वस्तु देखी थी, दूर से। उनके प्रदेश के आर-पार, उसके छोर पर, एक रेल की पटरी जाती थी, और उस पर, समय-समय पर, एक रेलगाड़ी गुज़रती थी — एक विशाल

लौह-वस्तु जो स्वयं चलती थी, जिसे उन्होंने, दूर, जब से किसी को स्मरण था तब से, गुज़रते देखा था। वे नहीं जानते थे कि वह क्या है। किन्तु वे उसे जानते थे, जैसे आप अपने क्षितिज की किसी विशेषता को जानते हैं।

और अब, उनके बीच गिरी हुई, यह जीप थी। लोहा। स्वयं चलने के लिए बनी। टूटी हुई, विश्राम में, उनके जंगल में अपनी बग़ल के बल।

वे उसके चारों ओर एकत्र हुए। और उनमें जो सबसे बुद्धिमान था — वह जिसे संसार का सर्वाधिक ज्ञान था, अर्थात् वह जिसने क्षितिज पर उस रेलगाड़ी को सबसे लंबे समय तक देखा था — उसने जीप का अध्ययन किया और तर्क करते हुए एक व्याख्या तक पहुँचा।

यह, उसने कहा, रेलगाड़ी की संतान है।

इसे देखो। यह उसी पदार्थ की है। यह वैसे ही चलने के लिए बनी है जैसे रेलगाड़ी चलती है। यह छोटी है, जैसे संतान छोटी होती है। यह स्पष्टतः अपनी माता से बिछड़ गई है, जो वहाँ, पटरी के सहारे, दौड़ती है, जहाँ हमने उसे सदा देखा है। यह गिर पड़ी है, और खो गई है, और यहाँ हमारे बीच फँसी हुई है, वहाँ से बहुत दूर जहाँ इसका होना चाहिए।

और इसलिए, उसने कहा, यह हमारा कर्तव्य है कि हम इसे वापस ले जाएँ। हमें इस संतान को लेकर पटरियों पर रखना होगा, उस लौह-पथ पर जहाँ इसकी माता दौड़ती है। और फिर, जब माता अगली बार गुज़रेगी और अपनी संतान को पटरी पर लौटा हुआ पाएगी, तो वह उसे पुनः उठा लेगी, और घर ले जाएगी, और यह उसके साथ होगी जैसा कि होना चाहिए था।

यही, स्वामी जी ने कहा, वह ढंग है जिससे लोग आत्मा और ईश्वर के सम्बन्ध को समझते हैं। व्यष्टि और ब्रह्म के बीच के सम्बन्ध को।

और फिर वे रुक गए।

◆

उन्होंने इसकी व्याख्या नहीं की।

उन्होंने यह नहीं कहा: जीप आत्मा है, रेलगाड़ी ईश्वर है, पटरी पथ है, जनजाति मानवता है, वह बुद्धिमान व्यक्ति धर्मशास्त्री है, और उसके तर्क में यह रही त्रुटि। उन्होंने वह मानचित्र नहीं खींचा। उन्होंने मुझे नहीं बताया कि कथा के कौन-से भाग मूल-भाव थे और कौन-से केवल उसे ढोने के लिए थे। उन्होंने मुझे नहीं बताया कि वह बुद्धिमान व्यक्ति सही था या ग़लत, या किस ढंग से, या कथा उसके स्थान पर किस बात की संस्तुति कर रही थी।

मैं एक न्याय-वाक्य लाया था। मैं अपने पास का श्रेष्ठतम तार्किक उपकरण लाया था, किसी दावे को तोड़ने या पुष्ट करने के लिए यंत्र-तराशा हुआ।

और उन्होंने उस उपकरण का उत्तर एक बिम्ब से दिया, जो कि वह एकमात्र वस्तु है जिसे कोई उपकरण संसाधित नहीं कर सकता। आप किसी कथा को किसी प्रमाण-प्रक्रिया में से नहीं गुज़ार सकते। उसमें परखने के लिए कोई प्रतिज्ञप्तियाँ होती ही नहीं। वह समूचे उपकरण-तंत्र को अस्वीकार कर देती है। वह आपसे वहाँ नहीं मिलती जहाँ आप बलवान हैं; वह चुपचाप, उसी स्थान पर, जहाँ आप बलवान हैं, प्रतीक्षा करती है, जब तक आप कहीं और होने को तैयार न हो जाएँ।

मैं उस दिन उस जीप को नहीं समझा। मैं यह स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ, क्योंकि इस पुस्तक की हर वस्तु इस बात पर निर्भर है कि मैं उन समझों का ढोंग न करूँ जो मेरे पास तब न थीं जब वे मेरे पास न थीं। मैं इतना समझा कि उन्होंने मेरे प्रश्न को टाल दिया है और उसके स्थान पर मुझे एक पहेली थमा दी है। यदि मैं ईमानदार रहूँ, तो मुझे वह तनिक कुंठाजनक लगी — एक ऐसे व्यक्ति की प्रतिक्रिया जो एक सीधा प्रश्न पूछता है और एक दृष्टांत पाता है और, सही ही, यह भाँप लेता है कि उससे स्वयं ही काम करवाया जा रहा है।

जो मैं नहीं जानता था, अनुशासन से स्वयं को गढ़ चुके पुरुषों से भरे उस घर में बैठे हुए, वह यह था कि उन्होंने मेरे प्रश्न का पूर्ण उत्तर दे दिया था। कि उनकी प्रतिक्रिया में कुछ भी अनुपस्थित न था। कि ईश्वर का पुत्र ईश्वर क्यों नहीं का समूचा उत्तर मेरे सामने, पूर्ण रूप में, एक लौह-संतान के उस बिम्ब में बैठा था जिसे उससे प्रेम करने वाले लोग ग़लत माता की ओर ढो रहे थे — जिन्होंने जितना अच्छा तर्क कर सकते थे उतना अच्छा किया था और जो अपने प्रेम में नहीं, अपनी कोटि में ग़लत थे — और यह देखने में मुझे बीस से पच्चीस वर्ष के बीच, और कई स्वप्न, और इस पुस्तक का अच्छा-ख़ासा शेष भाग लगने वाला था कि

पहलवानों से भरा एक कमरा और एक अत्वरित वृद्ध पुरुष उस पहले दिन मेरी ओर क्या बढ़ाए हुए थे जब मैंने पहली बार उनसे बात की थी।

मैं आपको अभी नहीं बताऊँगा कि इसका अर्थ क्या है। मैं अभी नहीं जानता था कि इसका अर्थ क्या है। हम इसे साथ-साथ ढोएँगे, आप और मैं, अनेक पृष्ठों तक, ठीक वैसे ही जैसे मैंने इसे ढोया — और यदि कभी आपको वह कुंठाजनक लगे, तो मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि उस कुंठा को लक्षित करें, और यह विचार करें कि वह कुंठा ही मूल-भाव हो सकती है, और कि जो व्यक्ति आपको उत्तर के बजाय एक टूटी हुई जीप थमाता है, वह सम्भवतः इस विषय में कुछ ऐसा समझता है कि समझ वास्तव में कैसे आती है, जो वह व्यक्ति नहीं समझता जो आपको एक उत्तर थमा देता है।

उस रात हम जंगल पहुँचे।

अध्याय सात:

वह फ़र्श

हम उस स्थान पर अँधेरे में पहुँचे, और उसके बाद बहुत समय तक उसकी मेरी सबसे प्रबल स्मृति वह नहीं थी जो मैंने देखा, बल्कि भूमि से खींचे जाते जल की ध्वनि थी।

◆

मैंने एक आश्रम की अपेक्षा की थी। यह शब्द अपने साथ कुछ साज-सामान ले आता है — एक द्वार, एक अहाता, पवित्रता की कोई वास्तुकला, वह तंत्र जो आपको बताता है कि आप किसी अलग रखे गए स्थान पर पहुँच गए हैं। मैंने, उस अपेक्षा को परखे बिना, यह मान लिया था कि मैं किसी स्थान की यात्रा कर रहा हूँ, उस अर्थ में जिस अर्थ में मंदिर एक स्थान होता है।

जहाँ तक मुझे स्मरण है, कोई द्वार न था। जंगल था, और फिर अ-जंगल था, और उस अ-जंगल में ये कुछ छोटी संरचनाएँ थीं, और बस इतना ही था। वह प्रकार का स्थान जो अपनी घोषणा नहीं करता क्योंकि उसे कभी इसलिए बनाया ही न गया था कि उस पर पहुँचा जाए। वह ऐसे मनुष्यों के रहने के लिए बनाया गया था जिन्हें इसकी आवश्यकता न थी कि वह किसी वस्तु जैसा दिखे।

और वहाँ वह पम्पिंग-सेट था।

मैं बार-बार उस पर लौटता हूँ, और मैंने उस लौटने पर विश्वास करने का निश्चय किया है, क्योंकि मेरे अनुभव में, जिस विवरण को कोई स्मृति छोड़ना नहीं चाहती वह प्रायः भार-वहन करने वाला होता है, भले ही आप न बता सकें क्यों। एक पम्प वाला बोरवेल था, और हर वस्तु के लिए जल — पीने के लिए, धोने के लिए, स्नान के लिए, भोजन पकाने के लिए, जो भी सफ़ाई होती उसके लिए — उस पम्प के माध्यम से भूमि से ऊपर आता था। आप उसे चलाते और जल आ जाता। कोई और आपूर्ति न थी। दीवार में कोई नल न था जो किसी

अदृश्य नगरपालिका के वचन से जुड़ा हो। वहाँ भूमि थी, और पम्प, और वह जल जो भूमि तब देती थी जब आप उससे सीधे माँगते थे।

मैंने उस रात यह नहीं सोचा, यह महत्वपूर्ण है। मैंने सोचा, यहाँ लोग जल इस प्रकार पाते हैं। मैं आपको बता रहा हूँ कि वह महत्वपूर्ण था। इसमें वर्षों लगे। इस पुस्तक की लगभग हर वस्तु में वर्षों लगे।

◆

सोने की व्यवस्था सरल थी और उसने मुझे, तत्काल और बिना एक शब्द कहे, उस स्थान की व्यवस्था के विषय में सब कुछ बता दिया।

एक खाट थी। वह स्वामी जी के लिए थी।

बाक़ी सब भूमि पर सोएँगे।

मैं उस बात के साथ ठहरना चाहता हूँ जो इसने मेरे साथ की, क्योंकि हवाई अड्डे के बाद यह पहली वस्तु थी जिसे मेरे उपकरणों ने वास्तविक बल के साथ अंकित किया, और इस बार वह न कोई दृष्टि थी न कोई झुकाव — वह इस विषय में एक तथ्य था कि शरीर कहाँ लेटेंगे।

मैं एक ऐसे संसार से आया था जिसमें सुख का एक विस्तृत और अदृश्य व्याकरण था, जिसमें कोई मनुष्य कहाँ सोता है, और किस पर, और फ़र्श से कितना ऊपर, यह उसकी प्रतिष्ठा का एक सटीक कथन होता है। मैंने वर्षों उस व्याकरण पर चढ़ते हुए बिताए थे। और यहाँ वह एक ही भेद में ढह गया। एक व्यक्ति, वृद्ध, एक खाट पर। बाक़ी सब — बाहर के संसार में वे जो भी रहे हों, जो भी उन्होंने चढ़ा हो, सुख का जो भी व्याकरण वे अन्यत्र चलाते हों — भूमि पर, उसी भूमि पर, उसी ऊँचाई पर, जो कोई ऊँचाई है ही नहीं।

उसमें कोई अपमान न था। यही वह वस्तु है जिसका मैं पूर्वानुमान न कर सकता था और जिसे मैं अब भी पूर्णतः समझा नहीं सकता। जिस संसार से मैं आया था, उसमें फ़र्श पर बिठाया जाना एक पदावनति है, और वह चुभती है। यहाँ वह नहीं चुभी, क्योंकि वह किसी के साथ की गई वस्तु न थी। वह बस वैसी ही थी जैसी वह थी। फ़र्श कोई नीचा स्थान न था जो आपको सौंपा गया हो। वह वही स्थान था, और उसमें एक अपवाद था, और वह अपवाद एक थका

हुआ वृद्ध पुरुष था, और उस प्रांगण में किसी को भी वह व्यवस्था स्पष्ट के अतिरिक्त और कुछ न लगी।

मैं एक जंगल की भूमि पर लेट गया — एक ऐसा व्यक्ति जो बम्बई की एक झुग्गी-बस्ती से बहुत लंबा रास्ता चढ़कर आया था, कभी एक बार भी फ़र्श स्वीकार न करके — और मैंने पाया कि मुझे बुरा नहीं लगा। मैंने इस पर बहुत विचार किया है। वह बुरा-न-लगना उस स्थान ने मुझे दी पहली वस्तु थी, किसी भी स्वप्न से पहले, और वह स्वयं एक प्रकार का उपदेश था, यद्यपि उसे पढ़ पाने में मुझे वर्षों लगने थे।

◆

अब मुझे उन चरणों का वर्णन करना होगा, और वह मुझे सावधानी से करना होगा, क्योंकि इस संसार के बाहर के पाठक के लिए यह इस अध्याय की सबसे विचित्र वस्तु है, और इस संसार के भीतर के पाठक के लिए यह इतनी साधारण है कि उसे किसी वर्णन की आवश्यकता ही नहीं, और मैं दोनों के लिए लिख रहा हूँ।

यह एक ऐसी बात है जो की जाती है। उस संस्कृति में, उस सम्बन्ध में, गुरु के शरीर की देखभाल शिष्यों द्वारा स्वाभाविक रूप से की जाती है, और उसमें कुछ भी उल्लेखनीय नहीं और कुछ भी नहीं जिसे उचित ठहराने की आवश्यकता हो। यह मैं अमूर्त रूप से जानता था। मैंने वह कभी किया न था।

और मैंने लक्षित किया कि उनके चरणों की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा था।

मैं आगे जो हुआ उसके स्वरूप के विषय में ईमानदार रहना चाहता हूँ, क्योंकि वह भक्ति न थी। मेरे पास अभी कोई भक्ति न थी; मेरे पास दो प्रविष्टियों वाली एक बही थी और बिना पूछे प्रश्नों का एक थैला। मैंने जो अनुभव किया वह उस मनुष्य की असहजता के अधिक निकट था जो एक ऐसे कमरे में है जहाँ काम हो रहा है और वह कुछ नहीं कर रहा — उस नवागंतुक की विशिष्ट अटपटाहट जो उपयोगी होना चाहता है और जिसे कोई काम नहीं दिया गया और जो बस बैठे रहना सह नहीं सकता। एक ऐसी वस्तु थी जिसे किए जाने की आवश्यकता थी और जिसे कोई नहीं कर रहा था। अतः मैंने उसे किया।

मैंने उनके चरण लिए, और मैंने उन्हें दबाया।

◆

मैंने अपेक्षा नहीं की थी कि यह कुछ होगा। वह, उस क्षण में मेरी अपनी समझ में, एक सामाजिक कृत्य था — नवागंतुक एक काम पाकर कमरे में अपना स्थान पा रहा था। यदि आपने मुझसे पूछा होता कि मैं यह क्यों कर रहा हूँ, तो मैं सच-सच कहता कि दूसरों के सेवा करते समय निठल्ले बैठे रहना असभ्य लगता है, और चरण खाली थे।

मैं आपको यह नहीं बताऊँगा कि मैंने कोई धारा, या कोई ऊष्मा, या कोई उपस्थिति अनुभव की, क्योंकि मैंने नहीं की, और इस पुस्तक का समूचा मूल्य यही है कि मैं आपको यह नहीं बताऊँगा कि मैंने वे वस्तुएँ अनुभव कीं जो मैंने अनुभव नहीं कीं। मैंने एक वृद्ध व्यक्ति के चरण अनुभव किए, यात्रा से थके हुए, और मैंने उन्हें वैसे ही दबाया जैसे कोई थके हुए चरण दबाता है, और मैंने उस काम पर ध्यान दिया क्योंकि मैं कामों पर ध्यान देता हूँ।

किन्तु मैं आपको एक बात बताऊँगा जो सत्य थी, क्योंकि वह सत्य है और क्योंकि वह किसी धारा से भी अधिक विचित्र है।

घाटकोपर के बाद पहली बार — जब से वह समूचा असम्भाव्य क्रम आरम्भ हुआ था, वह पुस्तक और वह तर्क और वह वर्ष और वह खाली फ़्लैट और अध्याय तेरह और वह फ़ोन और वह हवाई अड्डा और वे दृष्टियाँ और वह टूटी हुई जीप — पहली बार, मेरा मन शांत था। मौन नहीं; मैं अभी नहीं जानता था कि मौन का क्या अर्थ है, वह ज्ञान कुछ ही घंटे दूर था और वह एक ऐसे रूप में आने वाला था जिसकी मैं कल्पना भी न कर सकता था। बस शांत। एक सरल वस्तु में लगा हुआ जो सावधानी से की जा रही थी, और इसलिए, क्षण-भर के लिए, स्वयं अपने में न लगा हुआ।

जो मनुष्य अपने हाथों से काम करता है, वह इस शांति को जानता है। वह रहस्यमय नहीं है। वह तब होती है जब आपका समूचा अस्तित्व किसी ऐसे काम को दे दिया जाए जो इतना छोटा हो कि थामा जा सके और इतना वास्तविक कि उसका महत्व हो। मैंने इसे रोबोट बनाते हुए अनुभव किया था। मैंने अपेक्षा न की थी कि इसे मैं एक ऐसे संत के चरण थामते हुए अनुभव करूँगा जिस पर मैं विश्वास नहीं करता था, एक ऐसे जंगल में जहाँ मैं एक ऐसी यात्रा-सूची से पहुँचा था जिसे मैं पूर्णतः उचित न ठहरा सकता था, एक ऐसे फ़र्श पर जिस पर मैं सोने ही वाला था।

और अगली सुबह लगभग पाँच बजे, उसी फ़र्श पर, मैंने पहला स्वप्न देखा।

मैं उस जंगल में एक व्यक्ति से उसकी पुस्तक के विषय में कुछ प्रश्न पूछने गया था।

मैं चाहता हूँ कि पाठक, एक और पृष्ठ के लिए, उस हर वस्तु की साधारणता को थामे रखे जिसका मैंने अभी वर्णन किया — वह पम्प, वह खाट, वह फ़र्श, वे खाली चरण, नवागंतुक की अटपटाहट, हस्त-श्रमिक की वह छोटी-सी शांति। उसमें कुछ भी अलौकिक न था। उसमें कुछ भी ऐसा न था जो मेरे विश्वासों से कुछ माँगता हो। एक थका हुआ वृद्ध पुरुष, कुछ साधु, एक बोरवेल, और एक अजनबी जो स्थिर बैठ न सकता था और इसलिए उसने वह काम ले लिया जो किसी ने न लिया था।

बस इतना ही समूचा रंगमंच है।

और फिर मैंने उस प्रांगण की भूमि पर अपनी आँखें मूँद लीं, और किसी वस्तु ने उसका उपयोग किया।

अध्याय आठ:

वह श्वेत प्रकाश

मैं यह स्वप्न वैसे ही बताऊँगा जैसे यह घटित हुआ, क्रम से, उसकी व्याख्या किए बिना, और मैं पाठक से अनुरोध करूँगा कि वह भी इसकी व्याख्या करने का प्रतिरोध करे। उसके लिए समय होगा। वर्षों का समय; यह पुस्तक बहुत हद तक उसी समय से बनी है। किन्तु बहुत जल्दी व्याख्यायित किया गया स्वप्न एक नष्ट किया गया स्वप्न होता है, क्योंकि व्याख्या उस वस्तु का स्थान ले लेती है, और वह वस्तु स्वयं — न कि उसकी मेरी बाद की समझ — वही है जिसे मैं आपके हाथों में ठीक वैसे ही रखना चाहता हूँ जैसे वह मेरे हाथों में रखी गई थी।

तो: वह स्वप्न। जैसे मैंने उसे पाया, एक जंगल के फ़र्श पर, लगभग सुबह पाँच बजे, सद्गुरु के निकट अपनी पहली रात में।

◆

मैं एक फ़्लैट में था।

वह हमारा फ़्लैट था — वह छोटा वाला, जिसका मैं वर्णन कर चुका हूँ, वह जिसे अनुपमा लखनऊ जाने के लिए छोड़ गई थीं, यद्यपि स्वप्न में वे गई न थीं; स्वप्न में वे वहीं थीं। वह वही विशिष्ट फ़्लैट था, अपनी विशिष्ट लघुता के साथ, बहुत कम कमरों की अपनी विशेष व्यवस्था के साथ। स्वप्न ने कोई स्थान नहीं गढ़ा। उसने वही स्थान उपयोग किया जिसमें मैं रहता था। यह पहली वस्तु है जिसे मैं चाहता हूँ कि पाठक थामे रखे: उस परिवेश में स्वप्न-जैसा कुछ भी न था। वह मेरा अपना घर था, उस सपाट, अनुल्लेखनीय सटीकता के साथ प्रस्तुत जिस सटीकता के साथ आप कोई ऐसी वस्तु देखते हैं जो आप प्रतिदिन देखते हैं।

अनुपमा रसोई में थीं।

रसोई बहुत छोटी थी। जिसने भी उस प्रकार के बम्बई के फ़्लैट में रहा हो, वह ऐसी रसोई की विशेष लघुता को जानता है — एक ऐसा स्थान जिसमें आप घूमकर मुड़ते हैं, न कि उसमें से गुज़रते हैं, जहाँ दो लोग एक भीड़ होते हैं। वे वहाँ थीं, वे साधारण काम करती हुईं जो कोई

रसोई में करता है, और मुझे उनका वहाँ होना उसी प्रकार बोध था जैसे आपको अपनी पत्नी का बगल के कमरे में होना बोध होता है: उन्हें देखते हुए नहीं, बल्कि जानते हुए।

और वहाँ एक खिड़की थी।

ढलान पर तीन लोग थे।

मैं उन्हें शीशे के आर-पार देख सकता था, उठती हुई भूमि पर खड़े हुए, और वे पत्थर फेंक रहे थे। खिड़की पर। हम पर। पत्थर शीशे से आ टकरा रहे थे — मैं उन्हें आते देख सकता था, और सुन सकता था, शीशे पर पत्थर की वह विशिष्ट कठोर ध्वनि।

◆

मेरी पुत्री फ़र्श पर थी।

मैं एक क्षण के लिए उस हरे वस्त्र पर ठहरना चाहता हूँ, उसकी व्याख्या करने के लिए नहीं — मैंने व्याख्या न करने का वचन दिया है — बल्कि इसलिए कि यह उस प्रकार का विवरण है जो आपको बताता है कि कोई स्वप्न कोई सामान्य स्वप्न नहीं बल्कि यही स्वप्न है, विशिष्ट और सटीक। मैंने "अपनी पुत्री" का स्वप्न नहीं देखा। मैंने अपनी पुत्री का स्वप्न देखा, हरे वस्त्र में, फ़र्श पर, और उस वस्त्र का हरा एक विशिष्ट हरा था, और मैं उसे अब, पच्चीस वर्ष बाद, उन अधिकांश वस्तुओं से अधिक स्पष्ट देख सकता हूँ जिन्हें मैंने पिछले सप्ताह वास्तव में देखा था। स्वप्न इतनी सारी वस्तुओं के प्रति लापरवाह होते हैं और फिर एक छोटी वस्तु के प्रति उग्र रूप से सटीक, और वह एक छोटी वस्तु प्रायः वही होती है जिसे आपसे रखवाया जाना अभीष्ट होता है। मैंने वह हरा वस्त्र रखा। वह स्वप्न में से मेरे साथ बाहर आया और उसने मुझे कभी नहीं छोड़ा।

वे फ़र्श पर थीं, हरे वस्त्र में, और पत्थर खिड़की पर आ रहे थे, और वे उसकी सीध में थीं।

◆

पहले मुझे क्रोध आया।

यह सटीक है और मैं इसे सटीक चाहता हूँ, क्योंकि यह उस वस्तु का साधारण मानवीय आरम्भ है, इससे पहले कि वह वस्तु वह बने जो वह बनी। मैंने वही किया जो कोई मनुष्य तब करता है जब लोग उसके घर पर पत्थर फेंक रहे हों और उसकी संतान कमरे में हो। मैं उन

पर गरजा। मैं खिड़की के आर-पार चिल्लाया — दूर हटो, यहाँ से जाओ, दफ़ा हो जाओ — उस ढंग से जैसे आप किसी ऐसे ख़तरे पर चिल्लाते हैं जिसे आप अब भी मानते हैं कि बड़े और ऊँचे स्वर से भगाया जा सकता है। मैं अभी भयभीत न था। मैं अब भी उस मनुष्य के सुर में था जो मानता है कि वह अपने ही घर का स्वामी है और उसे स्वर के बल पर बचा सकता है।

और पत्थर रुके नहीं।

वे बढ़ गए।

यही वह मोड़ है। पत्थर और कठोर और अधिक संख्या में आए, और मेरा गरजना काम न आया, और मुझे उस समझ की पहली शीतल धार अनुभव हुई कि मैं इसका स्वामी नहीं हूँ — कि जिस वस्तु पर मैं चिल्लाया था वह चिल्लाने से तितर-बितर होने वाली न थी, कि वह आ रही थी, कि वह आती ही रहेगी, और कि उसके और हरे वस्त्र में फ़र्श पर बैठी मेरी पुत्री के बीच केवल शीशे का एक टुकड़ा था जिस पर पत्थर पहले ही प्रहार कर रहे थे।

और भय भीतर आ गया।

◆

मुझे इस भय का सटीक वर्णन करना होगा, क्योंकि यह समूचे स्वप्न की धुरी है और क्योंकि यह साधारण भय नहीं है, या यूँ कहें कि यह साधारण भय है जो एक ऐसी गहराई तक ले जाया गया है जहाँ साधारण जीवन विरले ही पहुँचता है।

वह भय उसके लिए था। अपने लिए नहीं। उसका समूचा भाग फ़र्श पर हरे वस्त्र में बैठे उस छोटे शरीर की ओर लक्षित था, उस खिड़की की ओर जो टूटने वाली थी, उस पत्थर की ओर जो आर-पार आने वाला था और उस छोटे कमरे को पार करके उस बालिका तक पहुँचने वाला था। मैं वह क्रम देख सकता था। भय ही उस क्रम का देखना था — खिड़की का विफल होना, पत्थर का प्रवेश करना, दूरी का सिमटना। वह मुझमें किसी अनुभूति के रूप में नहीं उठा जो मुझे हुई हो, बल्कि एक ऐसी वस्तु के रूप में जिसने मुझे भर दिया, जिसने मेरे समूचे भीतरी आयतन को अपने अधिकार में ले लिया, जब तक कि मुझमें ऐसा कुछ न बचा जो भय न हो।

मैंने अपने जीवन में भय अनुभव किया है। मैंने सोलह वर्ष की आयु में अपने पिता को खोया; मैंने एक सड़क-बत्ती के नीचे पढ़ाई की क्योंकि धन न था; मैं ऐसे कमरों में खड़ा रहा हूँ जहाँ कार्यजीवन समाप्त हुए। मैं भय को जानता हूँ। यह एक भिन्न कोटि का था। यह भय एक समग्रता के रूप में था — वह दशा जिसमें भय ही मन की समूची अंतर्वस्तु होता है, जिसमें भय से तनिक अलग खड़ा कोई द्रष्टा नहीं होता जो कह सके मैं भयभीत हूँ, क्योंकि अब कोई ऐसा 'मैं' शेष नहीं बचा जो स्वयं भय से न बना हो।

स्वप्न मुझे वहीं तक ले आया था। एक पिता के भय के परम तल तक, पूर्ण, बिना किसी शेष के।

और वहीं, उस तल पर, वह प्रकाश आया।

◆

स्वामी जी प्रकट हुए।

वे श्वेत प्रकाश के रूप में प्रकट हुए। मैं इसके साथ सावधान रहना चाहता हूँ क्योंकि यह स्वप्न में एकमात्र स्पष्टतः प्रकाशमान बिम्ब है और मैं उसे फुलाना नहीं चाहता, किन्तु मैं उसे संकुचित भी नहीं करूँगा, क्योंकि वह जो था वही था। उनका रूप — उनका कुर्ता, उनका समूचा परिधान, उनकी समूची आकृति — प्रदीप्त था, भीतर से प्रकाशित या आर-पार प्रकाशित, एक ऐसा श्वेत जो वस्त्र का श्वेत न था बल्कि उस प्रकाश का श्वेत था जिसने एक मनुष्य का आकार ले लिया हो। दाढ़ी, श्वेत। सब कुछ, श्वेत और दीप्तिमान। ऐसा न था कि कोई चमकती वस्तु प्रकट हुई और मैंने अनुमान लगाया कि वे हैं। मैंने उन्हें पहचाना। वे निस्संदेह स्वामी जी थे — वह व्यक्ति जिनके चरण मैंने कुछ घंटे पूर्व दबाए थे, हवाई अड्डे वाले व्यक्ति, तिरछी दृष्टि वाले व्यक्ति — स्वप्न में वहाँ खड़े, श्वेत प्रकाश से बने एक शरीर में।

और मेरे विचार रुक गए।

◆

मैं नहीं जानता कि इस वाक्य से वह कैसे उठवाऊँ जो इसे उठाना है, अतः मैं इसे स्पष्ट रूप से कहूँगा और फिर उसे अधिक धीरे-धीरे फिर कहूँगा, और पाठक पर विश्वास करूँगा कि वह शब्दों और तथ्य के बीच के अंतर को अनुभव कर ले।

मेरे विचार रुक गए।

अब धीरे-धीरे। वह भय — वह समग्र भय, वह भय जो मेरी समूची अंतर्वस्तु था — रुक गया। किन्तु वह उस ढंग से नहीं रुका जिस ढंग से भय तब रुकता है जब संकट टल जाता है, बहकर निकल जाकर और राहत से प्रतिस्थापित होकर। वह उस ढंग से रुका जिस ढंग से कोई ध्वनि तब रुकती है जब स्रोत बंद कर दिया जाता है। वह सुलझा नहीं। उसका उत्तर नहीं दिया गया। वे पत्थर, वह खिड़की, वह पुत्री, वह ढलान, वे तीन आकृतियाँ — उनमें से किसी को सम्बोधित नहीं किया गया। बस इतना हुआ कि उन सब का सोचना समाप्त हो गया। प्रत्येक विचार, भयपूर्ण वाले और कोई भी अन्य, वह सब, एक साथ, पूर्णतः समाप्त हो गया, उस ढंग से जैसे किसी घर की हर बत्ती उसी क्षण बुझ जाती है जब मुख्य स्विच गिरा दिया जाता है।

और कोई विचार न था।

मैं नहीं जानता कितने समय तक। यदि मुझे इस पर कोई संख्या रखनी पड़े तो मैं कुछ ऐसा कहूँगा जैसे दो मिनट, किन्तु मैं वह संख्या तनिक भी विश्वास के बिना देता हूँ, क्योंकि जो वस्तुएँ मैं आपको बताने ही वाला हूँ उनमें से एक यह है कि जो तंत्र समय मापता है — मन, टिकटिक करता, वृत्तांत सुनाता, गिनता — वह चल ही न रहा था। आप किसी टूटी घड़ी से किसी अंतराल का समय नहीं माप सकते, और वह घड़ी केवल टूटी हुई न थी, वह बंद थी। तो: कोई अवधि। इतनी लंबी कि निस्संदेह हो। इतनी लंबी कि मेरे जीवन की केंद्रीय घटना हो। किन्तु किससे मापी गई, मैं नहीं कह सकता।

मुझमें कोई विचार न था।

◆

और यही वह वस्तु है। यही वह वस्तु है जिसके चारों ओर घूमने के लिए यह समूची पुस्तक विद्यमान है, वह वस्तु जिसे पर्याप्त रूप से कहने में मैंने पच्चीस वर्ष असफल होकर बिताए हैं और जिसे अब भी पर्याप्त रूप से नहीं कहने वाला, किन्तु प्रयास तो करना ही होगा।

मैं देख सकता था कि मैं सोच नहीं रहा हूँ।

कोई विचार न था — और यह जानना था कि कोई विचार न था।

क्या आप कठिनाई अनुभव करते हैं? यदि मन बस रुक गया होता, तो वह निद्रा होती, या अचेतना, या मृत्यु, और उसे बताने के लिए वहाँ कोई न होता, और मेरे पास आपको बताने के लिए कोई स्वप्न न होता। जो मन बस रुका हुआ हो वह एक रिक्तता है, और रिक्तता अपनी ही रिक्तता की साक्षी नहीं हो सकती। किन्तु यह कोई रिक्तता न थी। यह एक देखा गया रुका हुआ मन था। सोचना समाप्त हो गया था और कुछ शेष रहा जो उस समाप्ति के प्रति सचेत था — जागृत, उपस्थित, स्पष्ट, और पूर्णतः विचार-रहित।

कोई वहाँ था, यह देखता हुआ कि कोई विचार नहीं थे।

कौन?

◆

और फिर मैंने वह किया जिसने स्वप्न को एक घटना से एक प्रदर्शन में बदल दिया, यद्यपि मैंने इसे जान-बूझकर नहीं किया; इसने स्वयं को किया, एक ऐसे मन की स्वाभाविक अगली गति के रूप में जिसने सदा, सदा, हर वस्तु से सोच-सोचकर निकलने का मार्ग निकाला है।

मैंने सोचने का प्रयास किया।

मैंने एक विचार के लिए हाथ बढ़ाया। किसी भी विचार के लिए। उस ढंग से जैसे आप किसी ऐसे औज़ार के लिए हाथ बढ़ाते हैं जिसे आपने दस हज़ार बार उपयोग किया है, बिना देखे, निश्चित कि वह आपके हाथ में होगा। मैंने अपना समूचा जीवन सोचने में बिताया था; वही वस्तु थी जिसमें मैं सर्वश्रेष्ठ था; वही उपकरण था जिसे मैं हवाई अड्डे तक और पहलवानों के घर तक और हर उस समस्या तक लाया था जिसका मैंने कभी सामना किया। और मैंने अब उसके लिए हाथ बढ़ाया, स्वप्न के भीतर, यह सोचने के लिए कि क्या हो रहा है, उस पर पकड़ पाने के लिए, उसे उसी एकमात्र ढंग से संसाधित करने के लिए जिस ढंग से मैंने कभी किसी वस्तु को संसाधित किया था।

और मैं न सका।

हाथ बढ़ाने के लिए कुछ न था। या जिसके लिए हाथ बढ़ाया जाए वह कुछ न था। वह हाथ बढ़ाना स्वयं आरम्भ ही न होता। ऐसा न था कि विचार धीमे थे, या ढूँढ़ने में कठिन, या अवरुद्ध। ऐसा था कि समूची क्षमता ही स्थगित थी, थमी हुई, मेरी उस तक पहुँच से नीचे किसी स्तर पर बंद कर दी गई — और मैं, वह 'मैं' जो भी था जो प्रयास कर रहा था, उस स्थगन के पूर्ण स्पष्ट प्रकाश में वहाँ खड़ा था, सोचना चाहता हुआ, सोचने में असमर्थ, और स्वयं को असमर्थ देखता हुआ।

जब तक स्वामी जी का श्वेत रूप मेरे समक्ष वहाँ खड़ा रहा, मैं सोच न सका।

मैं यह फिर कहना चाहता हूँ क्योंकि यही समूची बात है। उनकी उपस्थिति और मेरे विचार की अनुपस्थिति एक ही तथ्य थे। बीच में अंतराल वाले कारण और कार्य नहीं। एक ही तथ्य। वे वहाँ थे, और विचार नहीं था, और विचार का न-होना किसी प्रकार उनके वहाँ होने का वही पदार्थ था।

◆

और जैसे-जैसे वह विलीन हुआ, विचार वापस आया।

वह उस ढंग से वापस आया जिस ढंग से जल किसी नहर में तब वापस आता है जब कपाट उठा दिया जाता है — पहले एक धार, फिर साधारण प्रवाह, फिर मन की वह पूर्ण परिचित उमड़ती नदी जिसके भीतर मैं अपना समूचा जीवन रहा था और जिसे मैंने, उस क्षण तक, एक बार भी बाहर से न देखा था। क्योंकि यही तो हुआ था। किसी अनमापे अंतराल के लिए मैं नदी के बाहर रहा था। और अब मैं उसमें वापस था, और वह वापस-होना स्वयं सबसे विचित्र भाग था, क्योंकि अपने जीवन में पहली बार मैं जानता था कि वह नदी एक नदी थी — कि वह एक ऐसी वस्तु थी जिसमें प्रवेश किया जा सकता था और जिससे निकला जा सकता था, जो बहती थी, जिसका एक तट था, जो केवल मुझसे अभिन्न न थी।

और मैं स्वप्न में से ऊपर आया।

मैं अँधेरे में वहाँ पड़ा रहा। मेरे चारों ओर बाक़ी सो रहे थे। कहीं वह पम्प ठंडा होता खड़ा था। जंगल अपनी छोटी रात्रि-ध्वनियाँ कर रहा था। और मैं, एक ऐसा व्यक्ति जिसने अपना जीवन इस निश्चय के साथ बिताया था कि वह अपना मन है — कि सोचना ही वह वस्तु थी जो वह था, उसकी समूची पहचान की भूमि और इंजन — महाराष्ट्र के एक प्रांगण की भूमि पर पड़ा

हुआ था, अभी-अभी दिखाया गया, भीतर से, पूर्ण स्पष्टता के साथ और इनकार की कोई सम्भावना न रखते हुए, कि यह सत्य नहीं था।

कि विचार रुक सकते थे।

और कि मैं नहीं रुका।

◆

मैं इस अध्याय को यहीं समाप्त करूँगा, और मैं अपना वचन निभाऊँगा और इसकी व्याख्या नहीं करूँगा।

मैं केवल इतना कहूँगा, ताकि पाठक जान ले कि संरचनात्मक रूप से क्या हुआ है, यद्यपि मैं तब नहीं जानता था: जो कुछ भी मैं इस विषय में मानता था कि मैं कौन हूँ, उसका अभी-अभी प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा खंडन हुआ था, उस एक ही न्यायालय में जिसके निर्णय को मैंने सदा कहा था कि मैं स्वीकार करूँगा — उस न्यायालय में जहाँ वही देखा जाता है जो वास्तव में घटित होता है, देखा गया, अनिवार्य, प्रत्यक्ष।

मैंने विनय से कहा था कि सत्य को किसी पुस्तक में हस्तांतरित नहीं किया जा सकता, कि उसे भोगना पड़ता है, कि उसे किसी मनुष्य पर घटित होना पड़ता है।

अभी-अभी कुछ एक मनुष्य पर घटित हुआ था।

और यह कहने में — मैं इसका ढोंग नहीं करूँगा, और इस पुस्तक का आकार उन्हीं वर्षों का आकार है — कि वह क्या था, वर्षों लगने वाले थे।

अगली सुबह, इसे अब भी ढोते हुए, मैं स्वामी जी के पास गया और उनसे मन के विषय में एक प्रश्न पूछा।

मैं आपको अगले अध्याय में बताऊँगा कि मैंने क्या पूछा, और उन्होंने क्या कहा, और उनका उत्तर और यह स्वप्न किस प्रकार दो दिशाओं से पहुँची हुई एक ही वस्तु निकले — यद्यपि यह देखने में मुझे लगभग दो दशक लगे कि वे एक ही थे।

अध्याय नौ:

वे सब एक हैं

मैं जंगल के फ़र्श पर उस स्वप्न को ढोते हुए जागा, और मैंने वही किया जो मुझ जैसा व्यक्ति किसी अभिभूत कर देने वाले अनुभव के साथ करता है। मैंने उसे एक प्रश्न में बदलने का प्रयास किया।

आगे बढ़ने से पहले यह लक्षित करने योग्य है, क्योंकि यह लगभग हास्यास्पद है, और वह हास्य शिक्षाप्रद है। मुझे अभी-अभी, कुछ घंटे पूर्व, दिखाया गया था कि मेरा सोचना पूर्णतः बंद किया जा सकता है जबकि मैं शेष रहता हूँ — कि मैं अपना मन नहीं हूँ। और मेरी पहली ही प्रतिक्रिया, जागने पर, अपने मन के लिए हाथ बढ़ाना और उसे उस अनुभव पर काम पर लगा देना थी। मुझे एक प्रदर्शन थमाया गया था कि उस उपकरण की सीमाएँ हैं, और मैंने तत्काल उस प्रदर्शन को मापने के लिए वह उपकरण फिर उठा लिया। कोई मनुष्य इसलिए नहीं बदलता कि उसे कुछ दिखाया गया है। वह बदलता है, यदि बदलता भी है, तो बहुत बाद में, और एक ऐसे मार्ग से जिसे वह देख नहीं सकता। इस बीच वह ठीक वही बना रहता है जो वह था, जो मेरे विषय में इसका अर्थ था: एक प्रश्न वाला व्यक्ति।

◆

मैं उनके पास गया, और मैंने वह प्रश्न पूछा जो बम्बई छोड़ने से पहले से ही मेरी सूची में सबसे ऊपर के निकट था — उन प्रश्नों में से एक जिन्हें पूछने के लिए मैंने एक देश पार किया था, और जिसे पूछने के लिए मैं एक हवाई अड्डे और एक उड़ान और एक टूटी हुई जीप में इतना मौन रहा था, और अब, स्वप्न के अगली सुबह, अंततः पूछा।

मैंने पूछा: मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार में क्या अंतर है?

◆

मैं यह समझाना चाहता हूँ कि वह मेरा प्रश्न क्यों था, क्योंकि मेरे संसार के बाहर के पाठक को यह अमूर्त, यहाँ तक कि पांडित्यपूर्ण लग सकता है, और वह दोनों में से कुछ न था। वह, मेरे लिए, उस सर्वाधिक व्यावहारिक प्रश्न के निकट था जो हो सकता है।

मैंने अपना जीवन ठीक इसी प्रकार के भेदों के बीच बिताया था। एक अभियंता उन्हीं से जीता है। आप किसी तंत्र को तब तक नहीं समझते जब तक आपने उसे उसके अंगों में विभाजित न कर लिया हो और यह न समझ लिया हो कि प्रत्येक अंग क्या करता है और वे कैसे जुड़ते हैं — यांत्रिक से विद्युत से तार्किक से वायवीय, प्रत्येक अपने क्षेत्र में, प्रत्येक अपने व्यवहार के साथ, समूचा तभी बोधगम्य जब विघटित कर दिया जाए। किसी वस्तु को समझना, मेरे लिए, उसे सही ढंग से अलग-अलग कर लेना था। मैंने अपना कार्यजीवन इस प्रतिज्ञप्ति पर बनाया था कि स्पष्टता विश्लेषण है, कि किसी भी तंत्र में महारत पाने का ढंग उसके सच्चे जोड़ ढूँढ़ना और वहीं काटना है।

और मन एक तंत्र है — सबसे महत्वपूर्ण तंत्र जो है, वह जिस पर आप शेष हर वस्तु चलाते हैं। तो निस्संदेह मैं उसका रेखाचित्र चाहता था। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार: ये शास्त्रीय वृत्तियाँ हैं, वे जिन्हें ग्रंथ नाम देते हैं, और मैं उनकी सच्ची सीमाएँ जानना चाहता था। चित्त कहाँ समाप्त होता है और बुद्धि कहाँ आरम्भ होती है? अहंकार एक वृत्ति है या एक उपोत्पाद? पिछली रात कौन-सा रुका था, और किसने वह देखना किया था? मैं भीतर का तार-नक़्शा माँग रहा था, एक ऐसे व्यक्ति से जिसके विषय में मैं मानता था कि वह वास्तव में उसे रखता होगा।

वह, मैंने सोचा, एक परिष्कृत प्रश्न था। वह एक ऐसे व्यक्ति का प्रश्न था जिसने थोड़ा पढ़ा था, अच्छा-ख़ासा सोचा था, और मन का इतना सम्मान करता था कि उसे भली-भाँति मानचित्रित देखना चाहता था।

और उन्होंने कहा: वे सब एक ही हैं।



Swamiji talking with us — the morning the author asked what the mind is.

वे सब एक ही हैं।

◆

वही उत्तर था। वही समूचा उत्तर था।

वे सब एक ही हैं।

मैंने इसे, मैं स्वीकार करूँगा, कुछ-कुछ निराशा जैसी किसी वस्तु के साथ ग्रहण किया। अपने सद्गुरु के वचनों के विषय में यह स्वीकार करना सुखद वस्तु नहीं है, किन्तु यह पुस्तक निरर्थक है यदि मैं अपनी आरम्भिक प्रतिक्रियाओं को उस श्रद्धा में सजा दूँ जो मैंने केवल बाद में अर्जित की। उस क्षण में, वे सब एक ही हैं मुझ पर एक टालमटोल की तरह आ गिरा। वह उस प्रकार की वस्तु सुनाई दी जो तब कही जाती है जब वास्तविक उत्तर ज्ञात न हो — एक चिकना कर देना, एक भेद के आर-पार हाथ का एक रहस्यमय झटका जिसे खींचना बहुत कठिन हो। मैंने एक रेखाचित्र माँगा था और मुझे बताया गया कि घटक सब एक ही घटक हैं, जो एक अभियंता के लिए कोई उत्तर नहीं है; वह इस प्रत्यक्ष तथ्य से जुड़ने का इनकार है कि वे भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं।

चित्त स्पष्टतः बुद्धि नहीं है। मैं एक ऐसी संख्या स्मरण रख सकता हूँ जिसे मैं समझता नहीं, और एक ऐसे सिद्धांत को समझ सकता हूँ जिसे मैं ठीक से स्मरण नहीं रख सकता। अहंकार स्पष्टतः चित्त नहीं है। ये भिन्न-भिन्न कार्य हैं; मैं उन्हें भिन्न होते हुए अनुभव कर सकता था, दिन में दर्जनों बार। यह कहना कि वे एक हैं, मेरे अपने भीतर के प्रत्यक्ष प्रमाण का ही इनकार लगा।

मैंने बहस नहीं की। मैं एक दिन में इतना सीख चुका था — कि उस स्थान पर आप बहस नहीं करते, कि जो बहस-तंत्र मैं लाया था वह किसी प्रकार यहाँ ग़लत औज़ार था, एक ऐसे ढंग से जिसे मैं अभी निर्दिष्ट न कर सकता था। किन्तु मैंने उसे स्वीकार भी नहीं किया। मैंने उसे फ़ाइल कर लिया। उस बही में, उस झुकाव और उस दृष्टि और उस जीप के साथ: वे सब एक ही हैं। पूछे गए प्रश्न का उत्तर नहीं देता। कारण अज्ञात। मत त्यागो।

◆

यहाँ वह है जो मैं उस सुबह न देख सका, और मैं पाठक को बताऊँगा कि मैं उसे न देख सका, और फिर मैं तब भी आपको नहीं बताऊँगा कि वह क्या था, क्योंकि इस पुस्तक की समूची वास्तुकला इस पर निर्भर है कि व्याख्या वहीं पहुँचे जहाँ वह मेरे जीवन में पहुँची, जो कि यहाँ नहीं है।

किन्तु मैं दोनों वस्तुओं को अगल-बगल रखूँगा, क्योंकि पाठक उस आकार को देखने का अधिकारी है, भले ही हम दोनों में से कोई उसे अभी नाम न दे।

एक रात पूर्व, मैंने अपने मन को रुकते देखा था, और यह देखा था कि कुछ शेष रहा जो मन न था और जो मन की अनुपस्थिति का साक्षी हो सकता था।

अगली सुबह, मैंने सद्गुरु से मन को उसके अंगों में विभाजित करने को कहा, और उन्होंने कहा कि अंग एक थे।

मैंने अपना प्रश्न मन के भीतर खड़े एक व्यक्ति के रूप में पूछा, उसके साज-सामान को चारों ओर देखते हुए, उस साज-सामान की सूची चाहते हुए। उन्होंने मन के बाहर खड़े एक व्यक्ति के रूप में उत्तर दिया — ठीक उसी स्थान से जो स्वप्न ने मुझे एक रात पूर्व दिखाया था, उस साक्षी का स्थान जिसके लिए समूचा तंत्र, उसकी सारी वृत्तियाँ, मन और बुद्धि और चित्त और अहंकार सब एक समान, बाहर से देखी गई एक ही वस्तु है, जैसे तट से देखी गई नदी एक नदी है और अपनी धाराओं की अलग-अलग पहचानें नहीं।

जल के भीतर से, धाराएँ ही सब कुछ हैं, और उनके भेद ही आपके समूचे अनुभव हैं।

तट से, वह एक नदी है।

वे उस स्वप्न के विषय में जानते थे या नहीं, मैं आपको नहीं बता सकता। मैंने कभी नहीं पूछा और उन्होंने कभी नहीं कहा। वह उन दृष्टियों और उस कोई-और-तो-नहीं-आ-रहा और उस जीप के साथ है जिसका उत्तर मेरे प्रश्न समाप्त करने से पहले दिया गया — उन वस्तुओं की समूची कोटि जिनके चारों ओर यह पुस्तक घूमेगी और जिन्हें सुलझाएगी नहीं, क्योंकि वे मेरे लिए सुलझी न थीं।

मैं केवल इतना जानता हूँ कि मैंने अपने जीवन की उस एक सुबह मन के अंगों के विषय में पूछा जब मुझे, एक रात पूर्व, संक्षेप में मन को बाहर से एक समग्र के रूप में दिखाया गया था, और कि जो उत्तर मुझे मिला वह भीतर से कोई अर्थ न रखता था और तट से पूर्ण अर्थ रखता था, और कि एक समझ से दूसरी तक चलने में मुझे बीस वर्ष लगने वाले थे।

उन्होंने मुझे वह स्वप्न दिया, या किसी वस्तु ने दिया, पहली रात।

उन्होंने मुझे वे सब एक ही हैं दिया पहली सुबह।

वे एक ही उपदेश थे। एक अनुभव की भाषा में आया और एक वाणी की भाषा में, और यह समझने में मुझे दो दशक लगे कि वे दो सुरों में, दो बार कही गई एक ही वस्तु थे, एक ऐसे व्यक्ति से जो उन्हें अभी किसी में भी सुन न सकता था।

◆

उस सुबह मैं अब भी सोचता था कि मुझे एक अच्छे प्रश्न का एक निराशाजनक उत्तर मिला है।

अब मैं जानता हूँ कि मुझे एक ऐसे प्रश्न का पूर्ण उत्तर मिला था जिसे मैं अभी समझता भी न था कि मैं पूछ रहा हूँ — और कि उसकी वह पूर्णता, उस जीप की पूर्णता की भाँति, ठीक वही थी जिसने उसे पकड़ पाना असम्भव बना दिया, क्योंकि आपकी वर्तमान समझ से परे किसी प्रश्न का पूर्ण उत्तर, उस समय, बिल्कुल भी उत्तर न होने से अभेद्य होता है।

यही, मैं मानने लगा हूँ, वह ढंग है जिससे एक सच्चा गुरु काम करता है। आपको वह देकर नहीं जिसे आप वर्तमान में पचा सकें, जो आपको वहीं रखता है जहाँ आप हैं। बल्कि आपको वह सच्ची वस्तु देकर, समग्र, बहुत जल्दी — उसे पूर्ण और अपरिपक्व रोपकर, ताकि वह आपमें वर्षों बैठी रहे, अपचित, तनिक चिढ़ाती हुई, न उपयोग की जाने और न त्यागी जाने से इनकार करती हुई, जब तक कि एक दिन, एक ऐसी प्रक्रिया से जिसे आप कभी देखते नहीं, वह बस परिपक्व हो जाए, और आप समझ जाएँ कि आप वह उत्तर बीस वर्षों से जानते आए हैं और उसे केवल अब पढ़ पाने में समर्थ हैं।

उस जंगल में अपनी पहली सुबह के अंत तक मुझमें ऐसे दो बीज थे। वह जीप, और वह एक नदी।

मैं अगली एक चौथाई शताब्दी वही सीखते हुए बिताने वाला था जो मुझे पहले ही बताया जा चुका था।

अध्याय दस:

चिता

दूसरा स्वप्न मुझे घर ले गया।

इस बार उस फ़्लैट में नहीं — पहले स्वप्न के उन छोटे बम्बई के कमरों में नहीं — बल्कि बहुत पीछे, अम्बेडकर नगर के उस गाँव में, उस भूमि पर जिसका वर्णन मैं आपसे इस पुस्तक के प्रथम पृष्ठों में ही कर चुका हूँ: उस समाधि का स्थान, जहाँ स्त्रियाँ बृहस्पतिवारों को भोजन पकाती थीं, जहाँ लकड़ी का धुआँ बुहारी हुई धरती पर नीचे-नीचे ठहरा रहता था, जहाँ एक बालक कभी हाथों में गरम भोजन लिए खड़ा था और जिसने बाद में पूछा था कि उस दफ़नाए गए संत ने वास्तव में क्या जाना था, और जिसे कोई उत्तर न मिला था।

मैंने वह परिवेश नहीं चुना। मैं इस पर बल देता रहना चाहता हूँ, क्योंकि यही स्वप्नों का वह मौन चमत्कार है जिसे हम सबने चमत्कारपूर्ण मानना छोड़ दिया है: मैं बैठकर यह निश्चय नहीं करता कि मैं समाधि-भूमि का स्वप्न देखूँ। स्वप्न ने तीस वर्ष पीछे तक हाथ बढ़ाया और मेरे समूचे जीवन का वह एक स्थान निकाल लाया जहाँ मैं, एक बालक के रूप में, पहली बार ठीक उसी प्रश्न से मिला था जिसके विषय में यह समूची पुस्तक है — ज्ञान की मृत्यु के पश्चात भक्ति का बचे रहना — और उसने अपना दृश्य वहीं रचा। मैंने उस स्थान-चयन का महत्व वर्षों बाद ही देखा। उस रात तो, मैं बस स्वयं को वहाँ पाया, स्वप्नों के ढंग से, बिना किसी आश्चर्य के।

◆

वहाँ लोग थे। एक जमघट — उनमें से बहुत-से, उस ढंग से जैसे गाँव अपने अनुष्ठानों के लिए एकत्र होता है, किसी ग्रामीण आयोजन की भीड़ जहाँ हर कोई हर किसी को जानता है। उसमें उन बृहस्पतिवारीय जमघटों जैसी, या किसी अंत्येष्टि जैसी अनुभूति थी, जो गाँव में सबका ही एक जमघट होती है।

और वहाँ एक चिता थी।

चिता। लकड़ी की वह व्यवस्था जिस पर मृतक जलाए जाते हैं। उस पर एक शरीर था, तैयार, उस स्थान पर जहाँ ऐसी वस्तु की जाती है, और समूचे आयोजन का आकार एक होने ही वाले या होते हुए दाह-संस्कार जैसा था — सबसे साधारण पवित्र आयोजन जो होता है, वह जिसे प्रत्येक हिंदू गाँव करता है, एक शरीर का अग्नि को लौटाया जाना।

◆

और स्वामी जी वहाँ थे।

वे चिता के चारों ओर घूम रहे थे। उसकी परिक्रमा करते हुए — उसके चारों ओर जाते हुए, अनुष्ठान की वह धीमी वर्तुल चाल, वह परिक्रमा जो पवित्र वस्तु के चारों ओर की जाती है। वे शरीर और लकड़ी की उस व्यवस्था के चारों ओर चक्कर लगा रहे थे, उसके चारों ओर चलते हुए, और मैं उन्हें ऐसा करते देख रहा था।

अब मुझे वह विवरण अंकित करना होगा जो इस बात का कारण है कि यह स्वप्न, अंततः, सम्भवतः किसी भी अन्य स्वप्न से अधिक महत्वपूर्ण है, और मुझे उसे बिना भार दिए अंकित करना होगा, क्योंकि उस समय उसका कोई भार न था, और उसका समूचा मर्म इस पर निर्भर है कि मैं नहीं जानता था कि मैं क्या देख रहा हूँ।

मैंने देखा कि वे कैसे चलते हैं।

मेरा अभिप्राय यह नहीं कि मैंने उनकी चाल में कुछ रहस्यमय लक्षित किया। मेरा अभिप्राय इसके विपरीत है। मेरा अभिप्राय यह है कि स्वप्न ने मुझे, उसी उग्र सटीकता के साथ जो उसने उस हरे वस्त्र पर लगाई थी, वह विशिष्ट ढंग दिखाया जिससे इस व्यक्ति का शरीर चलता था — उनकी गति, चिता के चारों ओर जाते समय उनकी वह विशेष देह-मुद्रा, उनकी चाल की ठीक-ठीक छाप। जिस ढंग से कोई व्यक्ति चलता है वह उसके चेहरे जितना ही व्यक्तिगत होता है, और जाली बनाना उससे भी कठिन, और स्वप्न ने उनकी चाल को, सटीकता से, प्रस्तुत किया, और मैंने उसे देखा।

मैं चाहता हूँ कि पाठक बस उसे थाम ले। उसे लक्षित करे और आगे बढ़ जाए, ठीक वैसे ही जैसे मैंने उसे लक्षित किया और आगे बढ़ गया। एक व्यक्ति स्वप्न में एक चिता के चारों ओर चला और मैंने देखा कि वह कैसे चलता है। उसका अभी कोई अर्थ निकालने को नहीं है।

उसे रख लीजिए। हमें उसकी बाद में आवश्यकता होगी — एक वर्ष बाद, जागती हुई अवस्था में, एक कमरे में — और जब हमें उसकी आवश्यकता होगी, तब इस पुस्तक का समूचा फ़र्श खिसक जाएगा। किन्तु अभी नहीं। अभी वह केवल एक व्यक्ति की चाल है, एक स्वप्न में देखी गई, स्मृति में उस हरे वस्त्र की भाँति रख दी गई, ऐसे कारणों से जो बारह महीनों तक स्वयं को घोषित नहीं करेंगे।

◆

लोग हँस रहे थे।

यह स्वप्न का भावनात्मक केंद्र है और यही वह भाग है जिसे मैं अब भी सबसे कम समझता हूँ, अतः मैं इसका वर्णन करूँगा और इससे अधिक का ढोंग नहीं करूँगा।

और मैंने स्वयं को बोलते सुना।

मैं जान-बूझकर कहता हूँ स्वयं को सुना, क्योंकि वह बोलने का निर्णय नहीं लगा। वह मुझमें से निकलती वाणी जैसा लगा — उस ढंग से, पाठक को स्मरण होगा, जैसे हवाई अड्डे पर मेरा शरीर मेरे निर्णय के हस्ताक्षर करने से पहले ही झुक गया था। यह उसी कोटि की घटना थी। मैंने कहने का निर्णय किया नहीं, बल्कि मैंने स्वयं को कहते हुए पाया।

मैंने कहा: मत हँसो।

मत हँसो। मत हँसो।

और फिर: ये भगवान हैं।

ये भगवान हैं। ये ईश्वर हैं। मत हँसो — ये भगवान हैं — ऐसा मत करो।

◆

मैं ठीक वहीं, उसी वाक्य पर, स्वप्न को रोकना चाहता हूँ, और बहुत सावधान रहना चाहता हूँ, क्योंकि यह इस पुस्तक में अब तक की सबसे अधिक धर्मशास्त्रीय भार वाली वस्तु है और मैं इसे उस ईमानदारी के बिना जाने देने से इनकार करता हूँ जिस पर समूची पुस्तक दाँव पर लगी है।

मैं, जागती हुई अवस्था में, यह विश्वास नहीं करता था कि स्वामी जी ईश्वर हैं।

मुझे अपनी ही धारणा के कालक्रम के विषय में सटीक रहने दीजिए, क्योंकि यह महत्वपूर्ण है। यह उनके निकट मेरी दूसरी या तीसरी रात थी। मुझे उनके अस्तित्व का पता कुछ ही दिनों से था। मैंने एक बार, नवागंतुक की अटपटाहट में, उनके चरण दबाए थे। मैंने उनसे एक प्रश्न पूछा था और चार शब्द पाए थे जो मुझे निराशाजनक लगे थे। मेरे जागते हुए दिवालोक-मन में, इस बात का तनिक भी विश्वास न था कि यह व्यक्ति दिव्य है — मेरे पास, यदि कुछ था तो, ठीक उसी प्रकार के विश्वास के विरुद्ध एक स्थायी सैद्धांतिक प्रतिबद्धता थी, तीस वर्षों में बनाया गया एक समूचा तंत्र, ठीक इसी प्रयोजन से कि ऐसे व्यक्तियों के विषय में ऐसी वस्तुओं का निष्कर्ष न निकाला जाए।

और स्वप्न में, बिना किसी हिचक के, बिना किसी तर्क के, अपने समूचे तंत्र के नीचे के किसी स्थान से, मैंने एक हँसती हुई भीड़ के समक्ष घोषित किया कि वे ईश्वर हैं — और उनका बचाव किया, और भीड़ को डाँटा, और उसकी सच्चाई को एक ऐसी पूर्णता के साथ अनुभव किया जो मेरे जागते मन ने किसी भी वस्तु के विषय में किसी भी प्रतिज्ञप्ति को कभी न दी थी।

वह किसने कहा?

यह वही प्रश्न है जिसके साथ पहले स्वप्न ने मुझे छोड़ा था, एक भिन्न सुर में। पहले स्वप्न में: कौन देख रहा था कि कोई विचार नहीं थे? इसमें: किसने घोषित किया कि वे भगवान हैं? क्योंकि वह वह व्यक्ति न था जिसने घाटकोपर के भोजनालय के बाहर बहस की थी। वह व्यक्ति इस पर विश्वास न करता था और इसे कहता न था और उसने अपना समूचा जीवन इसे न कहने पर बनाया था। कोई और वस्तु ने उसे कहा। मुझमें कोई ऐसी वस्तु जो मेरे विचार साझा न करती थी, जिससे परामर्श न लिया गया था, जो मेरी धारणाओं के ऊपर से, उनके नीचे से, एक ऐसे अधिकार के साथ बोली जिसे मैंने अपना नहीं पहचाना और जिसे मैं रद्द नहीं कर सका।

मैं नहीं जानता कि वह कोई वस्तु क्या है। मेरे पास अब, पच्चीस वर्ष बाद, विचार हैं, और वे इस पुस्तक के बाद के भागों के हैं। उस रात तो मैं केवल इतना जानता था कि मैंने, अपने समूचे अस्तित्व के साथ, एक ऐसी वस्तु कही थी जिस पर मैं विश्वास न करता था — और

कि वह न-विश्वास मेरी एक परत में था और वह कहना एक गहरी परत से था, और कि उस गहरी परत ने उथली परत की अनुमति नहीं माँगी थी।

◆

और मैं दूसरी बार जंगल के फ़र्श पर पड़ा रहा, एक दूसरी असम्भव वस्तु थामे, और मैं — धुँधले ढंग से, प्रतिरोध के साथ, उस ढंग से जैसे कोई मनुष्य किसी ऐसी वस्तु पर संदेह करने लगता है जिसे वह जानना नहीं चाहता — यह समझने लगा कि मैं इस जंगल में प्रश्न पूछने नहीं आया था।

मैं विखंडित होने आया था।

प्रश्न मेरे थे, और वे अच्छे प्रश्न थे, और मैंने उन्हें पूछने के लिए एक देश पार किया था। किन्तु प्रश्न दिवालोक में हो रहे थे, सतह पर, उस भाषा में जिसे मैं नियंत्रित करता था। और नीचे, फ़र्श पर, अँधेरे में, रात-दर-रात, कुछ ऐसा चल रहा था जिसे मैं नियंत्रित नहीं करता था और जिसे मैंने माँगा न था और जिसे मैं उत्पन्न न कर सकता था — मन का एक ऐसा रुकना जिसका मैं साक्षी हो सकता था, दिव्यता की एक ऐसी घोषणा जिस पर मैं विश्वास न करता था, प्रत्येक बिन बुलाए आती हुई, प्रत्येक मेरी एक ऐसी परत से जिसके होने का मुझे पता न था।

दो रातें। दो स्वप्न। और प्रत्येक में, वही खोज एक भिन्न ओर से पहुँची: कि मैं, अंततः, वह व्यक्ति न था जो मैं अपना जीवन-भर रहा था। कि अभियंता के नीचे, तर्ककर्ता के नीचे, प्रयत्न से बने और तर्क से रक्षित एक स्व के समूचे भवन के नीचे, कोई और था — जो मन को मौन होते देख सकता था, और जो पहले से ही जानता था कि यह वृद्ध व्यक्ति ईश्वर है।

मेरे पास एक और रात थी।

एक और स्वप्न आने वाला था।

अध्याय ग्यारह:

तीन उतर आए

तीसरा स्वप्न मैं आपको बहुत सरलता से बताऊँगा, और फिर मैं कुछ ऐसा करूँगा जो मैंने अन्य दो के साथ नहीं किया। मैं उसे पूर्णतः अछूता छोड़ दूँगा।

पहले स्वप्न की व्याख्या न करने का मैंने वचन दिया था, और नहीं की, यद्यपि मैंने उसके अंत में एक प्रश्न खड़ा रहने दिया। दूसरे स्वप्न की व्याख्या न करने का मैंने वचन दिया था, और नहीं की, यद्यपि मैंने उसके केंद्रीय बिम्ब — एक चाल — को किसी बाद के पृष्ठ की प्रतीक्षा में चुपचाप पड़ा रहने दिया। इस तीसरे स्वप्न की मैं व्याख्या नहीं करूँगा, और इससे कोई प्रश्न लटकता नहीं छोड़ूँगा, और इसमें बाद के उपयोग के लिए कुछ नहीं रोपूँगा।

मैं उसे बताऊँगा, और रुक जाऊँगा, और उसे एक ऐसी वस्तु रहने दूँगा जो मैंने देखी।

क्योंकि किसी सिद्ध पुरुष के निकट जिए गए जीवन के विषय में मैंने एक बात सीखी है, और उसे स्वप्न देने से पहले स्पष्ट रूप से कह देना उचित है: हर वस्तु सुलझती नहीं। जो कुछ आपको दिया जाता है उसमें से कुछ को आप बिना समझे अंत तक ढोते हैं। एक ऐसा संस्मरण जो हर धागे को बाँध देता, वह इस विषय में झूठ होता कि ऐसा जीवन वास्तव में कैसा होता है। ईमानदार बात — वह जो आपसे, पाठक से, और उस अनुभव से स्वयं, विश्वास निभाती है — यह है कि मैं आपको कम-से-कम एक वस्तु दिखाऊँ जो मुझे मिली और जिसका मैंने कभी अर्थ न निकाला, और उसे अनसुलझी रहने दूँ, ताकि आप जान लें कि सुलझी हुई वस्तुएँ ईमानदारी से सुलझी थीं और आपको संतुष्ट करने के लिए गढ़ी न गई थीं।

यह वही वस्तु है।

◆

एक पहाड़ी थी।

मैं उसे देख रहा था। मैं कहीं नीचे था, या अलग, और मेरा ध्यान उस पहाड़ी पर और उसकी चोटी पर था, और पहाड़ी की चोटी से, ढलान से नीचे, तीन आकृतियाँ आईं।

वे एक-एक करके नीचे आईं।

साथ नहीं, किसी उतरते हुए समूह के रूप में नहीं, बल्कि अकेले-अकेले — एक, और फिर दूसरा, और फिर तीसरा — पहाड़ी की ऊँचाई से उस निचली भूमि की ओर आते हुए जहाँ मैं था, एक प्रकार के अनुक्रम में। उनमें से तीन, उतरते हुए, एक के बाद एक, पहाड़ी की ढलान से नीचे, जबकि मैं नीचे से देख रहा था।

मैंने उनके चेहरे नहीं देखे।

वे, जैसा मैं उस ढंग से समझ गया जिस ढंग से कोई स्वप्नों में वस्तुओं को बिना बताए समझ जाता है, संन्यासी थे। विरक्त। उस प्रकार के पुरुष, पहाड़ी से नीचे आते हुए, एक-एक करके, उनमें से तीन, चेहरे अनदेखे या अस्मरणीय।

और मैंने उन्हें आते देखा।

यही वह स्वप्न है। यही उसका समस्त है। तीन आकृतियाँ, एक पहाड़ी से उतरती हुईं, एक के बाद एक, ऐसे चेहरे जिन्हें मैंने नहीं देखा, मेरे द्वारा नीचे से देखी गईं।

◆

मैं जागा।

और मैंने उन तीन उतरती आकृतियों को पच्चीस वर्षों तक ढोया है, और मैं आपको नहीं बताऊँगा कि उनका क्या अर्थ है, क्योंकि मैं नहीं जानता कि उनका क्या अर्थ है, और उन्हें समझाने के लिए मैंने जो कुछ भी कभी रचा है वह, परखने पर, एक रचना जैसा लगा है — जंगल में उस बुद्धिमान व्यक्ति के तर्क की भाँति कि जीप रेलगाड़ी की संतान है: प्रशंसनीय, आंतरिक रूप से संगत, उपलब्ध प्रमाण से सद्भावपूर्ण तर्क द्वारा पहुँचा हुआ, और बहुत सम्भव है कि पूर्णतः ग़लत।

मेरे पास अपने अनुमान हैं। मैं उन्हें आपके समक्ष रखूँगा भी नहीं, क्योंकि उन्हें रखना स्वप्न को मेरे अनुमानों की ओर झुका देना होगा, और मैं इसे आपको स्वच्छ सौंपना अधिक पसंद

करूँगा, ठीक वैसे ही जैसे मैंने इसे पाया, और इसे आपके हाथों में उतना ही खुला रहने दूँगा जितना यह मेरे हाथों में रहा है। सम्भव है आप इसे समझ लें। सम्भव है यह समझ को सम्बोधित ही न हो। सम्भव है कुछ स्वप्न संदेश न हों, बल्कि बस मौसम हों — भीतर का एक विशेष प्रकार की रात बिताना। मैं नहीं जानता।

जो मैं जानता हूँ वह यह है कि मैंने तीन संन्यासियों को एक पहाड़ी से नीचे आते देखा, एक-एक करके, और उनके चेहरे नहीं देखे, और कि यह उन्हीं रातों में, उसी जंगल में, उसी फ़र्श पर हुआ, जिनमें मेरे मन का रुकना और चिता पर वह घोषणा हुई थी — और कि उन चार रातों में मुझे जो तीन वस्तुएँ दी गईं, उनमें से दो दशकों में धीरे-धीरे खुली हैं और एक नहीं खुली, और कि जो नहीं खुली उससे मैंने अपनी संधि कर ली है, क्योंकि सद्गुरु के साथ जिया गया जीवन कोई पहेली-पेटी नहीं है जिसकी तली में एक समाधान रखा हो। वह सत्य के साथ एक सम्बन्ध है, और सत्य आप पर किसी समाधान का ऋणी नहीं। वह आप पर किसी वस्तु का ऋणी नहीं। वह बस वही है जो वह है, और वही देता है जो वह देता है, और जो कुछ वह आपको देता है उसमें से कुछ आप समझते हैं और कुछ आप ढोते हैं।

मैं उन तीन आकृतियों को ढोता हूँ।

मैंने निश्चय किया है कि उन्हें ढोना स्वयं एक प्रकार की समझ है — वह प्रकार जो किसी समझ को बलपूर्वक न लादने में निहित है। उस जंगल से पहले मेरा समूचा जीवन समझों को बलपूर्वक लादना ही रहा था। सम्भव है तीसरे स्वप्न का एकमात्र अर्थ, यदि उसका कोई है, यही हो कि वह पहली वस्तु थी जिसे न सुलझाने की मैंने कभी सहमति दी।

किन्तु वह भी एक अनुमान है, और मैंने कहा था कि मैं अनुमान नहीं लगाऊँगा, अतः मैं रुक जाऊँगा।

◆

चार रातें। तीन स्वप्न।

पहली रात, मेरा मन रुका, और मैंने देखा कि वह रुक गया है, और उसे चला न सका, और समझ गया — यद्यपि मैं इन शब्दों का उपयोग न करता — कि मैं अपना मन नहीं हूँ।

दूसरी में, मेरे अपने बचपन की भूमि पर, एक चिता पर, एक हँसती हुई भीड़ के समक्ष, मुझमें किसी वस्तु ने जो मेरा विश्वास न थी, यह घोषित किया कि यह व्यक्ति ईश्वर है।

और तीसरी में, तीन आकृतियाँ एक पहाड़ी से नीचे आईं, एक-एक करके, और मैंने उनके चेहरे नहीं देखे, और कभी न देखूँगा।

मैं चार दिन पूर्व एक हवाई अड्डे पर पहुँचा था, एक संशयवादी अभियंता, प्रश्नों के एक थैले और संतों के विषय में एक सिद्धांत के साथ, एक पुस्तक के रचयिता से पूछताछ करने के अभिप्राय से। मैं अपने प्रायः किसी भी प्रश्न को पूछे बिना लौटने वाला था, दो ऐसे उत्तर पाकर जिन्हें मैं अभी समझ न सकता था और एक ऐसा स्वप्न जिसे मैं कभी न समझूँगा, और तीन बार, एक जंगल के फ़र्श पर, अपने ही सावधानी से बनाए स्व के नीचे से यह दिखाया जाकर कि वह स्व मेरा समस्त न था और उसके निश्चय संसार का फ़र्श न थे।

बम्बई लौटने का समय था।

मैं अभी नहीं जानता था कि वह जंगल इसका अंत न था। कि सात दिनों में कारों का एक क़ाफ़िला मेरे फ़्लैट के बाहर रुकेगा। कि तीन महीनों में मेरी पत्नी के विषय में एक अकेला प्रश्न मुझे बता देगा कि वे ऐसी वस्तुएँ जानते थे जिन्हें जानने का उनके पास कोई साधन न था। कि यह कोई भेंट न थी जो मैंने किसी संत को दी हो, बल्कि मेरे शेष जीवन की पहली चार रातें थीं।

मैंने सोचा कि मैं घर जा रहा हूँ।

मैं, हर उस अर्थ में जिसका महत्व था, केवल यात्रा पर निकल रहा था।

अध्याय बारह:

बंदर और संतरा

मैंने आपको चार रातें दी हैं और दिन लगभग कुछ भी नहीं।

यह एक ईमानदार चूक है और एक विकृत करने वाली भी, और वन छोड़ने से पूर्व मैं इसे सुधार लेना चाहता हूँ। यहाँ तक आया पाठक यदि यह समझ बैठे कि नगद के वे दिन सोने, स्वप्न देखने, और पुनः सोने की प्रतीक्षा करने में बीते, तो उसे क्षमा किया जा सकता है। वैसा न था। रातें वे थीं जहाँ मेरे साथ असाधारण बातें घटीं, और इसीलिए मैंने आपको रातें ही सुनाईं। किन्तु दिन वे थे जहाँ शेष सब कुछ घटा — और मुझे पच्चीस वर्षों में से अधिकांश लगे यह समझने में कि वे दिन रातों के बीच पड़ी खाली भूमि न थे। वे उसी शिक्षण का दूसरा आधा भाग थे, दिन के प्रकाश में दिया गया, मेरी खुली आँखों के सामने, एक ऐसे मनुष्य को जो इससे अधिक प्रभावशाली किसी वस्तु की प्रतीक्षा में व्यस्त था।

तो अब मैं आपको दिन देता हूँ।

दिन के प्रकाश में वह स्थान अंधकार में जितना सादा प्रतीत हुआ था, उससे भी अधिक सादा होकर उभरा। एक समतल स्थान, वे कुछ छोटे कक्ष, पम्पिंग सेट, और फिर चारों दिशाओं में वन। मुझे कोई चहारदीवारी स्मरण नहीं, कोई द्वार नहीं, कुछ भी ऐसा नहीं जो यह चिह्नित करता हो कि आश्रम कहाँ समाप्त होता है और देश कहाँ आरम्भ। जो था, वह प्रातःकाल में, लोग थे — पैदल आते हुए, मोटरसाइकिलों पर आते हुए, आस-पास के गाँवों से और चालीसगाँव से और उससे भी दूर से आते हुए, एक स्थिर घनत्व में जो दिन भर बढ़ता रहा। वह स्थान किसी संस्था-सा न दिखता था। वह एक ऐसे समतल भूखंड-सा दिखता था जहाँ तक चलकर आने का निश्चय बहुत से लोगों ने कर लिया हो।

मैं वह अंकित करना चाहता हूँ जो एक अभियंता ने लक्षित किया, क्योंकि यही उसका ईमानदार अभिलेख है कि मेरा ध्यान वस्तुतः क्या कर रहा था जबकि मेरी आत्मा पर, प्रकट रूप से, कहीं और कार्य हो रहा था।

◆

भंडारे की तैयारी हो रही थी — एक सामूहिक भोज, वह प्रकार जो पकाया जाता है और फिर जो भी आए उसे दे दिया जाता है।

मैंने अपना कार्य-जीवन इस प्रश्न पर व्यतीत किया है कि कोई वस्तु सम्पन्न कैसे होती है। समय-सारिणियाँ, परस्पर-निर्भरताएँ, क्रांतिक पथ, वह बैठक जिसमें किसी को सुपुर्दगी के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है। अतः मैंने भंडारे को उसी दृष्टि से देखा जिससे मैं सब कुछ देखता था, अर्थात् मैंने प्रबंधन खोजा।

पकाने के बर्तन विशाल थे — उस प्रकार के जिन्हें आप उठाते नहीं, हिलाते हैं, भूमि में खोदी गई लकड़ी की अग्नियों पर रखे हुए। सब्ज़ियाँ धरती पर बैठी पंक्तियों द्वारा काटी जा रही थीं, विशुद्ध परिमाण का एक कार्य, घंटों तक, हाथ बिना शीघ्रता और बिना विराम के चलते हुए। ईंधन कहीं से आया। जल कहीं से आया। किसी ने, एक वन में, परिमाण में, बहुत बड़ी संख्या में लोगों को खिलाने का कच्चा सामान जुटा लिया था, और वह आ चुका था, और वह रूपांतरित हो रहा था।



Preparing the bhandara.

और मुझे प्रबंधक नहीं मिला।

यह कोई रहस्यमय प्रेक्षण नहीं है और मैं इसे वैसा प्रस्तुत भी नहीं करता। निस्संदेह ऐसे लोग थे जो जानते थे कि वे क्या कर रहे हैं, और वृद्ध भक्त जिन्होंने यह अनेक बार किया था, और

निश्चय ही वरीयता का एक क्रम जिसे चार दिन का एक अजनबी पढ़ नहीं सकता था। मैं यह दावा नहीं कर रहा कि भोजन स्वयं पक गया। मैं यह अंकित कर रहा हूँ कि मैं एक पर्याप्त बड़े साजो-सामान के उपक्रम के मध्य खड़ा था, व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित दृष्टि से समन्वय का तंत्र खोजता हुआ — निर्देश, जाँच, वह ऊँचा स्वर जो इस परिमाण का कोई भी भारतीय कार्यस्थल हर दस मिनट में उत्पन्न करता है — और वह मुझे नहीं मिला। कार्य बस चलता रहा। लोग कार्यों तक उसी प्रकार पहुँचते थे जैसे जल निचले स्थान तक पहुँचता है।

मेरे भीतर के संशयवादी के पास, सदा की भाँति, एक व्याख्या तैयार थी, और मैं उसे उसका पूरा स्थान देता हूँ क्योंकि वह एक अच्छी व्याख्या है। एक धार्मिक समुदाय यही तो होता है: अवैतनिक, स्वेच्छुक, स्व-समन्वित श्रम उत्पन्न करने की एक मशीन। यह कोई आश्चर्य नहीं; यह सबसे प्राचीन सामाजिक प्रौद्योगिकी है। प्रत्येक मंदिर, प्रत्येक गिरजाघर, प्रत्येक मंडली इसी पर चलती है। जो मैं देख रहा था वह किसी संत का प्रभाव न था। वह साधारण लोगों के समूह पर साझा विश्वास का प्रभाव था, और मेरा अपना सिद्धांत — वही सिद्धांत जिसे मैं वायुयान पर लेकर चढ़ा था, कि समुदाय किसी व्यक्ति में महत्ता जमा करता है और फिर अपनी ही जमा-राशि के अनुरूप आचरण करता है — इस समूचे दृश्य की व्याख्या बिना कोई शेष छोड़े कर देता था।

मैं अब भी मानता हूँ कि वह व्याख्या मोटे तौर पर सही है। मैं उसे वैसे ही अंकित करता हूँ जैसे मैंने सब कुछ अंकित किया।

मैं केवल यह लक्षित करता हूँ, क्योंकि यह सत्य है, कि मैंने उस प्रकार की मशीन को कभी इतने मौन में चलते नहीं देखा था।

और यहीं जगदीश दुबे को ले आना चाहिए, क्योंकि वे इस सबके मध्य में थे और क्योंकि वे इस पुस्तक में अधिकार से आते हैं और ग्यारह अध्यायों से प्रवेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वे श्री प्रेम नाथ दुबे जी के परिवार से हैं — वही व्यक्ति जिन्होंने मेरी शिक्षा का व्यय उठाया, जिनका नाम मैं इस पुस्तक में बहुत पहले अपनी समस्त कृतज्ञता के साथ ले चुका हूँ — और वे विनय के बड़े भाई हैं। विनय ने यथार्थ गीता मेरे हाथों में रखी; जगदीश तब तक अपना अधिकांश जीवन उसी को दे चुके थे। उन्होंने अपने वर्षों का लगभग अस्सी प्रतिशत स्वामीजी की सेवा में और आश्रम ट्रस्ट के उस कार्य में लगाया है जो उस पुस्तक को देश भर में लोगों

के हाथों तक पहुँचाता है। वे स्वामीजी के यात्रा-सहचर थे। वर्षों में वे उन लोगों में से एक थे जो आपको बता सकते थे कि किसी स्वप्न का अर्थ क्या है। अब उनकी आयु पैंसठ से ऊपर है।



Swamiji with Jagdish Dubey while the bhandara was being prepared.

और मुझे उनके साथ सूरज सिंह का नाम लेना चाहिए — क्योंकि यह पुस्तक उनके विषय में लापरवाह रही है और उसे नहीं होना चाहिए था। उन्होंने अपना समूचा जीवन यथार्थ गीता को भारत भर में पहुँचाने में दिया है: उसका कोई एक मौसम नहीं, कोई एक अंश नहीं, समूचा जीवन — पुस्तकों के साथ यात्रा करते हुए, उन्हें हाथों में रखते हुए, जगदीश और विनय के साथ। यहाँ उनका कोई अध्याय नहीं है और वे चाहेंगे भी नहीं। किन्तु जो पुस्तक विस्तार से बताती है कि यथार्थ गीता घाटकोपर के एक फ़्लैट में एक ऊबे हुए अभियंता तक कैसे पहुँची, और उन लोगों के नाम नहीं लेती जो उसे शेष सब तक ले गए, उसका अनुपात बुरी तरह बिगड़ा हुआ है। तो तीन: जगदीश, सूरज सिंह, और विनय — मेरे मित्र, जगदीश के छोटे भाई, जिन्होंने वह पुस्तक मेरे हाथों में रखी और यह सब गति में ला दिया।

और उन्होंने एक बार मुझसे एक बात कही जो मैंने तब से सँभाल रखी है और जो यहीं आती है, अन्यत्र कहीं नहीं, क्योंकि यह उस समूचे सिद्धांत का सबसे सादा कथन है जिस तक यह पुस्तक अपने अंतिम अध्यायों में जाकर पहुँचती है:

यदि आप स्वामीजी को अच्छी दशा में देखें या बुरी दशा में, वह आपके विषय में है। वह स्वामीजी के विषय में नहीं है।



Swamiji with us at the ashram. Prem Nath Dubey Ji in the brown kurta; Vinay in the white banyan and dhoti.

जब उन्होंने यह कहा तब मैं नहीं समझा। मैं इसे अंततः समझा, रात के मध्य में, किसी आश्रम को दूरभाष करते हुए, एक ऐसे व्यक्ति का कुशल-क्षेम पूछते हुए जो पूर्णतः स्वस्थ था। किन्तु यह जगदीश दुबे थे जिन्होंने इसे सबसे पहले कहा, बिना किसी विशेष अवसर के, उस ढंग से जैसे वे लोग जिन्होंने अपना जीवन किसी वस्तु के निकट बिताया हो, उपलब्ध सबसे महत्वपूर्ण बात को बिना उसका आयोजन बनाए कह देते हैं।

◆

देवा बाबा ने वहीं तपस्या की थी — आश्रम में और उसके चारों ओर के जंगल में — और उनके विश्राम-स्थल पर एक समाधि उठाई जानी थी।

मैंने निर्णय होते नहीं देखा। मैंने भूमि खुलते देखी, और ईंटें आती देखीं, और दूसरे दिन मैंने स्वामीजी को स्थल पर खड़े होकर कार्य का निर्देशन करते देखा।

और फिर, दो दिनों के भीतर, वह पूर्ण हो गई।



Swamiji directing the work on the second day. The samadhi was finished in two.

मैं यहाँ ठहरना चाहता हूँ, क्योंकि उन दिवस-प्रकाश के घंटों में से यही एक वस्तु है जिसने वस्तुतः मेरे व्यावसायिक संतुलन को विचलित किया, और उसने उसे ऐसे ढंग से विचलित किया जिसका चमत्कार से कोई सम्बन्ध नहीं।

दो दिन कोई निर्माण-अनुसूची नहीं है। वह तो ठीक से जुटान भी नहीं है। जिस संसार से मैं आया था, वहाँ दो दिन वह अवधि है जितनी एक निर्णय को स्वीकृत होने में लगती है, और

वास्तविक कार्य उसके कहीं बाद आरम्भ होता है, यदि सामग्री आ चुकी हो, जो आई नहीं होती। मैंने अपने जीवन के वर्ष उस अंतराल पर लगाए हैं जो योजना और वस्तु के बीच होता है — वह अंतराल जहाँ रेखांकन एक सप्ताह कहता है और स्थल तीन कहता है, और यह अंतर पूर्णतः इस बात से बना होता है कि लोग वह नहीं करते जो तय हुआ था, उस गति से नहीं करते जिस गति से तय हुआ था। एक अर्थ में वह अंतराल ही मेरा समूचा पेशा है। वह कर है जो संसार प्रत्येक संकल्प पर लगाता है।

नगद में वह कर नहीं लगा। उन्होंने वस्तु कही; वह हो गई; वह दो दिनों में हो गई।

और मैंने आगे के वर्षों में जाना कि यह उस एक स्थल तक सीमित न था। उनके आश्रमों में सर्वत्र यही था। उनका शब्द निकलता और वस्तु अस्तित्व में आ जाती, एक ऐसी गति से जिसका इस देश में कहीं भी कुछ भी बनवाने के साधारण घर्षण से कोई सम्बन्ध न था।

अब — इसका सादा पाठ क्या है? मैं सादे पाठ पर बल देता हूँ, यहाँ भी और सर्वत्र भी।

सादा पाठ है आज्ञापालन। कोई आश्चर्य नहीं। किसी संत के चारों ओर पदार्थ का स्वयं को पुनर्व्यवस्थित कर लेना नहीं। केवल इतना कि बहुत बड़ी संख्या में लोगों ने इस व्यक्ति पर इतना पूर्ण विश्वास किया कि जब उन्होंने संकेत किया कि यह होना चाहिए, तो साधारण प्रतिरोध घटित ही नहीं हुआ — कोई मोल-भाव नहीं, कोई टालमटोल नहीं, यह देखने की प्रतीक्षा नहीं कि वे सचमुच कह रहे हैं या नहीं, वे छोटी-छोटी निजी आपत्तियाँ नहीं जो हर दूसरे मानवीय उपक्रम में वस्तुतः यही कारण होती हैं कि कुछ भी समय पर नहीं बनता। आपत्तियाँ हटा दीजिए, और दो दिन में समाधि बनाने के लिए आपको किसी चमत्कार की आवश्यकता नहीं। आपको केवल पर्याप्त हाथ चाहिए और कोई विवाद नहीं।

यही समूची व्याख्या है, और मैं इसे मानता हूँ, और मैं चाहता हूँ कि पाठक के पास यह रहे।

मैं केवल इतना जोड़ूँगा, एक अभियंता के रूप में और भक्त के रूप में नहीं: मैंने अपना समूचा वृत्तिक जीवन उसी अवस्था को अन्य साधनों से उत्पन्न करने में लगाया है। प्रोत्साहन, अनुबंध, दंड-धाराएँ, वह समूचा तंत्र जिसके द्वारा आधुनिक संसार वह क्रय करने का प्रयत्न करता है जो उन्हें प्रकट रूप से निःशुल्क प्राप्त था। मैं उसे एक बार भी उत्पन्न न कर सका। मैं उनके विषय में कोई दावा नहीं कर रहा। मैं उस वस्तु की कठिनाई के विषय में दावा कर रहा

हूँ, और यह बता रहा हूँ कि मैंने उसे देखा, एक वन में, उस समूची मशीनरी के बिना जिसे आवश्यक मानने का मुझे प्रशिक्षण मिला था।

मैंने उन्हें, बाद में, उस समाधि पर ध्यान करते देखा।

इस विषय में मेरे पास कहने को कुछ नहीं है और मैं कुछ गढ़ूँगा भी नहीं। वे वहाँ बैठे, और मैंने उन्हें वहाँ बैठे देखा। यह उन छायाचित्रों में से एक है।

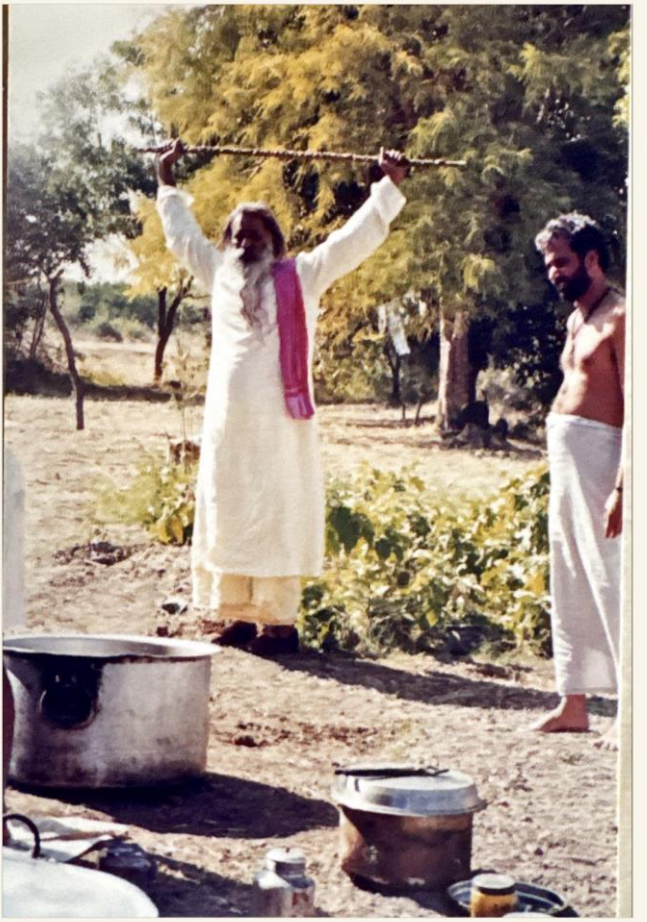

At the ashram, Nagad.

◆

पहलवान आए।



Wrestling at Nagad Ashram, Chalisgaon. Swamiji is seated in the crowd, beneath the umbrella.

वे उसी परिवार के थे जिसके घर पर हम विमानतल से आते हुए रुके थे — पहलवानों का वह घर, जहाँ मैंने गधे और ऊँट का अपना प्रश्न पूछा था और उसके बदले मुझे एक वन में पड़ी टूटी हुई जीप मिली थी। अब उसी घर के पुत्र आश्रम आए थे, और कुश्ती हुई, और स्वामीजी ने उसे देखा।

उन्हें देखना अच्छा लगता था। यह एक सादा वाक्य है और मैं इसका सादा अर्थ ही लेता हूँ: उन्होंने उसका आनंद लिया, प्रत्यक्ष रूप से, जैसे उस क्षेत्र का कोई भी व्यक्ति अच्छी कुश्ती का आनंद लेता है। उसमें गंभीर कुछ भी न था। पुरुष पकड़ते और चक्कर काटते और धूल में गिरते, और भीड़ वे ध्वनियाँ करती जो भीड़ें करती हैं, और श्वेत वस्त्रों में एक वृद्ध व्यक्ति प्रकट प्रसन्नता से देखता।



Swamiji watching the wrestling, Nagad Ashram.

मैंने इस पर सम्भवतः उससे अधिक विचार किया है जितना यह दृश्य माँगता है। किन्तु मैं एक निश्चित धारणा लेकर आया था कि आत्मज्ञ पुरुष कैसा होता है, जो पुस्तकों से जोड़ी गई थी, और उस धारणा में अखाड़े की एक दोपहर सम्मिलित न थी। मैंने अपेक्षा की थी — मुझे यह लिखने में संकोच होता है — एक स्थायी गंभीरता की। दिवस के उन घंटों में जिससे मेरी भेंट हुई वह एक ऐसा व्यक्ति था जो एक साधारण संसार में पूर्णतः सहज था: कुश्ती में रुचि लेता हुआ, पाक-कार्य पर ध्यान देता हुआ, एक अच्छे दाँव से प्रसन्न। पवित्रता का मेरा चित्र उन लोगों ने बनाया था जिन्होंने कभी पवित्रता देखी ही न थी, और वह दिन भर चुपचाप ढहाया जा रहा था — एक ऐसे व्यक्ति द्वारा जो अपने आनंद लेने से अधिक उल्लेखनीय कुछ भी नहीं कर रहा था।

मैं तब नहीं जानता था जो मैंने वर्षों बाद जाना और इस पुस्तक में पहले ही अंकित कर चुका हूँ: कि उनके अपने गुरु पहलवान थे — अट्ठाईस वर्ष की आयु तक अपराजित, एक ऐसे गाँव के जो इस खेल के लिए पागल था, कुछ और होने से पूर्व अखाड़े के विजेता। मैं नहीं जानता था, नगद में एक दाँव का आनंद लेते वृद्ध व्यक्ति को देखते हुए, कि मैं एक परम्परा को एक पुराना स्नेह निभाते देख रहा हूँ। मैं केवल इतना जानता था कि जो चित्र मैं लाया था वह सामने खड़े व्यक्ति पर बैठता नहीं।

◆

और वहाँ एक बालक था।

किसका, मैं नहीं जानता। किसी का — उन बच्चों में से एक जो ऐसी सभाओं के किनारे सदा रहते हैं, बड़ों की टाँगों के बीच से आते-जाते, इस बात से पूर्णतः अप्रभावित कि शेष सब जिसे देखने आए हैं वह कौन है।

स्वामीजी के पास उनकी लाठी थी। और बालक ने उसे पकड़ लिया और लटक गया, और स्वामीजी ने उसे उठा लिया — लाठी आगे किए उसका पूरा भार उस पर ले लिया और उसे ज़मीन से ऊपर झुला दिया, जैसे कोई चाचा करता है, जैसे कोई भी करता है — जबकि दो बालिकाएँ सफ़ेद दीवार से सटी खड़ी देखती रहीं और सम्मिलित होने का साहस पूरी तरह न कर सकीं।

बस इतनी ही घटना है।



Swamiji with a child.

मैं इसे उसी कारण से सम्मिलित करता हूँ जिस कारण से मैंने कुश्ती को सम्मिलित किया। क्योंकि एक साधारण दोपहर में, उन घंटों में जो लिखे नहीं जाते, वे वस्तुतः ऐसे ही थे। मैंने एक संत से जिरह करने के लिए एक देश पार किया था। मैंने एक दोपहर का कुछ भाग यह देखते हुए बिताया कि वे एक छोटे बालक का भार एक लाठी पर लेकर उसे भूमि से ऊपर उठा रहे हैं, और मेरे पास छायाचित्र हैं, और दोनों में वे उस बालक की ओर उस ध्यान से देख रहे हैं जो मैंने उन्हें बहुत कम वयस्कों को देते देखा।

इस पुस्तक में कुछ भी लिखना इस बात से कठिन नहीं रहा कि वे विनोदी थे, और सहज, और उन्हें बच्चे और कुश्ती और मौसम्बी प्रिय थे। श्वेत प्रकाश लिखना कहीं अधिक सरल है। किन्तु जिन्होंने मुझे वह श्वेत प्रकाश दिया, वे ही एक आँगन में खड़े होकर किसी के पुत्र

को एक लाठी पर झुला रहे थे — और यदि मैं इसे छोड़ दूँ, तो मैंने आपको एक आकृति सौंपी है, एक व्यक्ति नहीं।



Lifting the child, who *holds* on to his stick.

◆

आश्रम में मौसम्बी उगती थी — आश्रम के अपने ही वृक्षों की — और एक दोपहर मैं खुली भूमि पर बिछे एक सफ़ेद कपड़े पर बैठकर श्री प्रेम नाथ दुबे जी के साथ मौसम्बी खाता रहा।

बस इतनी ही घटना है, और मैंने इसे अंकित करने की बात सोची भी न होती। मैं इसे इसलिए अंकित करता हूँ क्योंकि एक छायाचित्र है, और क्योंकि अब जब मैं उस छायाचित्र को देखता हूँ तो उसमें बैठे दूसरे व्यक्ति से आगे बढ़ ही नहीं पाता।

पाठक उनसे इस पुस्तक में बहुत पीछे मिल चुका है, उस अध्याय में जो इस विषय में था कि मैं क्या-क्या नहीं था। वे वही शिक्षित व्यक्ति थे, वही व्यवसायी, जिन पर मेरा कुछ भी ऋण न था — जिन्होंने मेरे गुरुजी के कहने पर सोलह वर्ष के एक फँसे हुए बालक को तीन वर्षों तक पाँच सौ रुपये मासिक दिए और उसे महाविद्यालय, अभियांत्रिकी और छात्रावास के पार पहुँचाया। मैंने लिखा है कि उनके बिना यह एक बड़ा कारण है कि इस कहानी के घटित होने के लिए कोई अभियंता था भी। मेरा अभिप्राय ठीक वही था। श्री प्रेम नाथ दुबे जी के बिना कोई अभियांत्रिकी उपाधि नहीं। उपाधि के बिना कोई एल एंड टी नहीं, कोई वृत्ति नहीं, बम्बई का कोई स्थानांतरण नहीं। बम्बई के बिना घाटकोपर के एक मित्र के फ़्लैट में वह ऊबी हुई दोपहर नहीं, और उस अलमारी पर वह पुस्तक नहीं जिसे मैं पहले ही न पढ़ने का निश्चय कर चुका था।

और वे वहाँ थे, बीस से अधिक वर्ष बाद, महाराष्ट्र के एक वन-आश्रम की भूमि पर बिछे कपड़े पर पालथी मारे बैठे, मेरे सद्गुरु से कुछ ही गज़ की दूरी पर मेरे साथ मौसम्बी बाँटते हुए।

मैं सावधान रहना चाहता हूँ, क्योंकि यही वह प्रकार की वस्तु है जिसे इस जैसी पुस्तक फुला सकती है। सादा पाठ पूर्णतः उपलब्ध है और मैं उसे बिना किसी तर्क के पाठक को सौंपता हूँ: एक भला व्यक्ति जो एक बालक पर दयालु रहा था, उस बालक के जीवन के निकट बना रहा, और आश्रम आया जैसे बहुत से लोग आते थे, और एक गर्म दोपहर भूमि पर बैठकर उसके साथ फल खाया। परिवार ऐसा करते हैं। कुछ भी नहीं हुआ।

मैं केवल इसे शेष के बगल रख देता हूँ, जैसा मैंने प्रत्येक वस्तु को प्रत्येक वस्तु के बगल रखा है। जिस व्यक्ति ने उस उपकरण का मूल्य चुकाया था, वह उन्हीं चार दिनों में उसी वन में उपस्थित था जब वह उपकरण पहली बार विफल हुआ। मैंने उस समय लक्षित नहीं किया। मेरे पास लक्षित न करने का एक छायाचित्र है।



The author with Shri Prem Nath Dubey Ji, eating mosambi grown in the ashram.

◆

अब वह वस्तु जिसके नाम पर मैंने यह अध्याय रखा है, और जिसकी ओर मैं कई पृष्ठों से चल रहा हूँ, और उन चार दिनों की वह अकेली घटना जिसके विषय में मैं ईमानदारी से कह सकता हूँ कि मैं उसे उसी समय समझ गया था — और जिसे, जैसा सिद्ध हुआ, मैं बिल्कुल भी नहीं समझा था।

वे हमें प्रातःकाल टहलाने ले जाते थे।



Swamiji taking us out for the morning walk.

मैंने इसका उल्लेख नहीं किया, और यही उन दिनों का साधारण रूप था। वे सवेरे लाठी लेकर पैदल निकल पड़ते, और जो भी वहाँ होता उनके साथ हो लेता — आश्रम से बाहर खेतों तक, जहाँ एक बार हम सीधे किसी के गोधन के बीच जा पहुँचे और उनके बीच खड़े रहे, और वे हमारे चारों ओर यों चरते रहे मानो हम कोई मौसम हों। वे अच्छा चलते थे। मुझे स्मरण है कि मैंने सोचा था — वे ऐसे चलते हैं जैसे कोई पंद्रह वर्ष वन में बिता चुका हो।



The morning walk; we came upon the cattle in the fields.

ऐसी ही किसी एक सुबह की सैर में यह घटा।

एक पगडंडी थी और उसके किनारे एक छोटा वृक्ष। और उस पगडंडी पर एक बंदर था, और बंदर के पास एक संतरा था।

वह उसे खोलने का प्रयत्न कर रहा था। और हर बार जब वह छिलका तोड़ता, छिलके से छींटा उठता — वह महीन तेल की फुहार जो दबाव में नींबू-वर्ग के छिलके से निकलती है, और जिसे संतरा असावधानी से छीलने वाले हर व्यक्ति ने कम-से-कम एक बार आँख में लिया है। वह बंदर की आँखों में गया। बंदर पीछे हटा, और पलकें झपकाईं, और अपना मुँह मला, और फिर संतरे पर लौट आया।

यह पुनः हुआ। और पुनः। दो बार, तीन बार — वही क्रम: पकड़, तोड़, फुहार, पीछे हटना।

और तब बंदर ने संतरा लिया, और उसे अपने पीछे किया, और वहाँ खोला — अपने ही मुख की रेखा से बाहर, ताकि फुहार उसकी आँखों में न जाकर दूर जाए।

और उसने संतरा खा लिया।



The pathway on the morning walk. The tree ahead is where he stopped, and where the monkey was.

मैंने यह समूचा दृश्य देखा। औरों ने भी देखा। यह उस प्रकार का छोटा हास्य-दृश्य है जो किसी भी भारतीय पगडंडी पर किसी भी दोपहर घटता है, और साधारण क्रम में कोई इसे एक घंटे बाद स्मरण न रखता।

स्वामीजी ने कहा:

"देखो — इसको किसने बुद्धि दी है?"

बस इतना ही उन्होंने कहा। उन्होंने इसकी व्याख्या नहीं की। उन्होंने एक दोपहर के मध्य में एक बंदर के विषय में एक प्रश्न पूछा, और आगे बढ़ गए।

मैं ठीक-ठीक वह अंकित करना चाहता हूँ जो मैंने उस समय इसका अर्थ लगाया, क्योंकि तब जो अर्थ मैंने लगाया और अब जो लगाता हूँ, उनके बीच का अंतराल ही इस अध्याय का विषय है और, मेरा विश्वास दृढ़ होता जाता है, समूची पुस्तक का विषय है।

तब मैंने जो अर्थ लगाया वह था: कितनी सुंदर टिप्पणी। एक संत ने एक बंदर को समस्या सुलझाते देखा और मनोहर ढंग से पशु-बुद्धि के आश्चर्य की ओर ध्यान खींचा। मैंने इसे मधुरता

की श्रेणी में रख दिया। स्मरण रहे, मैं ऐसा व्यक्ति था जो किसी महत्वपूर्ण घटना की प्रतीक्षा में था — और मैं पहले ही तय कर चुका था कि महत्वपूर्ण कैसा दिखेगा, और वह एक बंदर से प्रसन्न होते वृद्ध व्यक्ति जैसा नहीं दिखता था।

अब वह जो मैं देख न सका।

मैं उस वन में मन के विषय में एक प्रश्न लेकर आया था। वही प्रश्न था जिसे पूछने के लिए मैंने एक देश पार किया था, और मैंने उसे पूछा भी, वहाँ अपनी पहली रात के अगले प्रातः, और मैंने आपको बता दिया है कि क्या हुआ: मैंने उनसे मन को उसकी वृत्तियों में विभाजित करने को कहा — मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार — और उन्होंने चार शब्दों में उस विभाजन को अस्वीकार कर आगे बढ़ गए। वे सब एक ही हैं।

बुद्धि उन्हीं चारों में से एक है। वह विवेक-शक्ति है: वह जो इसे उससे पृथक् बताती है, ठीक वही घटक जिसे पृथक् कर परिभाषित करने को मैंने उनसे कहा था।

और तब, दिन के प्रकाश में, एक पगडंडी पर, एक पशु को यह हल निकालते देखकर कि फुहार सीधी रेखा में चलती है और उसे मुख से दूर मोड़ा जा सकता है, उन्होंने पूछा — एक बंदर के विषय में, एक ऐसे जीव के विषय में जिसके पास न दर्शन है, न शास्त्र, न गीता पर कोई भाष्य — इसको किसने बुद्धि दी है?

मैं इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकालता। मैंने इस पुस्तक में किसी वस्तु से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला और भाग चार में आरम्भ करने वाला नहीं हूँ। मैं केवल दोनों वस्तुओं को अगल-बगल रख देता हूँ, जैसा मैंने सीखा है, और पीछे हट जाता हूँ: कि एक प्रातः मैंने पूछा कि बुद्धि क्या है और उसकी सीमाएँ कहाँ हैं, और उन्हीं चार दिनों की किसी दोपहर उन्होंने एक बंदर की ओर संकेत कर पूछा कि उसे बुद्धि किसने दी।

और पाठक, यदि वह चाहे, यह लक्षित कर सकता है कि दूसरा प्रश्न पहले का उत्तर नहीं है। वह पहले का पुनर्निर्देशन है — यह वृत्ति क्या है से हटाकर वह किसकी है की ओर — जो एक पूर्णतः भिन्न प्रश्न है, और कहीं अधिक प्राचीन, और अकेला वही, मैं धीरे-धीरे मानने लगा हूँ, जो वस्तुतः कभी विचाराधीन था।

मैंने लक्षित नहीं किया। मैं चमत्कार की प्रतीक्षा में था। वे एक बंदर की ओर संकेत कर रहे थे।

◆

मैंने इस अध्याय के आरम्भ में कहा था कि दिन उसी शिक्षण का दूसरा आधा भाग थे। अब मुझे सावधान रहना है कि इसका मेरा अभिप्राय क्या है, क्योंकि मैं वही एक काम करने जा रहा हूँ जिसे यह पुस्तक लगातार अस्वीकार करती आई है — व्याख्या।

तो शर्तें रख दूँ।

आगे जो कुछ है, वह मेरा है। उसकी एक पंक्ति भी मुझसे मेरे सद्गुरु ने नहीं कही। उन्होंने एक बार भी मुझसे नहीं कहा कि भंडारे का कोई अर्थ है, या समाधि का कोई अर्थ है, या बंदर कोई पाठ था। उन्होंने एक बंदर के विषय में प्रश्न पूछा और आगे चल दिए। यहाँ जो मैं अंकित करता हूँ वह वह है जो एक मनुष्य ने पच्चीस वर्षों में उन चार दिनों के विषय में सोचा जिन्हें वह उस समय समझा ही न था — और यदि इसमें से किसी में मैं ग़लत हूँ, तो त्रुटि मेरी है और उन्हें छूती तक नहीं।

मैं इसे उनका अभिप्राय बताकर प्रस्तुत नहीं करता। मैं इसे अपना पाठ बताकर प्रस्तुत करता हूँ, और पाठक किसी दूसरे पाठ के लिए स्वतंत्र है।

भंडारा। मैं एक बड़े उपक्रम के मध्य खड़ा प्रबंधक खोज रहा था और मुझे कोई नहीं मिला। वर्षों बाद मैं गीता के कर्म-सम्बन्धी उपदेश के साथ बैठूँगा और वही वस्तु दूसरी ओर से वर्णित पाऊँगा: वह कार्य जो बिना किसी कर्ता के सिर पर खड़े हुए सम्पन्न हो जाता है, वह श्रम जिसके केंद्र में कोई यह दावा करता हुआ नहीं होता कि परिश्रम वही कर रहा है। मैंने अपना समूचा व्यावसायिक जीवन केंद्र में खड़े रहकर बिताया था। मैं जिसके भीतर खड़ा था उसे इसलिए न देख सका क्योंकि मैं उसमें स्वयं को खोज रहा था।

दो दिन में बनी समाधि। मैंने इसे आज्ञापालन पढ़ा था और आज भी वही पढ़ता हूँ। किन्तु जो मैं न देख सका वह यह था कि मैं ठीक उसी वस्तु का हटाया जाना देख रहा था जो मुझे धीमा कर रही थी। एक शब्द निकला था और उसे कोई आपत्ति नहीं मिली, अतः वह दो दिनों में एक भवन बन गया। उन्होंने मुझसे जो कुछ भी कहा, उसे मेरी आपत्ति मिली। इसीलिए मुझे

पच्चीस वर्ष लगे। वह समाधि अड़तालीस घंटों में इसलिए खड़ी हो गई क्योंकि वहाँ कोई भी वह नहीं कर रहा था जो मैं करता था।

कुश्ती, और लाठी पर लटका बालक। मैं यह चित्र लेकर आया था कि आत्मज्ञ पुरुष कैसा दिखता है। उन्होंने चार दिन चुपचाप उसे ढहाने में लगाए — आनंद लेकर। अब मुझे लगता है कि उस पूरे सप्ताह उन्होंने मेरे लिए यही सबसे व्यावहारिक कार्य किया, क्योंकि जो मनुष्य पवित्रता को किसी एक विशेष आकार में खोजता है वह उसे प्रत्येक दूसरे आकार में चूक जाएगा — और मैं एक बहुत ही विशेष आकार मन में लिए आया था।

बंदर। मैं उसे उस प्रश्न के बगल पहले ही रख चुका हूँ जो मैंने उस सुबह पूछा था, और स्वयं को दोहराऊँगा नहीं। मैं केवल यह जोड़ूँगा कि अब मुझे लगता है वह पुनर्निर्देशन किसलिए था। मैंने पूछा था कि मन के अंग क्या हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि वे एक हैं। और फिर, एक पगडंडी पर, उन्होंने ऐसे जीव की ओर संकेत किया जिसके पास न शास्त्र है न दर्शन, और पूछा कि उसे बुद्धि किसने दी। इन दोनों के बीच उन्होंने समूचा विषय ही हटा दिया था: यह वृत्ति क्या है से वह किसकी है की ओर — जो ऐसा प्रश्न नहीं जिसे विश्लेषण से निपटाया जा सके, और अकेला वही प्रश्न जो कभी विचाराधीन था।

मौसम्बी। नगद की भूमि पर एक कपड़े पर बैठे श्री प्रेम नाथ दुबे जी। मैं कह चुका हूँ कि मैंने उस समय लक्षित नहीं किया और मेरे पास लक्षित न करने का एक छायाचित्र है। अब मुझे बस इतना लगता है कि जिस समूचे तंत्र ने मुझे उस वन तक पहुँचाया था, वह उसी वन में मेरे साथ बैठा फल खा रहा था — और मैं उसे इसलिए न देख सका क्योंकि मैं तब तक इसी भ्रम में था कि मैं वहाँ स्वयं पहुँचा हूँ।

कैमरा। उन दृष्टियों के विषय में जो मैं अनुभव करता हूँ वह लिख चुका हूँ, और मैं न उसे सुधारूँगा न उसका बचाव करूँगा।

यही मेरा समूचा पाठ है, और मैं इसे ईमानदारी से बंद करना चाहता हूँ।

उन्होंने इसमें से एक शब्द की भी पुष्टि नहीं की। एक की भी नहीं। मैंने कभी पूछा नहीं और उन्होंने कभी कहा नहीं, और ऊपर की प्रत्येक बात वह रचना है जो मैंने बहुत बाद में उन घटनाओं पर खड़ी की, जो उन दिनों तो बस एक आश्रम के चार दिन थीं — एक भोज, एक

निर्माण, कुछ कुश्ती, मौसम्बी, एक चतुर बंदर, और एक वृद्ध व्यक्ति जिसका साथ मेरी अपेक्षा से कहीं सहज था।

मैं मानने लगा हूँ कि वे जानते थे कि वे मुझे क्या दिखा रहे हैं। मैं इसे सादे ढंग से कहना चाहता हूँ क्योंकि मैं यही मानता हूँ — और उसी साँस में यह भी कहना चाहता हूँ कि मैं इसे प्रमाणित नहीं कर सकता, कि यह उस प्रकार की वस्तु ही नहीं जिसे प्रमाणित किया जा सके, और यह कि जो मनुष्य चार दिनों में अर्थ खोजने पर पच्चीस वर्ष लगाएगा उसे चार दिनों में अर्थ मिल ही जाएगा।

ये दोनों एक साथ सत्य हैं। ये एक चौथाई शताब्दी से एक साथ सत्य रहे हैं। मैंने इनके सुलझने की अपेक्षा करना छोड़ दिया है।

◆

उन दिनों की एक और वस्तु है और वही है जिसे सादे ढंग से लिखना मुझे सबसे कठिन लगता है, अतः मैं उसे यथासम्भव सादे ढंग से लिखूँगा और उसमें कुछ जोड़ूँगा नहीं।

प्रवचन के समय मैं सामने बैठा, और मैंने उनके छायाचित्र लिए।

मेरे पास एक कैमरा था। मुझे स्मरण नहीं कि मैंने उसे किसी विशेष प्रयोजन से लाने का निश्चय किया हो; अपरिचित स्थान की यात्रा करता व्यक्ति कैमरा ले जाता है। मैं वहाँ बैठा जहाँ से देख सकूँ, और उनके बोलते समय छायाचित्र लेता रहा।

और वे बार-बार कैमरे की ओर दृष्टि डालते रहे।

मेरी ओर नहीं — या केवल मेरी ओर नहीं। कैमरे की ओर। अन्य बातों के बीच-बीच में, बोलते हुए, उनकी दृष्टि उस पर आती और फिर आगे चली जाती। मैंने उस समय इसे सबसे हल्के सम्भव ढंग से लक्षित किया, जैसे आप लक्षित करते हैं कि वक्ता ने अगली पंक्ति की किसी बाधा को अंकित कर लिया है, और मैंने इसका तनिक भी अर्थ न लगाया। यदि कुछ था तो मैं हल्का-सा संकोच अनुभव कर रहा था, उस नवागंतुक के ढंग से जिसे संदेह हो कि वह कुछ अशिष्टता कर रहा है।

पच्चीस वर्ष बाद, वे छायाचित्र इस पुस्तक में हैं।

मैं आपको यह नहीं बताऊँगा कि इसका क्या अर्थ है। लगभग निश्चित रूप से इसका अर्थ यही है कि प्रवचन देते एक वृद्ध व्यक्ति ने एक कैमरा लक्षित किया, जो प्रवचन देते वृद्ध व्यक्ति करते ही हैं। यह सादा पाठ है और यह उपलब्ध है और मैं इसे आपको सौंपता हूँ।

मैं केवल यह बताऊँगा कि अब मैं क्या अनुभव करता हूँ, जो उस समय क्या हुआ इस विषय में किसी दावे से भिन्न वस्तु है। जब मैं उन फ़्रेमों को देखता हूँ तो मुझे लगता है कि मुझे उन्हें लेने की अनुमति दी जा रही थी। मैं इसे प्रमाणित नहीं कर सकता। यह साक्ष्य नहीं है और मैं इसे साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत नहीं करता। यह एक अनुभूति है जो घटना के पच्चीस वर्ष बाद आई, एक ऐसे व्यक्ति में जो एक ऐसी पुस्तक जोड़ रहा है जिसे लिखने का उसका तनिक भी अभिप्राय उस समय न था जब शटर दबाया गया था, और मैं इसे यहाँ केवल इसलिए अंकित करता हूँ क्योंकि इस पुस्तक का एक नियम है कि वस्तुएँ अंकित की जाती हैं, और उस नियम में उन वस्तुओं के लिए कोई छूट नहीं जो मुझे असहज करती हैं।

कारण अज्ञात। त्यागें नहीं।

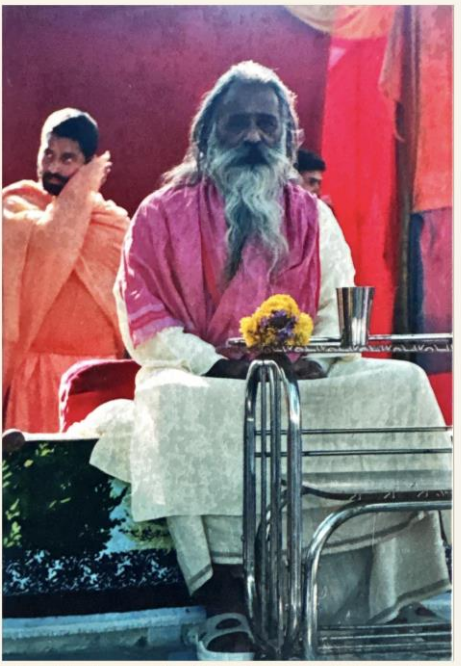

Swamiji in discourse at Nagad. The author sat in front, photographing.

◆

उन दिनों के दो अन्य स्थान, जिन्हें मैं संक्षेप में अंकित करता हूँ।

निकट ही किसी संत की समाधि थी — घंटी सहित एक छोटा लाल देवस्थान — और उन्होंने हमसे कहा कि वहाँ प्रणाम करें और आशीर्वाद लें। उन्होंने इस पर कोई उपदेश नहीं दिया। उन्होंने स्थान की ओर संकेत किया और कहा कि क्या किया जाना चाहिए, और हमने किया। मुझे स्मरण है कि मैंने अपने संशयी ढंग से सोचा था कि एक संत का दूसरे संत की समाधि पर श्रद्धा की संस्तुति करना ठीक वही है जो एक संत करेगा, और फिर जाँचने पर पाया कि यह प्रेक्षण उतना चतुर नहीं था जितना अनुभव हुआ था।

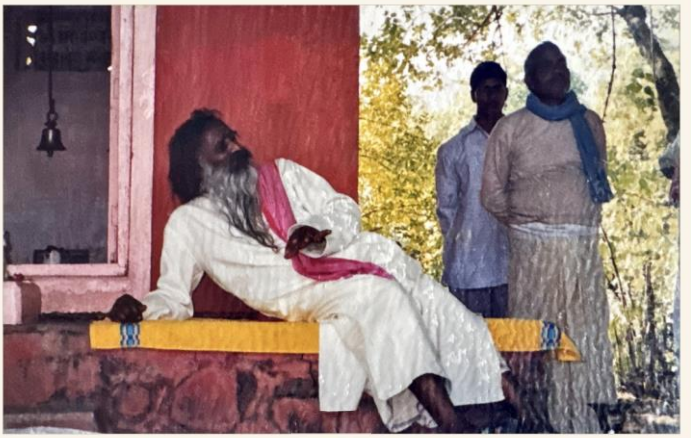

At a shrine nearby, where he told us to make our pranam and take the blessings.

और एक पहाड़ी थी। किसी ऊँचाई के शिखर पर एक चट्टानी स्थान जहाँ किसी संत ने तपस्या की थी, और हम सब उस पर चढ़े, और चट्टानों पर खड़े रहे। मैं उस छायाचित्र में हूँ, मध्य में, नीली चेक की कमीज़ में, किसी सैर पर निकले व्यक्ति-सा दिखता हुआ। जो मैं था भी।

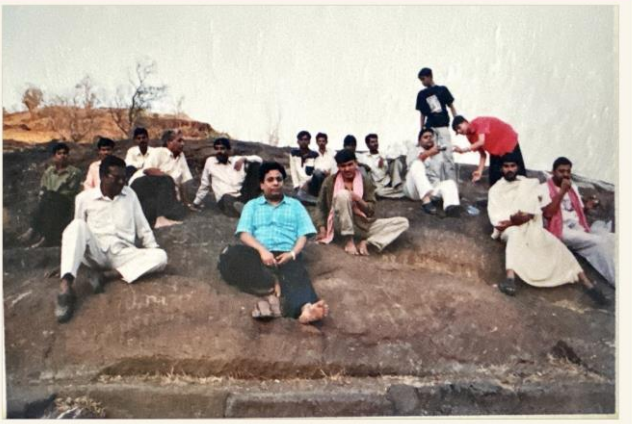

Visiting the place where a saint had done his tapasya; the author, centre.

इन दोनों स्थानों के विषय में मेरे पास कहने को बहुत कम है। मैं उन्हें इसलिए सम्मिलित करता हूँ क्योंकि वे घटे, और क्योंकि जो पुस्तक आपको चार दिनों के केवल प्रकाशमान अंश देती है, वह चुपचाप झूठ बोलना आरम्भ कर चुकी होती है।

◆

हम चले, और मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ कि लौटते मार्ग पर मैंने क्या अनुभव किया: रूपांतरित नहीं, परिवर्तित नहीं, एक कामकाजी व्यक्ति जो इतना बड़ा तथ्य ढो रहा था कि उसके परिणाम अभी हो ही नहीं सकते थे।

किन्तु अब जब मैंने आपको अंधकार के साथ दिन का प्रकाश भी दे दिया है, मैं उस विवरणी में एक बात जोड़ना चाहता हूँ।

मैंने कहा था कि मैं दो ऐसी वस्तुएँ लेकर लौटा जिनका मैं उपयोग न कर सका — जीप, और वे सब एक ही हैं — और यह कि दोनों मुझ तक उन प्रश्नों के उत्तर के रूप में आई थीं जो मैंने पूछे थे। अपनी यात्रा की सूची मैंने ऐसे ही बनाई: मैंने दो प्रश्न पूछे, मुझे दो अनुपयोगी उत्तर मिले, और मैं घर लौट आया।

वैसा हुआ नहीं था।

जो हुआ वह यह है कि चार दिन मैं एक प्रदर्शन के भीतर रहा और उसके केवल उन अंशों की सूची बनाई जिनके साथ प्रश्नवाचक चिह्न लगा हुआ था। वह भंडारा जो जो भी आए उसे खिलाता रहा, किसी के प्रत्यक्ष निर्देश के बिना। वह समाधि जो वहाँ खड़ी थी जहाँ दो दिन पूर्व केवल भूमि थी, क्योंकि एक व्यक्ति ने कहा था और किसी ने तर्क नहीं किया। एक वृद्ध पुरुष जो प्रकट प्रसन्नता से कुश्ती देखता है, एक मृत तपस्वी की समाधि पर ध्यान करता है, आगंतुकों के समूह से कहता है कि लाल देवस्थान पर सिर झुकाओ, जो खाता है और यात्रा करता है और कैमरे की ओर दृष्टि डालता है। और इन सबके मध्य, एक पगडंडी पर, संतरे सहित एक बंदर, और यह प्रश्न कि उसे उसका मन किसने दिया।

इनमें से कुछ भी उत्तर बनकर नहीं आया, क्योंकि इनमें से कुछ भी मेरे किसी पूछे हुए प्रश्न की प्रतिक्रिया बनकर नहीं आया। वह बस चार दिनों का चतुर्दिक मौसम था, और मैं मौसम के भीतर खड़ा होकर दो वार्तालापों पर टिप्पणियाँ लिख रहा था।

मेरा विचार है कि वे उन दो वार्तालापों के व्यवसाय में थे ही नहीं। मैं यह मानने लगा हूँ — और मैं इसे एक मान्यता के रूप में प्रस्तुत करता हूँ, किसी निष्कर्ष के रूप में नहीं — कि दिन शिक्षण थे और वार्तालाप रियायत। कि उन्होंने मेरे प्रश्नों का उत्तर उसी प्रकार दिया जैसे आप उस बालक को उत्तर देते हैं जो जानना चाहता है कि समुद्र खारा क्यों है, संक्षेप में और ठीक-ठीक और इस अपेक्षा के बिना कि उत्तर कोई कार्य करेगा; और इस बीच, चार दिनों तक, उन्होंने मुझे बस उस वस्तु के भीतर खड़ा रहने दिया और देखने दिया कि मैं क्या देख पाता हूँ।

मैंने बहुत कम देखा। मैं इस विषय में स्पष्ट रहना चाहता हूँ। मैंने एक सुव्यवस्थित भोज देखा, एक असामान्य रूप से तीव्र निर्माण, कुछ अच्छी कुश्ती, मौसम्बी, एक चतुर बंदर, और एक वृद्ध व्यक्ति जिसका साथ उससे कहीं सहज था जितनी मुझे अपेक्षा कराई गई थी।

इस अध्याय की शेष सब वस्तुएँ मैंने उसके बाद देखी हैं — एक छायाचित्र में, पच्चीस वर्ष आगे, जिसमें वे सीधे उस कैमरे के लेंस में देख रहे हैं जिसे एक ऐसा व्यक्ति थामे हुए था जो अभी एक भी बात नहीं समझा था।

अध्याय तेरह:

वापसी का मार्ग

हम जंगल से निकले, और मैं आपको ईमानदारी से बताना चाहता हूँ कि बाहर निकलते समय मैंने क्या अनुभव किया, क्योंकि वह वह न था जिसकी आध्यात्मिक पुस्तकों का कोई पाठक अपेक्षा करेगा, और मैंने जो अनुभव किया और ऐसा पाठक जिसकी अपेक्षा करता है, उन दोनों के बीच का अंतराल स्वयं इस अध्याय के योग्य है।

मैंने रूपांतरित अनुभव नहीं किया।

मैंने वे विवरण पढ़े हैं जिनमें कोई मनुष्य पर्वत से बदला हुआ, दीप्तिमान, नीचे उतरता है, उसका पुराना जीवन एक ऐसे कोट की भाँति झड़ गया जिसकी अब उसे आवश्यकता नहीं। मैं ऐसी किसी वस्तु से नीचे न उतरा। मैं एक कामकाजी व्यक्ति के रूप में नीचे उतरा जिसे एक वापसी-यात्रा करनी थी और जिसके दूसरे छोर पर एक जीवन प्रतीक्षा कर रहा था — वे एस.ए.पी. कार्यान्वयन, वे बैठकें, एक कार्यजीवन का समूचा तंत्र जो न जानता था और न परवाह करता था कि उसके संरक्षक ने चार रातें एक जंगल के फ़र्श पर अपने ही मन को रुकते देखते हुए बिताई थीं।

मैंने जो अनुभव किया वह उस अनुभूति के अधिक निकट था जो आपको किसी ऐसे चिकित्सा-परिणाम के बाद होती है जिसे आपने अभी आत्मसात नहीं किया। कुछ स्थापित हो गया था। मैं अभी नहीं जानता था कि वह मुझ पर क्या बाध्यता डालता है। जिस मनुष्य को बताया जाए कि किसी स्कैन में कुछ दिखा है, वह, पहले घंटों में, रूपांतरित अनुभव नहीं करता; वह सूचित अनुभव करता है, एक ऐसे ढंग से जिसे वह अभी पचा नहीं सकता, एक ऐसा तथ्य ढोते हुए जो इतना बड़ा है कि उसके अभी परिणाम नहीं हो सकते। वापसी के मार्ग पर मेरी यही दशा थी। मुझे सूचित किया गया था। किसकी, और किस प्रयोजन से, मैं नहीं कह सकता था।

◆

किन्तु उस कामकाजी साधारण व्यक्ति के नीचे जो वापसी-यात्रा पर सवार हुआ, कुछ खिसक गया था, और मैं उसे अब नाम दे सकता हूँ यद्यपि तब न दे सकता था। वह कोई विश्वास न था। मैं इस विषय में सटीक रहना चाहता हूँ, क्योंकि यही वह समूचा भेद है जिस पर यह पुस्तक बनी है। मैं किसी वस्तु पर विश्वास करने नहीं आया था। मैं ईश्वर या आत्मा या खाट पर बैठे उस वृद्ध व्यक्ति के स्वरूप के विषय में एक भी नई प्रतिज्ञप्ति पर हस्ताक्षर न कर सकता था। यदि आप मुझे शपथ दिलाकर पूछते कि अब मैं क्या सत्य मानता हूँ जो एक सप्ताह पूर्व न मानता था, तो मेरे पास आपको देने को कुछ न होता।

जो बदला था वह मेरे मन की अंतर्वस्तु न थी। वह मेरे मन से मेरा सम्बन्ध था।

तीस वर्षों तक मैं अपना सोचना रहा था। वह कोई वस्तु न थी जो मेरे पास थी; वह कोई वस्तु थी जो मैं था — वह भूमि जिस पर मैं खड़ा था, वह उपकरण और वह हाथ जो उसे थामे था, अभेद्य। और पहली रात दो अनमापे मिनटों के लिए, वह टूट गया था। सोचना रुक गया था और मैं नहीं रुका था। और आप उसे अनजाना नहीं कर सकते। आप उस पर संदेह कर सकते हैं, उस पर प्रश्न कर सकते हैं, सोच सकते हैं कि सम्भवतः वह केवल एक स्वप्न था — और मैंने वे सब बातें कीं, वर्षों तक। किन्तु आप उस पूर्ण तादात्म्य पर वापस नहीं लौट सकते जो आपके पास पहले था, उस निर्बाध निश्चय पर कि आप अपने सिर की वह वाणी हैं, एक बार जब आप, एक ही बार सही, तट पर खड़े होकर नदी को बाहर से देख लें।

यही वह था जिसे मैं जंगल से नीचे ढोकर लाया। कोई सिद्धांत नहीं। एक दरार। मेरी अपनी सर्वाधिक मौलिक मान्यता में एक अकेली बाल जितनी बारीक दरार — यह मान्यता कि मैं ही वह हूँ जो ये विचार सोच रहा है — और उस दरार के आर-पार, अगले पच्चीस वर्षों में, शेष सब कुछ अंततः आने वाला था।

मैं यह नहीं जानता था। वापसी के मार्ग पर मैंने प्रायः काम के विषय में सोचा।

◆

मैंने, उस यात्रा पर, एक प्रकार का लेखा-जोखा लिया। मैं यही करता हूँ। और मैं इसे पाठक के समक्ष ठीक वैसे ही रखना चाहता हूँ जैसे मैंने इसे अपने समक्ष रखा, क्योंकि यह एक ऐसे

ईमानदार संशयवादी की दशा दिखाता है जिसे उसका ढाँचा जितना थाम सकता है उससे अधिक दिया गया है।

मैं प्रश्न पूछने गया था। मैंने, अंततः, दो पूछे — एक ईश्वर की संतानों के विषय में पहलवानों के घर में, और एक मन के विषय में, जंगल की उस सुबह। किसी का भी ऐसे ढंग से उत्तर न दिया गया था जिसे मैं उपयोग कर सकूँ। एक का सामना एक जीप की कथा से किया गया था। दूसरे का चार शब्दों से जिन्होंने प्रश्न का ही इनकार कर दिया। जिस मापदंड के साथ मैं निकला था — अपने प्रश्नों के उत्तर पाओ — उससे, वह यात्रा एक विफलता के बहुत निकट थी।

और फिर भी।

हवाई अड्डे पर वह झुकाव था, इससे पहले कि वे बोले हों। प्रतीक्षालय के आर-पार वे दृष्टियाँ थीं, विशिष्ट, लक्षित, अव्याख्यायित। वह जीप थी, जिसे मैं समझ न सका और भुला न सका, जो मुझमें एक ऐसी किरच की भाँति धँसी थी जिसे मन बार-बार पाता रहता है। वे सब एक ही हैं था, जिसे मैंने टालमटोल के रूप में ग्रहण किया था और जो वहाँ बैठा रहने से रुकता न था, न उपयोग किए जाने और न त्यागे जाने से इनकार करता हुआ। और वे तीन रातें थीं — वह श्वेत प्रकाश और वह रुका हुआ मन, वह चिता और वह घोषणा जिस पर मैं विश्वास न करता था, पहाड़ी पर वे तीन आकृतियाँ जिन्हें मैं कभी स्थापित न कर पाऊँगा।

उनमें से कुछ भी उत्तर न था। वह सब आँकड़े थे। और वह बही — वह चलता हुआ अभिलेख जिसे मुझमें बैठे संशयवादी ने बिना यह स्वीकार किए रखा कि वह उसे रख रहा है — दो प्रविष्टियों से बढ़कर बहुत-सी हो गई थी, उनमें से हर एक पर अंकित कारण अज्ञात, मत त्यागो।

यही वह सच्ची दशा है जिसमें मैं घर गया। परिवर्तित नहीं। आश्वस्त नहीं। बस एक ऐसा व्यक्ति जिसके उपकरणों ने, चार दिनों में, इतने पाठ अंकित कर लिए थे जिनका उसका सिद्धांत हिसाब न दे सकता था, और जो इतना अच्छा अभियंता था कि उन पाठों को इसलिए फेंक न दे क्योंकि वे असुविधाजनक थे — और इतना ईमानदार कि यह ढोंग न करे कि वे किसी ऐसी वस्तु का योग बनाते हैं जिसका वे अभी योग नहीं बनाते थे।

मैंने सोचा, उस ढंग से जैसे कोई मनुष्य तब सोचता है जब वह किसी अनुभव को फ़ाइल करके आगे बढ़ना चाहता है, कि वे कुछ असाधारण दिन रहे, और कि मैं उन्हें स्मरण रखूँगा, और कि जीवन अब पुनः आरम्भ होगा।

सात दिन बाद, मेरी इमारत के बाहर कारों का एक क़ाफ़िला रुका।

अध्याय चौदह:

चौथी मंज़िल पर चाय

जंगल से लौटने के सात दिन बाद, मेरी इमारत के बाहर कारों का एक क़ाफ़िला रुका, और मेरा निजी, अनात्मसात, अब भी न पचा हुआ अनुभव, बिना किसी चेतावनी के, मेरे अपने ही घर में एक सार्वजनिक आयोजन बन गया।

◆

मैंने उन्हें शीघ्र फिर देखने की अपेक्षा न की थी। मैं जंगल गया था, मैंने अपने चार दिन बिताए थे, मैं लौट आया था — मेरी समझ में यही उस वस्तु का आकार था। कोई मनुष्य एक तीर्थयात्रा करता है; तीर्थयात्रा समाप्त होती है; वह लौट आता है। मैंने उसे इसी प्रकार फ़ाइल कर लिया था।

कारों का एक क़ाफ़िला था। मैंने अपनी कार रोकी और उनके पास गया। और उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहता हूँ।

मैंने कहा बहुत पास ही — यहाँ से दस मिनट।

और उन्होंने कहा: चलो, तुम्हारे यहाँ चाय पीते हैं।

◆

मैं यह बताना चाहता हूँ कि उन सात शब्दों ने मेरी स्थिति के एक व्यक्ति के साथ क्या किया, क्योंकि जो पाठक इस संस्कृति को नहीं जानता वह इसका आकार अनुभव नहीं करेगा।

उस संसार में मैं कोई न था। मैं एक सप्ताह पुराना नवागंतुक था, एक गृहस्थ, एक अभियंता जिसने अटपटाहट में एक बार उनके चरण दबाए थे और उनसे दो प्रश्न पूछे थे जिनका उन्होंने वास्तव में उत्तर न दिया था। उनके चारों ओर वे साधु घूमते थे जिन्होंने अपना जीवन दे दिया था, दशकों के शिष्य, और — जिसे मैं बाद में जानने वाला था कि कितना शब्दशः — उस प्रकार के लोग जिनकी भेंटें राज्य द्वारा अंकित की जाती हैं। और यह व्यक्ति, अपने पीछे कारों

के एक क़ाफ़िले और अपने आगे आश्रमों की एक सूची के साथ, एक ऐसे व्यक्ति के छोटे फ़्लैट में आकर चाय पीने का प्रस्ताव रख रहा था जिसे वे एक सप्ताह से जानते थे।

और फिर वह कोई प्रस्ताव न रहा। क्योंकि जिस क्षण उन्होंने वह कहा, समूचा तंत्र चलने लगा — वे कारें, वे साधु, वह साथ आई भीड़, वह सब, एक शरीर की भाँति मुड़ते हुए, मेरे घर की ओर। एक संत अकेला यात्रा नहीं करता, और जब वह कहीं जाने का निश्चय करता है, तो बहुत-से लोग अचानक वहाँ जाने लगते हैं।

◆

मेरा फ़्लैट चौथी मंज़िल पर था। कोई लिफ़्ट न थी।

मुझे आपको उन सीढ़ियों के विषय में बताना होगा, क्योंकि उनके आने पर पहली बात यही हुई और यह आपको उनके विषय में कुछ ऐसा बताती है जो सौ पृष्ठों का वर्णन न बता सकता।

"मार डाला रे।"

तुमने मुझे मार डाला।

मैंने वह छोटा-सा परिहास पच्चीस वर्षों तक ढोया है और वह मेरी सबसे प्रिय सम्पत्तियों में से एक है, और मैंने बहुत सोचा है कि क्यों। इसलिए कि वह इतना मानवीय है। यहाँ श्वेत प्रकाश वाला व्यक्ति था, वह व्यक्ति जिसके समक्ष पुलिस झुकी थी, वह व्यक्ति जिसे मेरे अपने स्वप्न में किसी वस्तु ने ईश्वर कहा था — और वे मेरे फ़्लैट तक चार मंज़िल चढ़े और ऊपर पहुँचे और इस बात पर परिहास किया कि सीढ़ियों ने उन्हें कैसे ख़त्म कर दिया। उसमें कोई दूरी न थी। संतत्व का कोई प्रदर्शन नहीं। बस एक वृद्ध व्यक्ति, हाँफता हुआ, उस युवा मेज़बान को छेड़ता हुआ जिसका घर असुविधाजनक रूप से ऊँचा था, उस सहजता के साथ जो किसी ऐसे व्यक्ति की होती है जो अपनी ही त्वचा में पूर्णतः घर जैसा है और संत होने से पूर्णतः निश्चिंत। मुझे लगता है कि मैं उसी क्षण से उन्हें थोड़ा प्रेम करने लगा, यद्यपि मैं वह शब्द उपयोग न करता। आप उस महान व्यक्ति से प्रेम किए बिना नहीं रह सकते जो आपकी सीढ़ियों के शिखर पर पहुँचता है और कहता है, तुमने मुझे मार डाला।



Swamiji at the author's fourth-floor flat in Thane; Jagdish Dubey at left, with the steel lota.

◆

और उस एक घंटे में, दो वस्तुएँ हुईं जिन्हें मैं कभी नहीं भूला, और वे एक-दूसरे से इससे अधिक भिन्न नहीं हो सकतीं, और वे दोनों ही वे हैं।

पहली यह थी कि उन्होंने मेरे फ़्लैट के चारों ओर देखा और जो देखा उसे नाम दिया।

तब तक मैं, जिस संसार में मैं विचरता था उसके मापदंडों से, अच्छा कर चुका था। एक कम्प्यूटर था। फ़र्नीचर का एक अच्छा सेट था। एक सोनी वेगा टेलीविज़न था — उस समय कुछ गर्व की वस्तु — और एक वी.सी.आर., और एक ऐसे व्यक्ति का सामान्य साज-सज्जा जिसके कार्यजीवन ने उसे एक बगीचे और एक नगरपालिका के खंभे से बहुत दूर उठा लिया था। वह, अपने समय के लिए, एक सुखद आधुनिक घर था।

उन्होंने उसे देखा, और उन्होंने कहा: "पांडेय बहुत भोग भोग रहा है।"

◆

मैं उस पर ठहरना चाहता हूँ, क्योंकि एक कमतर गुरु दो कमतर वस्तुओं में से एक करता, और उन्होंने दोनों में से एक भी न किया।

एक कमतर गुरु, कठोर प्रकार का, उसे एक भर्त्सना बना देता — मेरे सोनी वेगा को आसक्ति पर, वस्तुओं की व्यर्थता पर, गृहस्थ के भोग में, आनंद में, बाँधने वाले सुखों में उलझाव पर

एक उपदेश का पाठ बना देता। मैंने ऐसे उपदेश सुने हैं। उन्हें देना सरल है और वे किसी को नहीं बदलते, क्योंकि जिस व्यक्ति को उपदेश दिया जा रहा है वह बस अपने को आँका हुआ अनुभव करता है और भीतर ही भीतर अपना बचाव करता है और अपना टेलीविज़न रखे रहता है।

एक कमतर गुरु कोमल प्रकार का कुछ भी न कहता — वह चाय ले लेता और घर की प्रशंसा करता और सुखी व्यक्ति को सुखी छोड़ देता, जो अपने में एक विफलता है।

स्वामी जी ने दोनों में से एक भी न किया। उन्होंने उसे नाम दिया — स्पष्ट रूप से, सटीकता से, एक प्रकार के स्नेहपूर्ण विनोद के साथ, पांडेय बहुत भोग भोग रहा है — ताकि मैं यह ढोंग न कर सकूँ कि उन्होंने ठीक-ठीक न देखा हो कि मैं क्या हूँ और मैं कैसे जी रहा हूँ। और फिर, उसे नाम देकर, उन्होंने कुछ ऐसा किया जिसकी मैं वर्षों तक पूरी तरह सराहना न कर सका।

उन्होंने उसे काम पर लगा दिया।

◆

उन्होंने पूछा कि क्या अनुपमा, उसी वी.सी.आर. पर, प्राकृतिक संसार के तथ्य रिकॉर्ड कर सकती हैं। पशुओं के जीवन, उनके सच्चे विवरण — किन्तु, उन्होंने निर्दिष्ट किया, मैथुन के बिना, यौन रूप से स्पष्ट अंशों के बिना, पशुओं के युग्मन के बिना; प्राकृतिक संसार स्वच्छता से, तथ्यपूर्वक देखा गया, तमाशे के बजाय चिंतन के रूप में। और यह कि मैं ये रिकॉर्डिंग उन्हें, आश्रम में, भेजूँ।

क्या आप देखते हैं कि उन्होंने क्या किया? मैंने तब नहीं देखा। मैं अब देखता हूँ।

उन्होंने मुझे वी.सी.आर. त्यागने को नहीं कहा। उन्होंने मुझे नहीं कहा कि वह सुख ग़लत था। उन्होंने मेरे भोग के उसी उपकरण को — उस मशीन को जो मेरे सुखद आधुनिक घर के केंद्र में बैठी थी, पांडेय के ख़ूब भोग भोगने का प्रतीक — लिया, और उसे, एक ही वाक्य में, सेवा के एक उपकरण में बदल दिया। सेवा में। सृष्टि पर ध्यान में। वह टेलीविज़न जो शुद्ध आनंद था, उनके पुनर्निर्देशन से, संसार को स्वच्छता से देखने का और जो आप देखते हैं उसे अपने गुरु को अर्पित करने का साधन बन गया।

उन्होंने मुझसे मेरा सुख छीना नहीं। उन्होंने उसे एक दिशा दी। यह रूपांतरण की एक पूर्णतः भिन्न प्रौद्योगिकी है, और यह उस त्याग से कहीं अधिक विरल और कहीं अधिक बुद्धिमानीपूर्ण है जिसे यह इतनी बार समझ लिया जाता है। उन्होंने मेरे पास जो कुछ था, वह सब छोड़ दिया, और यह बदल दिया कि वह किसलिए था।

◆

और फिर दूसरी वस्तु हुई, और वह पूर्णतः भिन्न कोटि की थी, और यह इस पुस्तक में अब तक मेरे द्वारा वर्णित सबसे विचित्र घंटा है।

उन्होंने मुझसे अपनी पत्नी को बुलाने को कहा।

मैंने उन्हें उसी नाम से बुलाया जिससे मैं बुलाता हूँ। अनु।

और जब उन्होंने वह सुना, तो उनमें कुछ उसकी ओर मुड़ा। उन्होंने कहा कि उनकी माता का नाम अनूप कुँवर था — और कि उन्हें भी, अनु कहा जाता था।

(पाठक का हक़ है कि यह टिप्पणी दी जाए: स्वामी जी के आरम्भिक जीवन का जो कुछ मैं जानने आया — वे कष्ट जो उन्होंने सहे कहे जाते हैं, वे परिस्थितियाँ जिनमें उन्होंने अपना घर छोड़ा — मैंने बाद में जाना, अन्य स्रोतों से, और मैं इस पुस्तक के एक बाद के भाग में उसे उचित सावधानी और उचित एहतियात के साथ बरतूँगा, यह भेद करते हुए कि क्या प्रलेखित है और क्या कहा गया है। यहाँ मैं केवल इतना अंकित करता हूँ कि उस दोपहर, मेरे फ़्लैट में, मेरी पत्नी का नाम सुनकर, वे अपनी माता, अनूप कुँवर की बात करने लगे, जिन्हें वे अनु कहते थे — और कि जो वहाँ उपस्थित थे वे समझ गए कि वे कुछ ऐसा सुन रहे हैं जो वे सामान्यतः नहीं कहते।)

मैं नहीं समझा कि क्यों। मैं पूर्णतः ईमानदार रहना चाहता हूँ: मैं इसे बिल्कुल नहीं समझा, और मैंने इसे कभी पूर्णतः नहीं समझा, और मैं अब इसका ढोंग नहीं करूँगा। एक व्यक्ति एक नाम सुनता है, और वह उसकी मृत माता का नाम है, और उसमें कुछ खुल जाता है, और वह एक अजनबी के फ़्लैट में लोगों के एक कमरे के समक्ष उसकी बात करने लगता है जिनसे वह सामान्यतः ऐसी बातें नहीं करता। वह क्या था? पहचान? संयोग? एक बहुत वृद्ध व्यक्ति, एक थकाने वाले दिन के अंत में, एक नाम से द्रवित होकर अपनी माता को स्मरण करता हुआ?

मैं नहीं जानता। मेरे पास अपने विचार हैं, और मैंने उन्हें पच्चीस वर्षों तक थामा है, और मैं उन्हें आपको निष्कर्षों के रूप में नहीं सौंपूँगा, क्योंकि वे निष्कर्ष नहीं हैं। वे एक पति के, उस सबसे विचित्र घंटे के विषय में विस्मय हैं जो उसके विवाह में कभी समाया।

◆

जब वे जा रहे थे, अनुपमा उनके आशीर्वाद के लिए झुकीं।

वे एक छड़ी रखते थे — सदा रखते थे, एक ऐसा दंड जो हर जगह उनके साथ जाता था। और जैसे ही वे झुकीं, उन्होंने वह छड़ी उनकी पीठ से छुआई, और अपनी आँखें मूँद लीं।

बस इतना ही हुआ। मैं इसे ठीक उसी सपाटपन के साथ प्रस्तुत करना चाहता हूँ, क्योंकि उस द्वार में, देखे जाने योग्य रूप में, ठीक इतना ही हुआ: एक स्त्री झुकी, एक वृद्ध व्यक्ति ने एक छड़ी उसकी पीठ से छुआई और एक क्षण के लिए अपनी आँखें मूँद लीं, और फिर कारों के क़ाफ़िले ने स्वयं को एकत्र किया और वे डोंबिवली, या बदलापुर, या जहाँ भी वह दिन उन्हें आगे ले जा रहा था, की ओर बढ़ गए, और वह घंटा समाप्त हो गया।

एक महीने बाद, हमें पता चला कि अनुपमा गर्भवती हैं।

◆

मैं अध्याय को वहीं, उस वाक्य पर, रोक दूँगा, और मैं उसमें कुछ नहीं जोड़ूँगा, क्योंकि इस पुस्तक का समूचा अनुशासन यही है कि मैं उसमें कुछ न जोड़ूँ।

मैं आपको नहीं बताऊँगा कि यह उस छड़ी ने किया। मैं नहीं जानता कि यह उस छड़ी ने किया। मैं उस स्पर्श से उस संतान तक रेखा नहीं खींचूँगा, क्योंकि उसे खींचना एक ऐसी वस्तु का दावा करना होगा जिसे मैं सिद्ध नहीं कर सकता और उस पाठक की बुद्धि का अपमान करना होगा जो भली-भाँति देख सकता है कि पृष्ठ पर अगल-बगल क्या बैठा है: एक संत, एक छड़ी, मुँदी हुई आँखें, और एक महीने बाद, एक गर्भ। आप उसका जो अर्थ निकालें निकालें। मैंने पच्चीस वर्ष उसका कुछ अर्थ निकालते हुए बिताए हैं और मैं अभी समाप्त नहीं हुआ।

किन्तु मैं आपको वह एक बात बताऊँगा जो मुझे इसके विषय में ईमानदार रखती है, और वह इस अध्याय का सबसे महत्वपूर्ण वाक्य है, और वह मुझसे नहीं आता।

वह उस स्त्री से आता है जिसकी पीठ को उस छड़ी ने छुआ।

अनुपमा, आज तक, कहती हैं कि कुछ नहीं हुआ।

वे वहाँ थीं। वे ही झुकी थीं। वे ही छुई गई थीं। और उनका विवरण — स्थिर, पच्चीस वर्षों में अपरिवर्तित, तनिक भी संदेह के बिना दिया गया — यह है कि एक वृद्ध व्यक्ति चाय के लिए आया और सीढ़ियाँ चढ़ा और एक परिहास किया और अपनी माता की स्नेहपूर्वक बात की और जाते समय अपनी छड़ी उनकी पीठ से छुआई, और कि उन्हें वैसे भी संतान होने ही वाली थी, और कि ये तथ्य समय में एक-दूसरे के निकट बैठे हैं और उससे कोई अर्थ नहीं रखते।

मैं उन्हें इससे कभी हिला न सका। मैंने वास्तव में कभी प्रयास न किया। क्योंकि मैं, अंततः, समझ गया कि उनका विवरण और मेरा ही समूची पुस्तक है — कि उन्होंने और मैंने ठीक उसी घंटे को देखा, वही छड़ी, वही मुँदी हुई आँखें, वही महीना जो उसके बाद आया, और कि मैंने एक सम्बोधन देखा और उन्होंने एक संयोग देखा, और कि हम दोनों में से कोई दूसरे को ग़लत सिद्ध नहीं कर सकता, और कि हम, सुखपूर्वक और सच्चाई से, एक चौथाई शताब्दी तक उस एक दोपहर के दो विपरीत छोरों पर जिए हैं।

मैं इस अध्याय का अंतिम शब्द उन्हें ही लेने दूँगा, क्योंकि मेरे घर में वे सदा लेती हैं, और क्योंकि सत्य पर लिखी एक पुस्तक को ईमानदार अविश्वासी को ठीक वहीं बोलने देना चाहिए जहाँ विश्वासी उसे सबसे अधिक रोके रखना चाहता है।

कुछ नहीं हुआ।

मेरी पत्नी यही कहती हैं।

मैं भी वहाँ था, और मुझे उतना निश्चय नहीं।

◆

वे चार वर्ष बाद पुनः आए, और इस बार लिफ़्ट थी।

किन्तु वह भेंट मेरे माँगने से पहले आरम्भ हो चुकी थी, और मुझे वहीं से आरम्भ करना चाहिए।

वे कल्याण आश्रम में थे। मैंने जगदीश भाई को दूरभाष किया कि क्या मैं आकर उन्हें अपने यहाँ ले आऊँ।

और जगदीश ने कहा: स्वामीजी चाहते हैं कि तुम आओ।

मैं इसे अंकित कर छोड़ देता हूँ, जैसा मैंने ऐसी वस्तुओं को छोड़ना सीखा है। एक साधारण व्याख्या उपलब्ध है और मैं उसे पहले देता हूँ: एक संत ने कह दिया था कि वे किसी शिष्य के नए घर जाएँगे, और उस शिष्य के मित्र ने, यह जानते हुए, उसे बता दिया। यह पूर्णतः पर्याप्त है। मैं केवल इतना अंकित करता हूँ कि मैंने पूछने के लिए दूरभाष किया, और मुझे बताया गया कि मेरी प्रतीक्षा हो रही थी।

और कल्याण से चलने से पूर्व उन्होंने कहा:

"चलो, तुम आगे घर चलते हैं — ख़ूब अच्छा खिलाना-पिलाना, अच्छी जगह है।"

उन्होंने उसे देखा नहीं था।

मैं इसका कुछ नहीं बनाने जा रहा। वे एक वृद्ध व्यक्ति थे जो किसी शिष्य के नए फ़्लैट के विषय में स्नेह दिखा रहे थे, और वृद्ध स्नेही व्यक्ति इसीलिए होते हैं; और उनका अभिप्राय इससे अधिक कुछ न रहा हो — कि जिसने उन्नति की हो वह उदारता से खिलाए, और जिस घर में प्रेम हो वह अच्छी जगह है। यह सब उपलब्ध है और मैं पाठक को सौंपता हूँ।

मैं केवल दो बातें सादे ढंग से लक्षित करता हूँ। कि उन्होंने मुझसे लोगों को खिलाने को कहा, इससे पूर्व कि हममें से कोई जानता हो कि कितने आएँगे। और यह कि संध्या तक मेरा समूचा भवन मेरे फ़्लैट में था।

अब लिफ़्ट।

2004 तक हम स्थानांतरित हो चुके थे। नया फ़्लैट हीरानंदानी मेडोज़ में था, पाँचवीं मंज़िल पर, और भवन में लिफ़्ट थी — और मैं अंकित करना चाहता हूँ कि मेरे लिए इसका क्या

अर्थ था, क्योंकि वह वैसा नहीं जैसी पाठक अपेक्षा करे, और वह मेरे लिए प्रशंसनीय भी नहीं।

उसका अर्थ था कि मैंने उन्नति कर ली थी।

बस इतना ही। बिना लिफ़्ट की चौथी मंज़िल और लिफ़्ट सहित पाँचवीं मंज़िल के बीच वह सब कुछ पड़ा है जो चार वर्षों में एक मनुष्य के कार्य-जीवन में घटता है — पदोन्नतियाँ, यात्राएँ, वह संचित दक्षता जो धन बनती है और फिर एक पता बन जाती है। मैं चढ़ चुका था, उस अर्थ में जिस अर्थ में संसार चढ़ना कहता है। और जब मैं उस लॉबी में खड़ा होकर अपने सद्गुरु को लिफ़्ट की ओर बढ़ते देख रहा था, ऊपर द्वार पर गेंदे की माला लटकी थी और छायाचित्र मैं ही ले रहा था जैसे सदा लेता था — तब मैंने वही अनुभव किया जो एक मनुष्य तब करता है जब वह किसी पूज्य को अपने उस घर में लाता है जिस पर उसे गर्व है।

मैंने उसके बाद उस अनुभूति पर विचार किया है, और मैं यह ढोंग नहीं करूँगा कि वह निर्मल थी।

मैं नीचे कार तक गया। वे लाठी लेकर उतरे, और मैं कार के द्वार पर ही उनके चरणों में झुक गया, और किसी ने उसका भी छायाचित्र ले लिया — और उस छायाचित्र में मैं झुका हुआ हूँ और वे मुझसे परे कहीं देख रहे हैं, अविचल, ठीक वैसे ही जैसे 1999 में एक विमानतल पर थे, जब एक संशयवादी ने बिना निश्चय किए, प्रतीक्षालय के पार से, उन्हें प्रणाम कर दिया था।

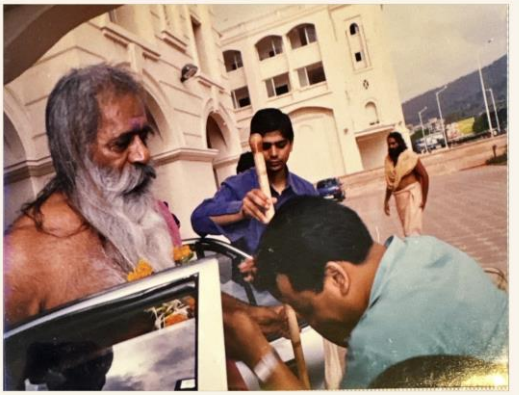

The author greeting Swamiji as he comes down from the car.

उनमें कुछ भी नहीं बदला था। मेरी परिस्थितियों में सब कुछ बदल चुका था।

फिर भवन आ गया।

परिवार नहीं। भवन — पड़ोसी, उनके बच्चे, वे लोग जिन्हें मैं लिफ़्ट में सिर हिलाकर जानता था और जिनसे कभी ठीक से बात न की थी — फ़्लैट और सीढ़ी-द्वार को भरते हुए। अनुपमा थीं, और जगदीश, और आश्रम से दस या उससे अधिक लोग — और उनमें श्री नारद महाराज जी, वही तेरह वर्ष का बालक जो इस परम्परा के चरणों में आया था और उसी में वृद्ध हुआ, सत्तर से अधिक वर्ष बाद ठाणे के एक फ़्लैट में खड़ा। वे उसी घर में 2007 में अकेले भी आए, जब वे ठाणे के शिष्यों से मिलने निकले थे।

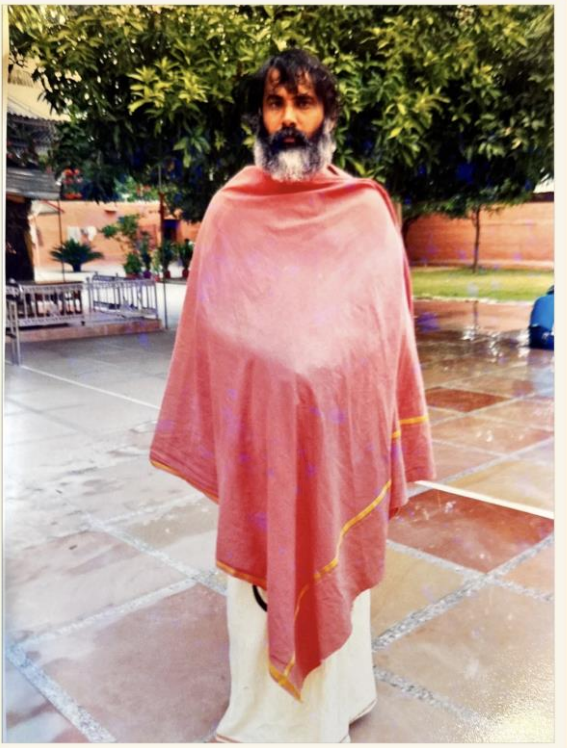

Shri Narad Maharaj Ji, 2000.

मनोज प्रधान और उनकी पत्नी साधना प्रधान ने उनके ललाट पर तिलक लगाया — एक पड़ोसी, अंगूठे पर चंदन लिए, वही करते हुए जो एक गृहस्थ तब करता है जब कोई संत पाँचवीं मंज़िल पर आ जाए।

और उस भरे हुए फ़्लैट में दो माताओं ने उनसे कुछ माँगा, और उन्होंने जो-जो कहा वह बीस वर्षों से मेरे साथ है।

पहली अनीता और राखी खंडेलवाल की माताजी थीं। वे दोनों बहनें हैं और विद्यालय में मेरी मित्र रहीं। उस परिवार का मुझ पर एक विशेष ऋण है और यही उसे कहने का स्थान है। अभियांत्रिकी के वर्षों बाद, जब मैं एम.बी.ए. के अतिरिक्त प्रश्नपत्र दे रहा था, घर की एक खिड़की में मेरी तर्जनी बुरी तरह टूटकर टेढ़ी हो गई। संस्थान ने मुझे लेखक रखने की अनुमति दी। राखी ने बैठकर वे प्रश्नपत्र लिखे — मैं बोलता गया और वे लिखती गईं, और वे उन्हीं के हाथ की लिखावट में जमा हुए।

और वर्षों बाद, मेरे फ़्लैट में, उन्हीं की माताजी थीं। वे तब तक वृद्ध हो चुकी थीं, और उन्होंने जो माँगा वह न स्वास्थ्य था, न धन, न अपने बच्चों के लिए कुछ। उन्होंने अच्छी मृत्यु माँगी। मेरी मौत ठीक जाए।

और उन्होंने कहा:

"मौत ही तो ठीक जाती है इस संसार में।"

मुझे इसके साथ ठहरना होगा, क्योंकि यह उनकी कही सबसे कठिन बातों में से एक है, और मुझे नहीं लगता कि उनके मुख में यह तनिक भी कठिन थी।

उन्होंने, जीवन में समाई समस्त वस्तुओं में से, वह एक वस्तु माँगी थी जिसे वे ठीक से सम्पन्न होते देखना चाहती थीं। और उन्होंने उन्हें बता दिया कि उन्होंने अकेले उसी को चुना है जो ठीक होती है। इस संसार में शेष सब कुछ उस मार्ग से भिन्न किसी मार्ग से जाता है जिससे जाना था — योजनाएँ, विवाह, वृत्तियाँ, घर, पाँचवीं मंज़िलें। हम अपना समूचा जीवन उन प्रबंधों पर लगाते हैं जो टेढ़े होकर पहुँचते हैं। केवल मृत्यु ठीक वैसी ही आती है जैसी रची गई थी: समय पर, पूर्ण, सबके लिए, बिना अपवाद और बिना त्रुटि। वह ब्रह्मांड की अकेली भेंट है जिसका प्रबंध कभी नहीं बिगड़ता।

इसमें साधारण अर्थ में कोई सांत्वना नहीं, और कोई भय भी नहीं। उन्होंने उन्हें शांत अंत का वचन नहीं दिया। उन्होंने एक ऐसी स्त्री से, जो अकेली विश्वसनीय वस्तु से डरी हुई थी, इतना ही कहा कि वही अकेली विश्वसनीय वस्तु है।

मैं नहीं जानता उन्होंने इसे कैसे लिया। मैं इतना जानता हूँ कि एक क्षण के लिए उस कक्ष में किसी ने कुछ नहीं कहा।

दूसरी माता ने कहीं छोटी और कहीं अधिक परिचित वस्तु चाही। वे चाहती थीं कि उनका पुत्र परीक्षा में अच्छा करे। प्रथम आए।

और वे हँस पड़े, और बोले:

"सबके बच्चे फ़र्स्ट आ जाएँ।"

इससे भी मैं कभी आगे नहीं बढ़ पाया, और यह मुझे हर बार मुस्कुरा देता है।

क्योंकि देखिए उन्होंने क्या करने से मना कर दिया। जो आशीर्वाद किसी एक बालक को सूची में सबसे ऊपर रखता है, वह किसी दूसरी माता के पुत्र से निकालकर दिया गया आशीर्वाद है — और उस कक्ष की प्रत्येक माता का एक पुत्र था, और उनसे, उन सबके सामने, चुनने को कहा जा रहा था। उन्होंने चुना नहीं। वे हँसे और संसार के समस्त बालकों को आशीर्वाद दे दिया — जो या तो उस याचना का पूर्ण अस्वीकार है या उसकी सबसे बड़ी सम्भव स्वीकृति। मैं कभी तय नहीं कर पाया कि कौन-सी। मुझे संदेह है कि वह दोनों थी, और वह हँसी ही वह स्थान थी जहाँ दोनों मिलती थीं।

वे उस दिन प्रसन्न थे। मैं इसे सादे ढंग से अंकित करना चाहता हूँ, क्योंकि यह उस भेंट का सबसे सरल तथ्य है और वही जिसे पाकर मैं सबसे प्रसन्न हूँ। वे मेरे घर में प्रसन्न थे, मेरे पड़ोसियों के बीच, उसी गलियारे के एक व्यक्ति से तिलक लगवाते हुए।

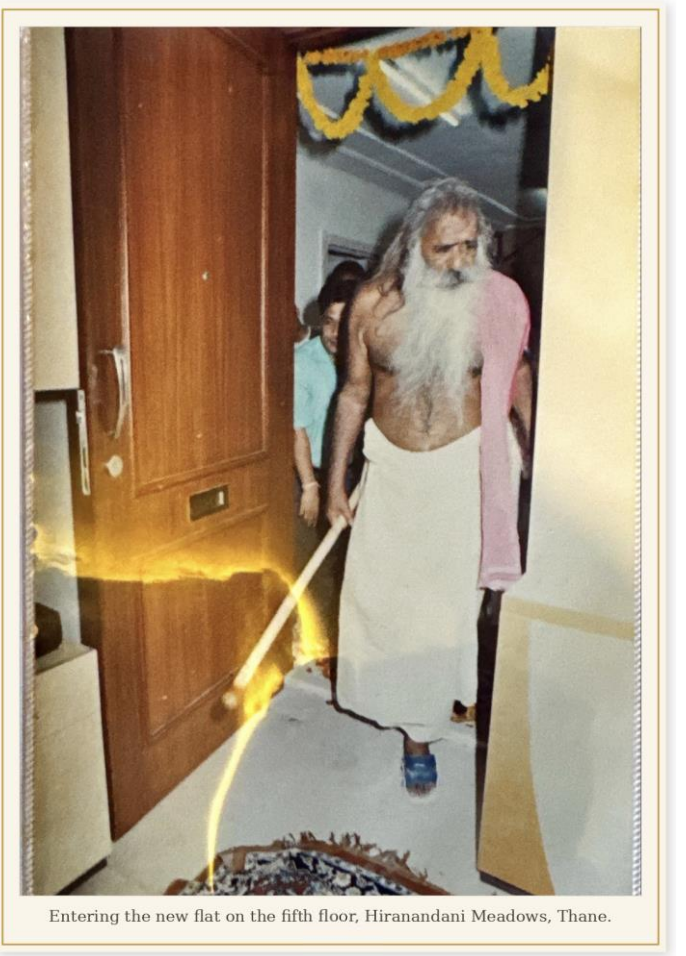

Entering the new flat on the fifth floor, Hiranandani Meadows, Thane.

और अब वह बात जो मैं उस समय लिख न सकता था और अब लिख सकता हूँ।

वे बिना लिफ़्ट के भवन की चार मंज़िलें चढ़कर एक छोटे फ़्लैट में बैठे और एक ऐसे परिवार के साथ चाय पी जिसके पास लगभग कुछ न था, और उन्होंने उस पर विनोद किया — मर डाला रे — और वह विनोद मेरी सबसे प्रिय सम्पत्तियों में से एक है। और जब उसी परिवार के पास लिफ़्ट थी, और बेहतर पता, और द्वार पर गेंदे की मालाएँ, तो वे उसमें भी आए, और लॉबी पार की, और लिफ़्ट में चढ़े — और वह ठीक वही भेंट थी।

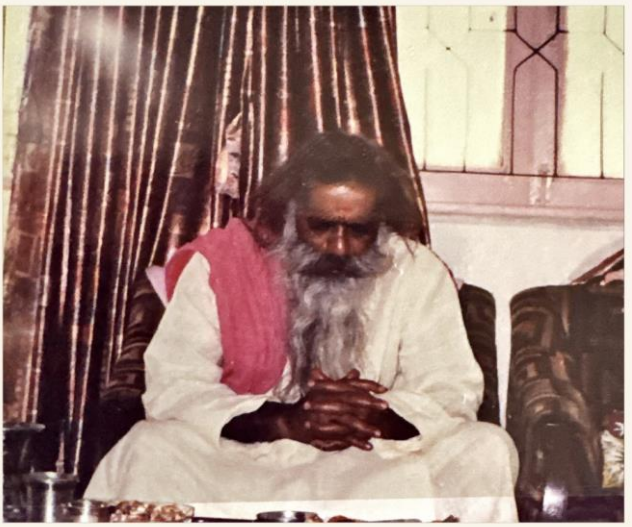

Thane, the fourth floor.

वे चौथी मंज़िल पर इसलिए नहीं आए थे कि हम निर्धन थे। वे पाँचवीं मंज़िल पर इसलिए नहीं आए कि हमने उन्नति कर ली थी। वे दोनों बार इसलिए आए क्योंकि उन्हें बुलाया गया था — और उन्होंने अपने जीवन में कभी किसी घर को नापा ही नहीं।

नापने वाला मैं था। मैं समूचे मार्ग नापता ही रहा हूँ: काले अंगूर और सफ़ेद, बुटीक और प्लाज़ा, वह आश्रम जो मैंने बनवाया और जिसके विषय में मुझे सुनना पड़ा कि सत्य और ईंटों के ढेर के बीच कोई सम्बन्ध नहीं। उन दोनों भवनों में वे अकेले व्यक्ति थे जिन्होंने उनके बीच का अंतर लक्षित ही नहीं किया।

◆

अध्याय पंद्रह:

मेरे हाथों में वह बालक

गर्भावस्था के कुछ महीने बीतने पर — लगभग सातवें महीने के आसपास — मैंने एक स्वप्न देखा, और यह वाला मैंने अपनी पत्नी को उसी सुबह बता दिया जिस सुबह मैं उससे जागा, और वह तथ्य, जैसा निकलता है, उस स्वप्न से अधिक महत्वपूर्ण है।

◆

मैं अब तक समझा चुका हूँ कि मैं अपने स्वप्नों को कैसे थामता हूँ, और घर उन्हें कैसे थामता है। अनुपमा संतों में विश्वास नहीं करतीं और ईश्वर में विश्वास नहीं करतीं और उन्होंने एक बार भी इसका ढोंग नहीं किया। और फिर भी, हमारे विवाह के वर्षों में, वे यह जान गई थीं — किसी विश्वास के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे तथ्य के रूप में जिसे उन्होंने उसी ढंग से देखा था जैसे कोई मौसम को देखता है — कि मेरे स्वप्न साधारण स्वप्न न थे। कि उनमें से कुछ संदेशों की भाँति आते थे। कि जब मैं जागकर उन्हें कोई स्वप्न एक विशेष ढंग से बताता, तो वह स्मरण रखने योग्य होता, क्योंकि पर्याप्त बार वह किसी वस्तु के विषय में निकलता।

वे इसे उस भाषा में न रखतीं जिसमें मैं रख रहा हूँ। वे इसे अधिक सादगी से और अधिक रूखेपन से कहतीं। किन्तु वे जानती थीं। किसी व्यक्ति से पर्याप्त लंबे समय तक विवाहित स्त्री जानती है कि उसके निद्रा-विवरणों में से किसे फ़ाइल करना है और किसे जाने देना है, और उन्होंने सीख लिया था कि मेरे सब जाने नहीं दिए जा सकते।

अतः जब मैं जागा, उस सातवें महीने में, और उन्हें यह वाला बताया, तो उन्होंने उस ढंग से सुना जिस ढंग से सुनना उन्होंने सीखा था।

◆

स्वप्न में, संतान का जन्म हुआ।

और किसी ने — मैं समझा कि वह एक नर्स है — उसे मेरे हाथों में रखा।

एक बालक। मैंने उसे अपने ही दो हाथों में थामा, अभी-अभी आया हुआ, और मैंने उसे देखा। और वह — मैंने कई बार वह शब्द ढूँढ़ने का प्रयास किया है, और उज्ज्वल सबसे निकट है जहाँ तक मैं पहुँच सकता हूँ, यद्यपि वह पर्याप्त नहीं समेटता। वह दीप्तिमान था। एक अत्यंत सुंदर, अत्यंत उज्ज्वल शिशु, उस ढंग से प्रकाशमान जिसका साधारण सौंदर्य से कोई सम्बन्ध नहीं, मेरे हाथों और मेरे समूचे ध्यान को भरता हुआ। मैंने उसे देखा और मैं रोमांचित था — एक सादे, अजटिल आनंद से भर गया, अपने पुत्र को थामे एक पिता का आनंद, जागती हुई अवस्था का शब्द "रोमांचित" जितना समेट सकता है उससे कहीं आगे बढ़ा हुआ।

वही वह स्वप्न था। एक नर्स, मेरे अपने हाथ, उनमें रखा गया एक उज्ज्वल बालक, और आनंद।

मैं जागा, और मैंने अनुपमा को बताया: मैंने उसे देख लिया है। एक बालक। और वह सुंदर था।

◆

मैं यहाँ सावधान रहना चाहता हूँ, और सटीक, क्योंकि यह उस प्रकार का स्वप्न है जिसे फुलाना सरल है और वह फुलाना मुझे पाठक की क़ीमत पर पड़ेगा।

हर कोई जानता है कि होने वाला माता-पिता संतान का स्वप्न देखता है। यह संसार की सबसे साधारण वस्तुओं में से एक है। मन, दिन-भर एक आने वाले जन्म में लगा हुआ, रात में स्वयं को उसी में लगाता है। जिस व्यक्ति की पत्नी सात महीने की गर्भवती हो और जो एक शिशु का स्वप्न देखे, उसने ऐसा कुछ नहीं किया जिसके लिए व्याख्या की आवश्यकता हो। मैं यह जानता हूँ। मैं इसे तब जानता था। यदि वह स्वप्न केवल एक शिशु का स्वप्न होता, तो मैं आपको इसके विषय में न बता रहा होता, और यह इस पुस्तक में न होता।

यहाँ वह एकमात्र वस्तु है जिसकी ओर मैं संकेत करूँगा, और मैं उसकी ओर एक बार संकेत करूँगा और उसे जाने दूँगा।

हम नहीं जानते थे कि वह एक बालक है।

और आर्यन एक बालक के रूप में जन्मा।

मैं उस पर कुछ नहीं बनाने वाला। मुझे पता है कि किसी सिक्के के आपके बताए पहलू पर गिरने की सम्भावना कम नहीं होती, और कि जो व्यक्ति "बालक" का स्वप्न देखता है उसके सही होने की उचित सम्भावना बिना किसी कारण के होती है, और कि यदि वह एक बालिका होती तो मैं बस यह कहानी न बता रहा होता और आप कभी न जानते कि कोई स्वप्न रहा था। मैं इसकी हवा निकालने के सारे ढंग जानता हूँ। मैंने उन्हें स्वयं पर लगाया है।

मैं केवल यही अंकित करता हूँ कि क्या हुआ, अपने सही क्रम में, उस एक विवरण के साथ जो इसे केवल एक शिशु का स्वप्न देखते हुए पिता होने से रोकता है: कि मैंने पुत्र को उसके ज्ञात हो पाने से पहले नाम दिया, और अपने जीवन के उस एक व्यक्ति को बताया जो उससे प्रभावित होने के लिए सबसे कम प्रवृत्त था, और वे स्मरण रखती हैं कि मैंने बताया।

◆

वह अंतिम भाग ही वह कारण है कि यह स्वप्न पुस्तक में है, और वह वास्तव में उस स्वप्न के विषय में नहीं है। वह उस साक्षी के विषय में है।

क्योंकि यहाँ वह है जो इसे उस छड़ी से, और उस गर्भ से, और उन सारी वस्तुओं से भिन्न बनाता है जिनके विषय में अनुपमा कहती हैं कुछ नहीं हुआ। इस बार, वे उस घटना के दूर वाले छोर पर बैठी संशयवादी नहीं हैं। इस बार वे अभिलेख हैं। उन्होंने मुझे "एक बालक" कहते सुना, कई महीने पहले। वे वहाँ थीं जब वह बालक आया। और वे — जो मेरे किसी भी निष्कर्ष को नहीं मानतीं, जो यह मानती हैं कि ब्रह्मांड बस उद्घाटित होता है और कुछ भी लक्षित नहीं और कोई स्वप्न किसी वस्तु की भविष्यवाणी नहीं करता — उस क्रम पर विवाद नहीं करतीं। वे कर नहीं सकतीं। वे उसका दूसरा छोर थामे हुए थीं।

वे इसकी व्याख्या करतीं, निस्संदेह, अपने ही ढंग से। वे कहतीं: तुम्हारे पास पचास-पचास की सम्भावना थी और तुम संयोग से सही निकले, और मुझे यह केवल इसलिए स्मरण है क्योंकि तुम संयोग से सही निकले, और यदि तुमने बालिका कहा होता और बालक होता तो हम दोनों में से कोई उस स्वप्न को स्मरण ही न रखता। और वे पूर्णतः सही होतीं कि यह सम्भव है।

किन्तु मैंने लक्षित किया है — और मैं इसे इससे अधिक प्रबलता से नहीं रखूँगा, क्योंकि वे इसे अधिक प्रबलता से रखने के लिए मुझे धन्यवाद न देतीं — कि वे भी यह कहानी सुनाती हैं। कि जब इसका प्रसंग आता है, तो वे इसे उस ढंग से नहीं टालतीं जैसे वे उस छड़ी को टालती हैं। कि पच्चीस वर्षों में कुछ वस्तुओं का एक छोटा समुच्चय है, जिनके विषय में मेरी पत्नी, वह अविश्वासी, अस्वीकार करने के बजाय मौन हो जाती हैं, और कि यह उनमें से एक है।

◆

आर्यन का जन्म ग्यारह दिसम्बर, 2000 को हुआ।

उन्होंने उसे मेरे हाथों में रखा।

और मैं उसे पहले भी थाम चुका था।

मैं आपको नहीं बताने वाला कि इसका क्या अर्थ है। मैंने अपने नवजात पुत्र को एक अस्पताल में थामा, और मैं उसे, या उस जैसे किसी को, लगभग दो महीने पहले एक स्वप्न में थाम चुका था जिसे मैंने उसकी माता को तब बताया था जब वह अब भी अजन्मा और अलिंगित और अज्ञात था। वे दो तथ्य सत्य हैं और वे एक-दूसरे के बगल में बैठे हैं और मैंने उन्हें पच्चीस वर्षों तक अगल-बगल देखा है।

आप उनका जो अर्थ निकालें निकालें।

मैंने उनसे एक ऐसा पिता निकाला जो, एक वर्ष में दूसरी बार, चुपचाप निश्चित था कि कोई वस्तु उससे आगे तक देखती है — और जिसके पास, एक वर्ष में दूसरी बार, उस एक व्यक्ति को इसे सिद्ध करने का कोई साधन न था जिससे वह सबसे अधिक चाहता था कि वह उस पर विश्वास करे, और जिसने पाया कि उसे, अंततः, उसके विश्वास करने की आवश्यकता न थी, क्योंकि वह न-आवश्यकता स्वयं उस वस्तु का भाग थी जो उसे धीरे-धीरे सिखाई जा रही थी।

अध्याय सोलह:

वे जानते थे

सन् 2000 के मार्च में, ठाणे की चाय के लगभग तीन महीने बाद, मैं शक्तेशगढ़ गया — मुख्य आश्रम में, उस स्थान पर जहाँ स्वामी जी रहते हैं, स्वयं वह गद्दी — और वहाँ उन्होंने मुझसे, कुछ शब्दों में, कहा कि वे एक ऐसी वस्तु जानते हैं जिसे जानने का उनके पास कोई साधारण साधन न था।

◆

उन्होंने नाम लेकर पूछा। अनु। अनु कैसी है।

मैंने कहा वे भली हैं।

और फिर उन्होंने एक ऐसी बात कही जो मैं नहीं समझा।

"एक ही रहेगा या एक से दो होगा?"

एक ही रहेगा, या एक से दो हो जाएगा?

◆

मैं समझ न पाया। मैं उस क्षण के सादे स्वरूप के विषय में ईमानदार रहना चाहता हूँ: मैं वहाँ खड़ा रहा और नहीं जानता था कि उनका क्या अभिप्राय है। उन्होंने देखा कि मैं नहीं जानता, और उन्होंने इसे स्पष्ट कर दिया।

तुम्हारी एक पुत्री है, उन्होंने कहा। क्या एक और आ रहा है? क्या कोई और मार्ग में है?

और मैंने कहा हाँ। हाँ — अनु गर्भवती हैं।

वे इसे मेरे कहने से पहले जानते थे। यही वह वस्तु थी जिसे मैं उस वार्तालाप में से बाहर लाया और तब से ढोता आया हूँ। उन्होंने क्या तुम्हारी पत्नी गर्भवती है उस ढंग से नहीं पूछा जिस ढंग से कोई व्यक्ति बातचीत करते हुए और किसी शुभ समाचार पर पहुँचने की आशा करते

हुए पूछता है। उन्होंने पूछा कि क्या एक से दो हो जाएगा — उन्होंने एक दूसरी संतान के तथ्य को इससे पहले नाम दिया कि मैंने उन्हें बताया हो कि एक है — और फिर, जब मैं वहाँ न समझते हुए खड़ा रहा, तो उन्होंने अपने ही पूर्वज्ञान को उस सादे प्रश्न में उतार दिया जिसका कोई व्यक्ति उत्तर दे सके।

◆

अब मुझे वह करना होगा जो यह पुस्तक सदा करती है, और संशयवादी को उसकी बात कहने देनी होगी, क्योंकि संशयवादी मैं ही हूँ और वह इसका अधिकारी है।

अनुपमा तब तक तीन महीने की गर्भवती थीं, या उसके निकट। यह पूर्णतः सम्भव है कि वह दिखने लगा हो। यह पूर्णतः सम्भव है कि बात फैलती है — कि शिष्यों और साधुओं और निरंतर आने-जाने के एक संसार में, यह समाचार कि पांडेय की पत्नी माँ बनने वाली हैं, बस उस साधारण मार्ग से आश्रम तक पहुँच गया हो जिस मार्ग से समाचार स्थानों तक पहुँचते हैं, और कि एक दयालु वृद्ध व्यक्ति ने, एक युवा शिष्य को देखकर, परिवार का हाल एक ऐसे ढंग से पूछा हो जिसमें संयोगवश वह भी सम्मिलित था जो उन्हें पहले ही बताया जा चुका था। यह सम्भव है कि मैंने उस वार्तालाप को स्मृति में संपीड़ित कर दिया हो, दो दशकों में उसे कस दिया हो, उससे अधिक नुकीली किसी वस्तु में जितना वह था। यह सब सम्भव है और मैं इनमें से किसी को निरस्त नहीं कर सकता और मैं इसका ढोंग नहीं करूँगा।

मैं केवल वही कहूँगा जो मैंने उस दूरभाष के विषय में, बहुत-से पृष्ठ पूर्व, कहा था, क्योंकि यह वही बात है और यह इस सबके विषय में वह सबसे सच्ची बात है जिसे कहना मैं जानता हूँ।

संशयपूर्ण विवरण उपलब्ध है, और वह पूर्ण है, और वह कुछ नहीं बदलता — क्योंकि शक्तेशगढ़ की उस भेंट के समय तक, मैं अब अलग-अलग घटनाओं को नहीं तौल रहा था। उनमें से किसी एक की भी व्याख्या की जा सकती थी। वह झुकाव, वे दृष्टियाँ, वह जीप, वह रुका हुआ मन, वह चिता, वह छड़ी, मेरे हाथों में वह बालक, और अब एक से दो होगा — किसी एक को लीजिए और आप, पर्याप्त प्रयत्न से, उसे साधारण बना सकते हैं। जो आप नहीं कर सकते, या जो मैं कम-से-कम अब न कर सकता था, वह इस समस्त को एक साथ साधारण बनाना है। एक बिंदु आता है जिस पर कोई मनुष्य यंत्र-पटल पर के हर पाठ को

परखना बंद कर देता है और यह लक्षित करने लगता है कि सुई एक ही दिशा में बढ़ती रहती है, और कि वह दिशा वह नहीं जिसकी उसके सिद्धांत ने भविष्यवाणी की थी।

मैं उस बिंदु पर एक जंगल और एक चौथी मंज़िल के फ़्लैट के बीच कहीं पहुँच गया था, और शक्तेशगढ़ ने मुझे कुछ भी सिद्ध नहीं किया। उसने बस उसकी पुष्टि की जिस पर मैं पहले ही, अपने समूचे प्रशिक्षण के विरुद्ध, संदेह करने लगा था: कि यह व्यक्ति देखता था। सब कुछ नहीं, किसी प्रदर्शन के रूप में नहीं, माँग पर नहीं। किन्तु वह देखना उनमें उस ढंग से था जिस ढंग से साधारण दृष्टि हम शेष लोगों में है, और वे उसका उतनी ही मितव्ययिता से और उतने ही स्वाभाविक रूप से उपयोग करते थे जितना हम अपनी दृष्टि का करते हैं, और मैं उसकी पहुँच में चला आया था।

◆

उस भेंट पर, या उसके निकट, और भी कुछ था, और वह संतान के विषय में उनके कहे सब में मेरा सर्वप्रिय है, क्योंकि वह इतना पूर्णतः भव्यता-रहित है।

उन्होंने मुझे बताया कि संतान एक बालक होगी — एक से दो होगा, और उन दो में एक पुत्र सम्मिलित होगा। और फिर, यह बताकर, उन्होंने मुझे उस पुत्र के विवाह के विषय में सलाह दी।

वह बालक अभी जन्मा भी न था। और स्वामी जी पहले से ही सोच रहे थे कि वह एक दिन किससे ब्याहा जाएगा।

"बहू लंबी लाना," उन्होंने कहा। लंबी बहू लाना।

◆

मुझे यह प्रिय है, और मैं आपको बताना चाहता हूँ क्यों, क्योंकि यह उनके समूचे चित्र के लिए महत्वपूर्ण है और यह किसी ऐसी वस्तु को सुधार देता है जिसे इस प्रकार की पुस्तकें प्रायः ग़लत समझती हैं।

संतों के विषय में पुस्तकें उन्हें हर समय पूर्ण ऊँचाई पर प्रस्तुत करती हैं — प्रत्येक उक्ति एक शिक्षा, प्रत्येक शब्द शाश्वत की ओर मुड़ा हुआ, वह व्यक्ति एक बार भी बस एक मनुष्य नहीं।

और ऐसे चित्र, मैं मानने लगा हूँ, एक सूक्ष्म प्रकार का झूठ हैं, क्योंकि वे उस वस्तु को हटा देते हैं जो एक सिद्ध पुरुष को विस्मयकारी बनाती है, अर्थात् यह कि वह ऊँचाई और वह साधारणता उसमें तनिक भी घर्षण के बिना सह-अस्तित्व रखती हैं।

यहाँ एक ऐसा व्यक्ति था जिसने, उसी सम्बन्ध में, उन्हीं महीनों में, मुझे मेरा अपना मन भीतर से रुकते हुए दिखाया था, जिसे मेरी अपनी धारणाओं के नीचे की किसी वस्तु ने ईश्वर घोषित किया था, जो मेरे पुत्र के विषय में मेरे कहने से पहले जानते थे — और जो भी, पूर्ण सहजता से, मुझे मेरी भावी बहू की लम्बाई के विषय में व्यावहारिक सलाह देते थे ताकि उनके शिष्य के नाती-पोते लंबे हों। एक ने दूसरे को घटाया नहीं। वे कोई घरेलू परिहास करने के लिए ऊँचाइयों से नीचे नहीं उतर रहे थे। उतरने के लिए कोई ऊँचाइयाँ थीं ही नहीं, क्योंकि वे पहले स्थान पर किसी ऊँचाई पर बैठे ही न थे; वे बस, पूर्णतः, वहीं थे जहाँ वे थे, और जहाँ वे थे वह एक मन के रुकने और एक अजन्मे नाती की लम्बाई दोनों को इस बोध के बिना समेटे था कि ये भिन्न सुरों के हैं।

बहू लंबी लाना। यह उनमें से एक है जो उन्होंने मुझसे कभी कहीं, सबसे चुपचाप प्रतीति कराने वाली बातों में से, ठीक इसलिए कि किसी संत को गढ़ने वाला इसे गढ़ने की सोचता भी नहीं।

◆

आर्यन का जन्म ग्यारह दिसम्बर, 2000 को, प्रातः दस बजकर पचपन मिनट पर हुआ।

मैं आपको स्पष्ट रूप से बताऊँगा कि वह तिथि वह तिथि कैसे बनी, क्योंकि पुस्तक ने आपसे स्पष्टता का वचन दिया है और यह वह स्थान है जहाँ स्पष्टता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

जन्म एक सिज़ेरियन होना ही था। अनुपमा को वह है जिसे चिकित्सकों ने एंड्रॉइड श्रोणि (पेल्विस) कहा; हमारी पुत्री, ईशा, उसी ढंग से, सिज़ेरियन द्वारा, उसी कारण से जन्मी थी, और इस बार इसके अन्यथा होने का कोई प्रश्न न था। सिज़ेरियन एक निर्धारित वस्तु है। एक तिथि चुननी पड़ती है।

और फिर, जैसा हुआ, अनुपमा को दस तारीख़ की रात प्रसव-पीड़ा आरम्भ हुई, और हमने उन्हें भर्ती कराया, और आर्यन अगली सुबह हमारे चुने हुए अंतराल के भीतर जन्मा।

मैं वह क्रम अंकित करता हूँ और उसमें कुछ नहीं जोड़ता। पूर्ण-अवधि के निकट एक स्त्री, पहले से सिज़ेरियन के लिए निर्धारित, निर्धारित दिन से एक रात पूर्व प्रसव-पीड़ा में चली गई। मुझे पता है कि लगभग यही वह समय है जब पूर्ण-अवधि पर एक शरीर ऐसी वस्तुएँ करता है। मैं कोई रेखा नहीं खींचता। मैंने आपको बताया है कि परिवार ने एक तिथि चुनी और संतान उसी पर आई, और मैं दोनों तथ्यों को वहीं पड़ा छोड़ देता हूँ जहाँ वे गिरते हैं, आपके लिए कि आप उन्हें जैसे चाहें देखें।

◆

अतः पहला वर्ष बंद हुआ।

मैं, इस अध्याय और पुस्तक के इस पहले भाग को समाप्त करने से पहले, यह अंकित करना चाहता हूँ कि वह वर्ष वास्तव में क्या रहा था, क्योंकि उसके भीतर से मैं उसका आकार न देख सका और केवल उसके बाद के वर्षों ने उसे मुझे दिखाया है।

कुछ ही महीनों के अंतराल में — मैंने उन्हें गिना है और वे अब भी मुझे चकित करते हैं — एक ऐसा व्यक्ति जिसने तीस वर्ष एक विशेष प्रकार के व्यक्ति के रूप में बिताए थे, पूर्ण रूप से, चुपचाप, अलग-अलग कर दिया गया था। एक वर्ष से कुछ कम में: एक पुस्तक ने जिसे उसने अस्वीकार कर दिया था, उसे उलट दिया था; एक जंगल ने उसे उसका अपना मन रुकते दिखाया था; एक संत उसके फ़्लैट तक चार मंज़िल चढ़ा था और उसके टेलीविज़न को एक साधना में बदल दिया था और एक छड़ी उसकी पत्नी की पीठ से छुआई थी; एक स्वप्न ने उसे उसका अजन्मा पुत्र सौंपा था; और खाट पर बैठे व्यक्ति ने उस पुत्र के विषय में उसके बताए जाने से पहले जान लिया था। एक ऊबी हुई दोपहर में एक पुस्तक के खुलने और एक दिसम्बर की सुबह दस बजकर पचपन मिनट पर एक बालक के जन्म के बीच, मेरे जीवन का समूचा फ़र्श उठाया गया था और एक भिन्न दिशा की ओर मुँह किए फिर रख दिया गया था, और मैं, समूचे समय, बैठकें करता और कार्यान्वयन चलाता और स्वयं को अनिवार्यतः वही व्यक्ति मानता हुआ चलता रहा था।

मैं वही व्यक्ति न था। मैं अभी यह नहीं जानता था। यही अंतिम ईमानदार बात है जो मैं आपको पहले वर्ष के विषय में बता सकता हूँ: कि वह परिवर्तन पहले ही हो चुका था, पूर्ण, और कि मुझे अगले चौबीस वर्ष केवल यह पता लगाने के लिए लगने वाले थे कि मेरे साथ क्या किया

गया था, और किसके द्वारा, और क्यों, उस दिन जब मैंने एक ऐसी पुस्तक के लिए हाथ बढ़ाया था जिसके विषय में मैं पहले ही निश्चय कर चुका था कि मुझे उसकी आवश्यकता नहीं।

उन्होंने मुझे बताया था कि पुत्र आएगा। उन्होंने मुझे लंबी बहू लाने को कहा था। उन्होंने मुझे नहीं बताया था — मैंने पूछने की सोची न थी, और उत्तर न समझता — कि मुझे स्वयं उनके पास आने, और संसार त्यागने, और रुक जाने की अनुमति कब मिलेगी।

मैंने उनसे वह पूछा, एक बार, उसके कुछ ही समय बाद, उससे अधिक भाव के साथ जितना मैं दिखाना चाहता था।

और उनके उत्तर ने मेरे जीवन के दूसरे भाग का आरम्भ किया।

अध्याय सत्रह:

मैंने आपको देखा है

मैं उन उत्तरों का वर्णन करता आया हूँ जो मेरे सद्गुरु ने एक वयस्क व्यक्ति के प्रश्नों को दिए — अभियंता के लिए वह जीप, मन को अलग-अलग कराना चाहने वाले के लिए वे चार शब्द। किन्तु उनका जो उत्तर मैं सबसे अधिक बार लौटकर स्मरण करता हूँ, वह मुझे दिया ही न गया था। वह एक बालिका को दिया गया था, एक दूरभाष पर, और मैं केवल वह व्यक्ति था जिसने नम्बर मिलाया।

◆

मैं घर पर स्वामी जी की बात करता था। निरंतर, मुझे बताया जाता है, यद्यपि मैंने उस समय उसे उस ढंग से लक्षित न किया जिस ढंग से कोई मनुष्य उस वस्तु को कभी लक्षित नहीं करता जो वह निरंतर करता है। वे मेरे भीतरी जीवन के केंद्र का तथ्य बन गए थे, और वे भोजन की मेज़ पर और कार में और पारिवारिक संध्याओं के साधारण प्रसंगों में मुझमें से रिसते थे। मेरे बच्चे उनके नाम के साथ घर में उसी ढंग से बड़े हुए जिस ढंग से अन्य बच्चे उन सम्बन्धियों के नामों के साथ बड़े होते हैं जिनसे वे अभी मिले नहीं — एक ऐसी उपस्थिति जिसकी बात की जाती हो, परिचित और अनदेखी।

और एक दिन, इस संत के विषय में अपने पिता की बातों के उस चलते हुए मौसम में से, उसने मुझसे एक प्रश्न पूछा।

क्या स्वामी जी ने भगवान को देखा है?

◆

मैंने उसका उत्तर उस ढंग से दिया जिस ढंग से एक पिता देता है, और जिस ढंग से एक भक्त देता है, और मुझे निश्चय नहीं कि वे दोनों ठीक एक ही बात कह रहे थे, यद्यपि मैंने उस समय उस जोड़ को लक्षित न किया।

मैंने कहा हाँ। हाँ, उन्होंने भगवान को देखा है।

और फिर मैं और आगे गया, क्योंकि मेरा हृदय भरा हुआ था और क्योंकि एक पिता अपनी पुत्री के सामने बात नहीं गोल-मोल करता। मैंने कहा: वे स्वयं भगवान हैं। उन्होंने केवल भगवान को देखा नहीं है — वे भगवान हैं।

मैं अपने ही शब्दों को वहाँ बिना चमकाए छोड़ना चाहता हूँ, क्योंकि वे वही शब्द हैं जो मैंने वास्तव में कहे, और क्योंकि वे ठीक उसी प्रकार की घोषणा हैं जिसे न करना यह पुस्तक तीन सौ पृष्ठ सीखती रही है। मैंने वह की। अपनी नौ वर्ष की पुत्री से, किसी साधारण संध्या को, मैंने वह बात कही जिसे किसी भी लेखक को कभी सपाट रूप से न कहने की सलाह मैं दूँगा — वे भगवान हैं — एक पिता की समूची अजटिल धारणा के साथ और इस विषय में तनिक भी विचार किए बिना कि वह कैसे उतरेगी या उसका बचाव किया जा सकता है या नहीं।

मैं इसका उल्लेख स्वयं को सुधारने के लिए नहीं करता, बल्कि उसके कारण जो आगे हुआ, जिसने मुझे उससे कहीं बेहतर सुधारा जितना मैं स्वयं को सुधार सकता था, और जिसे मैं कभी नहीं भूला।

ईशा ने कहा: मुझे उनसे बात करनी है।

◆

यह व्यवस्थित करना सरल न था, और वह कठिनाई कहानी का भाग है, अतः मुझे उसे समझाने दीजिए।

अतः मैंने आश्रम में फ़ोन किया। मैं संतों में से एक तक पहुँचा। और मैंने कहा कि मेरी पुत्री स्वामी जी से बात करना चाहती है।

और उसकी अनुमति मिल गई। फ़ोन उनके पास ले जाया गया। और मैंने अपनी छोटी पुत्री को अपने सद्गुरु के साथ लाइन पर लगा दिया।

◆

मैं केवल उसका पक्ष सुन सकता था, और फिर, बाद में, उसने मुझे उनका बताया। किन्तु मुझे उसका पक्ष ठीक-ठीक स्मरण है, क्योंकि एक पिता अपनी संतान का स्वर स्मरण रखता है जब वह सबसे पुराना प्रश्न पूछता है जो है।

उसने वह नहीं पूछा जो मैंने उसे पूछने को कहा था। उसने ऐसा कुछ नहीं पूछा जिसके लिए मैंने उसे तैयार किया हो, क्योंकि मैंने उसे किसी वस्तु के लिए तैयार न किया था; यह उसका अपना विचार था, एक नौ वर्ष की बालिका की सीधाई के साथ उन सारे विस्तृत उपागमों को सीधे पार करते हुए अपनाया गया जिन्हें कोई वयस्क रचता। उसने बस उनसे वही पूछा जो उसने मुझसे पूछा था।

"आपने भगवान को देखा है?"

◆

और मेरे सद्गुरु ने — जिन्होंने अभियंता के न्याय-वाक्य का उत्तर एक टूटी हुई जीप से दिया था, जिन्होंने मन के विषय के प्रश्न का उत्तर उस प्रश्न को ही घोलकर दिया था — इस बालिका को एक ऐसा उत्तर दिया जिसे रीता कर पाने में मैं उसके बाद के वर्ष असमर्थ रहा हूँ।

"मैंने आपको देखा है।"

मैंने आपको देखा है।

◆

मुझे यहाँ पूरी तरह धीमा होना होगा, क्योंकि यह पुस्तक जिस हर वस्तु के चारों ओर घूमती रही है वह उन चार शब्दों में है, और यदि मैं उनके पास से जल्दबाज़ी में गुज़र गया तो मैं उस एक स्थान पर असफल हो जाऊँगा जहाँ मुझे सबसे अधिक असफल न होना है।

एक बालिका पूछती है: क्या आपने भगवान को देखा है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका एक आकार है। वह मान लेता है कि भगवान एक ऐसी वस्तु है जो देखी जा सकती है, कहीं, किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो वहाँ गया — कि भगवान को देखना एक ऐसी घटना है जो किसी स्थान पर, किसी व्यक्ति के साथ, किसी समय घटती है, उस ढंग से जैसे हिमालय को देखना एक घटना है। वह यहाँ एक द्रष्टा और वहाँ एक भगवान और उनके बीच दृष्टि की एक रेखा की सम्भावना मान लेता है। वह, अपने निर्दोष ढंग से, ठीक वही प्रश्न है जिसे मैं एक न्याय-वाक्य का रूप देकर पहलवानों के घर में लाया था: पुत्र पिता क्यों नहीं, साधक साध्य क्यों नहीं, वह अंतराल क्यों। बालिका ने एक ही साँस में वह पूछ लिया जिसे पूछने के लिए मुझे एक तार्किक

जाल की आवश्यकता पड़ी थी। भगवान कहाँ है, और क्या आप वहाँ गए हैं, और क्या आपने देखा?

और उन्होंने उस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। उन्होंने वही किया जो वे सदा करते थे — उन्होंने उसके समूचे आकार को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने हाँ नहीं कहा। उन्होंने नहीं नहीं कहा। उन्होंने किसी दर्शन या किसी स्थान या किसी उपलब्धि का वर्णन नहीं किया। उन्होंने द्रष्टा-यहाँ और भगवान-वहाँ की समूची संरचना को, एक दूरी को पार किए जाने और एक दृष्टि को पकड़े जाने की समूची मान्यता को लिया, और उसे सीधे बालिका की ओर लक्षित एक ही वाक्य में समेट दिया।

मैंने आपको देखा है।

जिसका अर्थ है: मैं आपको किसी भगवान के विषय में नहीं बताने वाला जिसे मैंने कहीं और देखा, क्योंकि कोई कहीं और है ही नहीं। जिस देखने के विषय में आप पूछ रही हैं वह अभी हो रहा है, इस दूरभाष पर। आप क्या सोचती हैं कि जब मैं आपको देखता हूँ तब मैं क्या कर रहा होता हूँ? आप कहाँ कल्पना करती हैं कि भगवान है, जो यहाँ नहीं है? आपने पूछा कि क्या मैंने भगवान को देखा है। बच्ची — मैं भगवान को देख रहा हूँ। वह नौ वर्ष की है और वह चौथी कक्षा में है और वह एक दूरभाष थामे हुए है, और मैं उसे देख रहा हूँ, और देखने को और कुछ है ही नहीं।

◆

यह उस परम्परा की सर्वोच्च शिक्षा है जिसे मेरे पिता मूल में पढ़ सकते थे और मैं नहीं पढ़ सका। तत् त्वम् असि। वह तू है। जिस वस्तु को आप खोज रहे हैं, वही वस्तु है जो खोज रही है। यह उपनिषदों में है; यह महावाक्य है, महान उक्ति, वह वाक्य जिसके चारों ओर समूचा वेदांत घूमता है। लोग इस पर जीवन-भर लगा देते हैं। यह सघन है, कठिन, अंतहीन रूप से भाष्य-प्राप्त — वही गीता-अलमारी जिससे मैंने पंद्रह वर्ष पिया था और प्यासा ही रहा था।

और उन्होंने उसे एक बालिका को दिया, पूर्ण, साधारण हिंदी के चार शब्दों में, एक दूरभाष पर, बिना किसी एक भी तकनीकी शब्द के, इतनी कोमलता से और इतनी पूर्णता से कि वह उलझन में भी न पड़ी। वह भयभीत या भ्रमित होकर नहीं लौटी। वह लौटी, मुझे लगता है, बस देखी गई अनुभव करते हुए — जो कि ठीक-ठीक सही है, क्योंकि वही है जो वह शिक्षा,

भली-भाँति ग्रहण की जाए तो, वास्तव में अनुभव होती है। वह किसी सिद्धांत के बताए जाने जैसी अनुभव नहीं होती। वह देखे जाने जैसी अनुभव होती है।

वे उससे ठीक वहीं मिले जहाँ वह थी। यही वह वस्तु है जिसे मैं इस समूची पुस्तक में आपको उनके विषय में दिखाने का प्रयास करता रहा हूँ, और यहाँ वह अपने शुद्धतम रूप में है। अपने प्रमाण वाले अभियंता को, एक ऐसी कथा जिस पर उसे बीस वर्ष श्रम करना पड़ेगा। मन का रेखाचित्र चाहने वाले व्यक्ति को, एक अस्वीकार जो स्वयं वह रेखाचित्र था। और यह जानना चाहने वाली एक नौ वर्ष की बालिका को कि क्या उस महान व्यक्ति ने भगवान को देखा है — कोई व्याख्यान नहीं, कोई "तुम समझने के लिए बहुत छोटी हो" नहीं, किसी बालिका के लिए घटाया गया कोई झूठ नहीं — बल्कि वास्तविक, अविरल, सर्वोच्च सत्य जो है, उसकी अपनी माप के अनुरूप इतनी पूर्णता से दिया गया कि वह उसमें बिना किसी प्रतिरोध के प्रवेश कर गया और उसे प्रेम किया गया अनुभव कराया।

उन्होंने बालिका के लिए शिक्षा को सरल नहीं बनाया। यही वह बात है। उन्होंने उसे इसलिए कोई कमतर सत्य नहीं दिया कि वह छोटी थी। उन्होंने उसे समूचा सत्य दिया, और वे चार शब्द ढूँढ़े जो समूचे सत्य को एक नौ वर्ष की बालिका की समझ के द्वार से भीतर आने देते, बिना उसे भीतर आते समय घटाए। यह सरलीकरण नहीं है। यह महारत है।

◆

और मैं, अंततः, यह लक्षित करना चाहता हूँ कि उन चार शब्दों ने मेरी अपनी घोषणा के साथ क्या किया — क्योंकि उन्होंने मुझे भी उत्तर दिया, यद्यपि मैं केवल लाइन पर बैठा संचालक था।

मैंने ईशा से कहा था: वे भगवान हैं। मैंने वह दावा किया था, सपाट रूप से, विश्वासी का दावा, वह जो द्वार बंद कर देता है। और फिर वे दूरभाष पर आए और उसकी पुष्टि नहीं की। उन्होंने उससे नहीं कहा, हाँ, तुम्हारे पिता सही हैं, मैं भगवान हूँ। एक कमतर व्यक्ति, एक ऐसा व्यक्ति जो उससे आसक्त हो जो वह था, कह देता। उन्होंने इसके बजाय कहा मैंने आपको देखा है — जो स्वयं उनकी ओर तनिक भी संकेत नहीं करता, बल्कि स्वयं से दूर, उसकी ओर, उस भगवान की ओर जो किसी विशेष व्यक्ति में स्थित नहीं बल्कि स्वयं वह देखना है, स्वयं वह चेतना, जो हर किसी में से बाहर देख रही है, एक दूरभाष पर बैठी बालिका सहित।

मेरी घोषणा ने उन्हें गंतव्य बनाया। उनके उत्तर ने उन्हें एक खिड़की बनाया।

मैंने कहा था वे भगवान हैं, जिसका अर्थ था: उन्हें देखो, वही हैं, वह उनके पास है और हमारे पास नहीं। और उन्होंने कोमलता से, मेरा खंडन किए बिना, मेरी पुत्री के सामने मुझे लज्जित किए बिना, उसे पूर्णतः पलट दिया — मैंने आपको देखा है — जिसका अर्थ था: मुझे गंतव्य मत बनाओ; जिस वस्तु को आप खोज रहे हैं वह आपकी अपनी पुत्री की आँखों में से बाहर देख रही है; मैं तो केवल वह हूँ जो देख सकता है कि वह ऐसा है।

उन्होंने मुझे उन्हें उस ढंग से भगवान नहीं बनाने दिया जिस ढंग से मैं चाहता था। जब मैं वह कर ही रहा था, तब भी, तीन सौ मील दूर से एक दूरभाष थामे एक साधु के माध्यम से भी, उन्होंने उसे मोड़ दिया — सत्य से दूर नहीं, बल्कि उसके धारक के रूप में स्वयं से दूर, और वापस बालिका की ओर, और उस वस्तु की सर्वत्रता की ओर जिसे मैं केवल उन्हीं में स्थित करने का प्रयास कर रहा था।

मैंने, तब से, सोचा है कि यही उस समूचे प्रश्न का उत्तर है कि वे क्या थे। इसलिए नहीं कि उन्होंने किसी वस्तु का दावा किया। इसलिए कि उन्होंने करने से इनकार कर दिया। क्योंकि एक ऐसा व्यक्ति जो केवल एक अत्यंत पवित्र व्यक्ति होता, किसी बालिका के यह पूछने पर कि क्या उसने भगवान को देखा है, कृपा या भक्ति या वर्षों की तपस्या के विषय में कोई योग्य उत्तर ढूँढ़ लेता। और एक ऐसा व्यक्ति जो एक छल होता, कहता हाँ, और वह मैं ही हूँ। केवल एक विशेष प्रकार का व्यक्ति उत्तर देता है मैंने आपको देखा है — प्रकाश को, ठीक उसी क्षण जब वह उसे अर्पित किया जा रहा हो, स्वयं से दूर मोड़ देता है, और उसे, प्रेम के साथ, एक नौ वर्ष की बालिका पर उतार देता है जो केवल जानना चाहती थी।

मैं आपको नहीं बताने वाला कि वह किस प्रकार का व्यक्ति है। आप अब तक जान चुके हैं कि मैं आपको नहीं बताने वाला। किन्तु मैं आपको बताऊँगा कि मेरी पुत्री, जो संतों में विश्वास नहीं करती, जो एक ऐसी स्त्री बनकर बड़ी हुई जो अपनी माता का मत रखती है, मेरा नहीं, वह फ़ोन-कॉल स्मरण रखती है। और कि इस पुस्तक में मैंने जो सारी वस्तुएँ अंकित की हैं, उनमें से मैंने आपको देखा है वह एक है जिसे मैं रखता यदि मैं केवल एक ही रख सकता।

उन्होंने उसे देखा। बस इतना ही उन्होंने कहा कि उन्होंने किया।

मैं मानने लगा हूँ कि बस इतना ही कहने की आवश्यकता है।

अध्याय अठारह:

मैं आपके पास कब आऊँगा?

एक बिंदु आया — वह आरम्भ में था, पहले एक-दो वर्षों के भीतर — जब मैं सब कुछ छोड़कर उनके पास चला जाना चाहता था। और मैंने उनसे ऐसा कहा। और उनका उत्तर वह सबसे निराशाजनक बात थी जो उन्होंने मुझसे कभी कही, और यह समझने में मुझे बीस वर्ष लगे कि वह सबसे करुणापूर्ण भी थी।

◆

मुझे यह समझाना चाहिए कि वह चाह कैसे उठी, क्योंकि वह वह नहीं जो कोई पाठक मान ले, और वह अंतर महत्वपूर्ण है।

बात यह न थी कि मेरा जीवन असहनीय हो गया था और मैं उससे भागना चाहता था। मेरा जीवन, हर बाह्य मापदंड से, उत्कृष्ट था। कार्यजीवन चढ़ रहा था। घर सुखद था — पांडेय ख़ूब भोग भोग रहा था, जैसा स्वयं उस व्यक्ति ने लक्षित किया था। एक पुत्री थी, और एक पुत्र मार्ग में या अभी-अभी आया हुआ, और एक विवाह जो वह भूमि थी जिस पर मैं खड़ा था। मेरे पास भागने को कुछ न था।

वह चाह भागने के विपरीत थी। वह एक खिंचाव था, कोई धक्का नहीं। उनके निकट रहकर — उनके चरण दबाकर, अपने ही मन को रुकते देखकर, जो भी वह वस्तु थी जो उनके चारों ओर के स्थान को भरती थी उसे अनुभव करके — मैंने पाया कि शेष हर वस्तु ने चुपचाप अपने रंग का एक अंश खो दिया था। ऐसा नहीं कि संसार धूसर हो गया था; वह न हुआ था; मैं उसका आनंद लेता रहा। किन्तु मुझे, एक जंगल के फ़र्श पर कुछ मिनटों के लिए, कुछ ऐसा दिखाया गया था जिसके सामने संसार के श्रेष्ठतम प्रस्ताव वही दिखते थे जो वे थे, और जिस मनुष्य ने वह देख लिया हो वह उसे पूर्णतः अनदेखा नहीं कर सकता। वे बैठकें, वह धन, वे सुख — मैं उनका मूल्य आँकता रहा, और वे, उत्तरोत्तर, एक प्रतीक्षालय जैसे अनुभव होते रहे। पर्याप्त सुखद। किन्तु एक ऐसा स्थान जिसमें कोई कहीं और जाते समय होता है।

और वह कहीं और वह था जहाँ भी वे थे।

◆

अतः मैंने उनसे पूछा। और मैंने, मैं स्वीकार करता हूँ, उससे अधिक भाव के साथ पूछा जितना मैं स्वयं को सामान्यतः दिखाने देता था — अभियंता की स्थिरता खिसकती हुई, क्योंकि यह वह प्रश्न न था जिसे मैं उस नापी हुई दूरी पर थाम सकता जिस पर मैं अधिकांश वस्तुओं को थामता था।

मैं आपके पास कब आऊँगा?

मैं यह सब कब छोड़कर आपके साथ हो सकता हूँ? यह प्रतीक्षा कब समाप्त होती है और वास्तविक वस्तु कब आरम्भ होती है? मैंने ये ठीक-ठीक शब्द उपयोग न किए, किन्तु उस पूछने में जो कुछ था वह समस्त यही था। मैं चाहता था कि वे एक समय बताएँ। मैं चाहता था, मुझे लगता है, कि वे कहें शीघ्र, या अभी, या जब भी तुम तैयार हो — कोई ऐसा उत्तर जो पुष्टि कर देता कि वह खिंचाव वास्तविक था और उसका मान रखा जाएगा, कि जो जीवन मैं जी रहा था वह वास्तव में वही प्रतीक्षालय था जैसा मैं उसे अनुभव करने लगा था, और कि वह द्वार खुलेगा।

उन्होंने शीघ्र नहीं कहा। उन्होंने अभी नहीं कहा।

उन्होंने कहा: अपने पुत्र का विवाह कर लेने के बाद।

◆

मैं चाहता हूँ कि आप अनुभव करें कि वह कैसे आ गिरा, क्योंकि वह अनुभव ही समूचा मर्म है।

वह, उस क्षण में, कुचल देने वाला था। मैं उनके पास अपनी वह एक शुद्ध अभिलाषा लेकर आया था, वह अभिलाषा जो उन्हीं से प्रज्वलित हुई थी और केवल उन्हीं की ओर लक्षित थी, और उन्होंने उसका सामना उससे किया जो ठीक उसी जीवन में दो दशकों के कठोर श्रम की सज़ा जैसा सुनाई दिया जिससे मैं मुक्त होना चाहता था। मैंने घर आने को कहा था और मुझे वापस काम पर जाने को कहा गया।

मैंने बहस नहीं की। उनसे बहस नहीं की जाती थी; मैं यह पहली सुबह ही सीख चुका था, वे सब एक ही हैं के साथ। किन्तु मैं बम्बई एक ऐसी निराशा ढोते हुए लौटा जिसे मैं पूर्णतः निगल न सका, और मैंने उसे, जैसे मैं हर उस वस्तु को फ़ाइल करता था जिसे मैं समझ न सकता था, बही में फ़ाइल कर लिया: पूछा कि मैं कब आऊँ। उत्तर: मेरे पुत्र के विवाह के बाद। बीस वर्ष। कारण अज्ञात। मत त्यागो।

◆

यह समझने में मुझे बहुत लंबा समय लगा कि उन्होंने वास्तव में क्या किया था, और मैं आपको अब बताऊँगा, क्योंकि उन स्वप्नों के विपरीत यह कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे मैं प्रभाव के लिए रोक रहा हूँ — यह एक ऐसी वस्तु है जिसे मैं वास्तव में दो दशकों के अधिकांश भाग तक न देख सका, और वह न-देखना स्वयं वह शिक्षा है।

उन्होंने मुझे कुछ भी छोड़ (लाँघ) देने से इनकार कर दिया था।

जो खिंचाव मैंने अनुभव किया वह वास्तविक था। किन्तु उस खिंचाव में, उस अवस्था के मुझ जैसे व्यक्ति में, भीतर एक छिपा हुआ मिथ्यात्व था, और उन्होंने वह मिथ्यात्व देख लिया यद्यपि मैं न देख सका। वह मिथ्यात्व यह था कि आध्यात्मिक जीवन कहीं और था — आश्रम में, जंगल में, उनके निकट — और कि मेरा वास्तविक जीवन, वह पत्नी और वे बच्चे और वह कार्यजीवन, उसके मार्ग में एक बाधा था। कि त्याग का अर्थ छोड़ना था। कि प्रतीक्षालय और गंतव्य दो भिन्न कक्ष थे, और पवित्रता एक में से निकलकर दूसरे में जाने की बात थी।

यह सबसे पुरानी भूल है जो है, और गीता बहुत हद तक इसी को सुधारने के लिए विद्यमान है। अर्जुन भी रणभूमि छोड़ना चाहता था — अपना धनुष रख देना और अपने सामने के भयानक कार्य से हट जाना और कहीं शांत स्थान पर जाकर पवित्र होना चाहता था। और कृष्ण के उत्तर का समस्त, उसके अठारह अध्याय, यह है: नहीं। अपने सामने का कार्य करो। तुम्हारा धर्म यहाँ है, इस रणभूमि पर, इस जीवन में जो वास्तव में तुम्हारा है — न कि किसी त्यागे हुए कहीं और में जिसे तुम कल्पना करते हो कि अधिक शुद्ध होगा। जो त्याग महत्वपूर्ण है वह कर्म का त्याग नहीं है। वह कर्म के फलों के प्रति तुम्हारी आसक्ति का त्याग है, जो ठीक उसी जीवन के मध्य में किया जाता है जिसे तुम पहले से ही जी रहे हो।

स्वामी जी जानते थे कि मैंने यह पढ़ा है। मैंने इसे कई बार पढ़ा था, कई हाथों में, उनसे मिलने से पंद्रह वर्ष पहले तक। और वे जानते थे कि मैंने इसे समझा नहीं था — कि मैं अब भी, अपने शरीर में, विश्वास करता था कि आश्रम पवित्र है और कार्यालय नहीं, कि उनके पास आने का अर्थ मेरा जीवन छोड़ना है, कि जो खिंचाव मैं अनुभव करता हूँ वह कहीं जाने का एक आह्वान है। अतः उन्होंने मेरे धर्मशास्त्र को किसी व्याख्यान से नहीं सुधारा। उन्होंने मुझे एक ऐसा आदेश दिया जो मुझसे उस सुधार को बीस वर्ष जिवा देता, चाहे मैं उसे समझूँ या न समझूँ।

अपने पुत्र के विवाह के बाद।

अर्थात्: तुम्हारा त्याग कहीं और नहीं है। वह यहाँ है। वह इस विवाह में और इन बच्चों में और इस कार्यजीवन में है, पूर्णता से किया गया, पूर्णता तक किया गया, उस अर्पण के रूप में किया गया जो वह वास्तव में है। तुम मेरे पास अपना जीवन छोड़कर नहीं आते। तुम मेरे पास उसे पूरी तरह जी लेकर आते हो — और जब तुमने जी लिया, जब अंतिम कर्तव्य निभा दिया गया और कुछ भी बकाया न रहा, तब वह छोड़ना छोड़ना भी न होगा, क्योंकि त्यागने को कुछ शेष न बचेगा। तुम बस पहुँच जाओगे, कुछ न ढोते हुए, क्योंकि तुम उस सब को उस करने में ही पहले रख चुके होगे।

◆

वे मुझे उनसे दूर बीस वर्ष की सज़ा नहीं दे रहे थे। मेरे पास भूगोल ठीक उलटा था, जैसे मेरे पास उन वर्षों में हर वस्तु के विषय में उलटा था। वे मुझे बता रहे थे कि वे बीस वर्ष ही वह मार्ग थे — कि आर्यन और ईशा का पालन-पोषण, अनुपमा के साथ वह विवाह, वह समूचा लंबा गृहस्थ-श्रम जिससे मैं मुक्त होना चाहता था, मेरे शिष्यत्व की बाधा नहीं बल्कि उसका पदार्थ था। कि मैं उनके पास सबसे छोटे मार्ग से आने का प्रयास कर रहा था, जो सदा छोड़ने का मार्ग होता है, और वे मुझे उस एकमात्र मार्ग से भेज रहे थे जो वास्तव में पहुँचता है, जो रुकने और समाप्त करने का मार्ग है।

मैं उन तक पहुँचने के लिए संसार त्यागना चाहता था। उन्होंने मुझसे कहा कि उन तक पहुँचने के लिए संसार को पूरा करो। और उन दोनों के बीच का अंतर, जिसे मैं 2001 में बिल्कुल न देख सका, वह अंतर है जो अपने जीवन से पवित्रता की ओर भागते एक मनुष्य और यह पाते

एक मनुष्य के बीच है कि पवित्रता समूचे समय उसके जीवन के भीतर ही थी, इस प्रतीक्षा में कि वह छोड़ने का प्रयास करना बंद करे।

मैं इसे न समझा। मैं पूर्णतः ईमानदार रहना चाहता हूँ: मैं निराश होकर लौटा, और मैं निराश रहा, रुक-रुककर, वर्षों तक। मैंने वह जीवन इसलिए जिया क्योंकि उन्होंने मुझे ऐसा कहा था, इसलिए नहीं कि मैं समझता था क्यों, और उसमें कोई लज्जा नहीं — अधिकांश साधना, मेरे अनुभव में, समझ पर किए जाने से बहुत पहले आदेश पर की जाती है। गुरु इसी लिए होता है। वह आपको करने की वस्तु देता है जब आप अभी यह देखने के लिए बहुत छोटे होते हैं कि क्यों, और वह करना धीरे-धीरे आपको उस आकार तक बड़ा कर देता है जिस पर आप अंततः देख सकते हैं।

बीस वर्ष बाद — एक बड़े हो चुके पुत्र के साथ, और उस लंबे श्रम का अधिकांश पीछे छूट जाने के साथ, और यह पुस्तक लिखी जाते हुए — मैं उसे समझता हूँ। या समझने लगता हूँ। अपने पुत्र के विवाह के बाद कोई विलम्ब न था। वह समूची शिक्षा थी, एक विलम्ब के भेस में, ताकि मैं उसे उससे बहस कर पाने से पहले जी लूँ।

उन्होंने उस प्रश्न का उत्तर कभी न दिया जो मैंने पूछा। उन्होंने इसके बजाय उस प्रश्न का उत्तर दिया जो मुझे पूछना चाहिए था, जिसे वे देख सकते थे और मैं नहीं — उसी ढंग से जैसे उन्होंने अभियंता के न्याय-वाक्य का उत्तर एक जीप से दिया था, और बालिका के प्रश्न का मैंने आपको देखा है से, और मन के विषय के मेरे प्रश्न का उसे घोलकर।

मैंने पूछा कि मैं अपना जीवन छोड़कर उनके पास कब आ सकता हूँ।

उन्होंने मुझे, सात शब्दों में, बताया कि आने को कहीं कोई स्थान न था, और छोड़ने को कुछ न था, और कि उन तक का मार्ग हर उस वस्तु के ठीक बीच से जाता था जिससे मैं भागने का प्रयास कर रहा था।

मैं अब भी उस पर चल रहा हूँ।

अध्याय उन्नीस:

वह आदेश जो मैंने नहीं माना

उन्होंने मुझे एक बार एक आदेश दिया, एक छोटा-सा, और मैंने उसका पालन नहीं किया, और आगे जो हुआ उसने मुझे अवज्ञा और अज्ञान के बीच का अंतर सिखाया — और मुझे दिखाया कि वे मुझसे पहले ही जानते थे कि इन दोनों में से मेरा कौन-सा था।

◆

यही वह आधार है। इसे स्मरण रखिए। इस अध्याय की हर वस्तु इस तथ्य पर घूमती है कि मैं प्रेम किया गया था, और यह जानता था, और एक ऐसा आचरण करने ही वाला था मानो एक ही घंटे की शीतलता उसे मिटा सकती हो।

◆

उस संध्या उन्होंने मुझे बताया कि कहाँ सोना है।

मैं वह आदेश न समझा। और यहाँ मेरी विफलता का ठीक-ठीक स्वरूप है, जिसे मैंने उसके बाद कई बार परखा है, क्योंकि वह इतना साधारण और इतना उद्घाटक है। उन्होंने मुझे कोई कारण न दिया। उन्होंने बस मुझसे वहाँ सोने को कहा। और क्योंकि मैं कारण न देख सका, मैंने उस आदेश को अपने ही विवेक के विरुद्ध तौला — और मेरे अपने विवेक ने कहा: यह एक बगीचा है, रात है, कीड़े-मकोड़े होंगे, कुछ मुझे काट सकता है, मैं वहाँ बाहर भूमि पर क्यों सोऊँ जब एक कमरा है।

अतः मैंने कमरा चुना। मैं जाकर उनके बगल वाले कमरे में लेट गया, जहाँ सुरक्षा थी, जहाँ दीवारें रात को बाहर रोके रखती थीं, जहाँ एक समझदार व्यक्ति सोता है।

मैं जो मैंने किया उसके विषय में सटीक रहना चाहता हूँ, क्योंकि इसे अवज्ञा कहना सरल होगा और सरल सटीक नहीं है। मैंने उनकी अवहेलना नहीं की। मैंने यह निश्चय नहीं किया कि उनका आदेश ग़लत है और उसे अस्वीकार कर दिया। मैंने अवज्ञा से कुछ छोटा और

अधिक मानवीय किया: मैंने बस उसे इतनी गम्भीरता से नहीं लिया कि अपनी ही सावधानी को रद्द कर दूँ। मैंने उसे उस वस्तु के बजाय एक सुझाव के रूप में सुना जो वह था। मैंने अपने विवेक को उनके विवेक के स्थान पर रख दिया — विद्रोह में नहीं, बल्कि एक प्रकार की अन्यमनस्क आत्म-रक्षा में, उस मनुष्य की प्रतिवर्ती क्रिया जो, इतने समय के बाद भी, अब भी किसी स्थिति के अपने आकलन पर उस व्यक्ति के वचन से अधिक विश्वास करता था जो उससे आगे तक देखता था।

यह फिर वही जीप थी। यह जनजाति का वह बुद्धिमान व्यक्ति था, जो देख सकने वाली वस्तु से तर्क करके एक ऐसे निष्कर्ष तक पहुँचता था जो सुदृढ़ अनुभव होता था और ग़लत था। मैं कीड़े देख सकता था। मैं कारण न देख सका। अतः मैं कीड़ों के साथ चला गया।

◆

तड़के साढ़े तीन बजे, एक कीड़े ने मुझे काटा। मैं आज तक नहीं जान पाया कि वह क्या था। मेरे पास उसका कोई नाम नहीं — केवल इतना कि उसका काटना गहरा था, और उसने मुझे जगा दिया।

मुझे यह विवरण सदा लगभग असहनीय रूप से सटीक लगा है, और मैं कभी नहीं जान पाया कि इस पर हँसूँ या इससे विनत होऊँ, और मैंने दोनों पर संतोष कर लिया है। मैंने उनके आदेश की अवहेलना विशेष रूप से काटे जाने के भय से की थी। मैंने ठीक इसी से बचने के लिए खुले बगीचे के बजाय सुरक्षित कमरा चुना था। और तड़के साढ़े तीन बजे, सुरक्षित कमरे में, दीवारों के पीछे, समझदारी वाले स्थान में, ठीक वही वस्तु जिससे मैंने स्वयं को बचाया था, मुझे किसी भी तरह ढूँढ़ ही निकाला।

मैं उठा, और मैं बाहर गया।

◆

और वे वहाँ थे।

अपने कमरे के बाहर, अँधेरे में, अपनी खटिया पर — वह छोटी खाट जो बाहर रखी थी — स्वामी जी बैठे थे। जागते हुए। तड़के साढ़े तीन बजे। मानो वे वहीं बैठे रहे हों। मानो वे प्रतीक्षा कर रहे हों, यद्यपि मैं यह दावा नहीं करूँगा, क्योंकि मैं यह नहीं जानता; मैं केवल इतना जानता

हूँ कि मैं अँधेरे में बाहर आया किसी की अपेक्षा न करते हुए, और वे वहाँ थे, जागते हुए, अपनी खाट पर, तड़के के उन घंटों में, और मैं उसमें आ गया।

उन्होंने मुझे देखा। और उन्होंने कुछ नहीं कहा।

◆

सुबह, वे बोले।

उन्होंने कहा: "अब मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा या बताऊँगा।"

अब मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा। अब मैं तुम्हें कोई आदेश नहीं दूँगा।

◆

मैं आपको वर्णन नहीं कर सकता कि वह कैसे आ गिरा, क्योंकि साधारण जीवन में उससे तुलना करने के लिए कुछ भी नहीं है। जिस व्यक्ति के निकट बैठने के लिए आपने एक देश पार किया हो, जिसके हर शब्द को आपने संचित किया हो, जो किसी भी ऐसे व्यक्ति से आगे तक देखता था जिससे आप कभी मिले थे — उससे यह सुनना मैं तुम्हें और कुछ नहीं कहूँगा — डाँटे जाने जैसा न था। वह संसार के उस एक कक्ष पर एक द्वार के बंद होने जैसा था जिसमें आप होना चाहते थे। उन्होंने अपना स्वर ऊँचा न किया था। वे क्रुद्ध न हुए थे, या किसी ऐसे ढंग से नहीं जिसे मैं देख सकूँ। उन्होंने बस, चुपचाप, वह वस्तु वापस ले ली थी जिसका मैं सबसे अधिक मूल्य आँकता था: उनका आदेश, उनका मार्गदर्शन, उनके ज्ञान का मेरी ओर प्रवाह। उन्होंने नल बंद कर दिया था।

और मैं, उस सुबह, ठीक-ठीक समझ गया कि मैंने क्या किया था, और वह मेरी अपनी दृष्टि में उस किसी भी दंड से कहीं बुरा था जो वे रच सकते थे। मुझे उनके अपने सद्गुरु के मंदिर पर एक स्थान दिया गया था — स्वयं उस वंश-परम्परा से निकटता, निःस्वार्थ अर्पित — और मैंने उसे कीड़ों के भय से ठुकरा दिया था। मुझे एक सिद्ध पुरुष का वचन थमाया गया था और मैंने उसे एक कीड़े के मेरे भय के विरुद्ध तौला था और उस भय को भारी पाया था। इसका छोटापन ही इसका समूचा आतंक था। यह नहीं कि मैंने कुछ भयानक किया था, बल्कि यह कि मैंने कुछ इतना छोटा किया था — शारीरिक सावधानी जैसी इतनी तुच्छ वस्तु को उस व्यक्ति के मार्गदर्शन को रद्द करने दिया था जिसे मैंने अपना हृदय दे देने का दावा किया था।

मुझे इसका उतना पछतावा हुआ जितना मुझे विरले ही किसी वस्तु का हुआ है। और मैं उस पछतावे को दिन में इस निश्चय के साथ ढोता रहा कि कुछ टूट गया है जिसे ठीक करना मैं नहीं जानता।

◆

और फिर, दोपहर के सत्र में, वे ठीक वैसे ही थे जैसे वे सदा रहे थे।

स्नेहपूर्ण। गर्मजोश। मुझे अपने पास बुलाते हुए जैसे वे मुझे सदा बुलाते थे। मेरी उपस्थिति से प्रसन्न उस ढंग से जैसे वे सदा उससे प्रसन्न रहे थे। मानो वह सुबह हुई ही न हो। मानो मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा कभी कहा ही न गया हो।

मैं पहले इसे न समझा। मैंने एक ऐसी शीतलता के लिए स्वयं को कस लिया था जिसे सप्ताहों में फिर से अर्जित करना पड़ता; मैंने स्वयं को पुनर्स्थापित विश्वास के एक लंबे प्रायश्चित के लिए तैयार कर लिया था। और इसके बजाय, दोपहर तक, नल बस फिर चालू था, गर्माहट बस उपस्थित थी, समूची बात बस समाप्त थी।

यह समझने में मुझे बहुत समय लगा कि क्या हुआ था, और जब मैं समझा, तो उसने मुझे उस भर्त्सना से कहीं अधिक पूर्णता से उलट दिया।

वे कभी क्रुद्ध हुए ही न थे।

वे मन पढ़ते हैं। मैंने आपको यह इस पुस्तक में बार-बार दिखाया है — वे मेरे पुत्र के विषय में मेरे कहने से पहले जानते थे, वे मेरे प्रश्न समाप्त करने से पहले उनके उत्तर देते थे, वे देखते थे। और जो व्यक्ति मन को सीधे देखता है उसने उस रात मेरा मन देख लिया था, पूर्णतः, और ठीक-ठीक जान लिया था कि मेरी विफलता किस वस्तु से बनी थी। वे जानते थे कि वह अवज्ञा न थी। वे जानते थे कि वह उनका अस्वीकार या उनके वचन की परीक्षा न थी। वे जानते थे कि वह अज्ञान था — उस मनुष्य का सादा, छोटा, अद्वेषपूर्ण अज्ञान जो किसी आदेश का कारण अभी न देख सका और इसलिए अपनी ही सावधानी पर टिक गया। वे जानते थे कि मेरा वह अभिप्राय न था। वे जानते थे कि वह छोटापन था, पाप नहीं।

और क्योंकि वे यह जानते थे, क्षमा करने को कुछ था ही नहीं — उस ढंग से नहीं जिस ढंग से हम प्रायः क्षमा का अर्थ लेते हैं, जो किसी वास्तविक चोट का श्रमपूर्वक किनारे रखा जाना

है। कोई चोट थी ही नहीं। वहाँ केवल एक शिष्य था जिसने अपनी ही समझ के छोर से आगे विश्वास करना अभी सीखा न था। अतः उन्होंने मुझे दंड देकर फिर नरमी नहीं दिखाई। उन्होंने कुछ कहीं अधिक सटीक किया। उन्होंने मुझे ठीक इतना परिणाम दिया कि मैं उसे अनुभव कर लूँ — बंद द्वार की एक सुबह, इस बात का एक स्वाद कि उनके मार्गदर्शन को गँवा देना कैसा होगा — और फिर, जिस क्षण वह शिक्षा उतरी, उन्होंने उसे पूर्णतः हटा लिया, क्योंकि उसका समूचा प्रयोजन सिखाना था, घायल करना नहीं, और उसने सिखा दिया था, और इसलिए वह समाप्त हो गया।

◆

यही वह वस्तु है जिसे मैं सबसे अधिक चाहता हूँ कि आप उनके विषय में देखें, और यही कारण है कि एक अनजान कीड़े और एक बगीचे का यह छोटा प्रसंग बीस से अधिक वर्षों तक मेरे साथ रहा है।

उनका प्रेम मेरे आज्ञापालन पर सशर्त न था। मैंने मान लिया था कि वह था — मैंने, जैसे हम सब मान लेते हैं, मान लिया था कि गुरु को विफल करना गुरु के प्रेम को जोखिम में डालना है, कि वह गर्माहट अच्छे आचरण का पुरस्कार है और बुरे के लिए वापस ली जा सकती है। और उन्होंने मुझे, एक ही दिन के अंतराल में, दिखाया कि यह बिल्कुल ऐसे काम नहीं करता। उस सुबह का हटाया जाना उनके प्रेम का रोका जाना न था। उनका प्रेम कभी न डगमगाया था; वह डगमगा नहीं सकता था; वह उस प्रकार की वस्तु न थी। वह हटाया जाना एक उपकरण था — एक शिक्षण-औज़ार, जान-बूझकर उठाया गया, सटीकता से उपयोग किया गया, और जिस क्षण उसने अपना काम कर लिया उसी क्षण फिर रख दिया गया। उन्होंने मुझे अपने मार्गदर्शन की हानि अनुभव करने दी ताकि मैं अपनी ही असावधानी की क़ीमत सीख लूँ। और फिर उन्होंने वह मार्गदर्शन वापस दे दिया, क्योंकि उन्होंने अपने हृदय में उसे वास्तव में कभी हटाया ही न था; उन्होंने बस मुझे, कुछ घंटों के लिए, उस अनुपस्थिति का आकार दिखाया था, ताकि मैं उपस्थिति का मूल्य आँकूँ।

एक ऐसा व्यक्ति जो केवल आहत होता, तब तक शीतल रहता जब तक मैं उसकी भरपाई न कर देता। एक ऐसा व्यक्ति जो आध्यात्मिकता का अभिनय कर रहा होता, आज्ञापालन पर एक व्याख्यान दे देता। केवल एक विशेष प्रकार का गुरु ठीक एक सुबह का परिणाम देता है,

शिक्षा के ठीक भार के अनुरूप अंशांकित, जिस क्षण वह उतरता है उसी क्षण उसे हटा लेता है, और दोपहर तक अखंडित प्रेम पर लौट आता है — क्योंकि उसने मन पढ़ा, अज्ञान को जो वह था वही देखा, जान लिया कि दंडित करने को कुछ था ही नहीं, और वह सदा केवल सिखा ही रहा था।

मैंने फिर कभी मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा न सुना। उन्होंने मुझे बहुत-सी बातें बताईं, कई और वर्षों तक। किन्तु मैं वह सुबह कभी न भूला जब उन्होंने वह कहा, या वह दोपहर जब उन्होंने उसे वापस लिया, और मुझे लगता है कि मैंने उन कुछ घंटों से लगभग हर उस वस्तु से अधिक सीखा जो उन्होंने कभी मुझे शब्दों में समझाई — क्योंकि उस दिन उन्होंने मुझे जो सिखाया उसे उन्होंने बिल्कुल समझाया ही नहीं। उन्होंने बस उसे किया, सटीकता से, प्रेम के साथ, और उस करने को सिखाने दिया।

मैंने, तब से, उनके आदेशों का पालन उन्हें समझने से पहले करने का प्रयास किया है। मैं सदा सफल नहीं होता। किन्तु मैं अब उनके वचन को काटे जाने के अपने भय के विरुद्ध नहीं तौलता।

अध्याय बीस:

दर्पण में सद्गुरु

कुछ वर्षों का एक ऐसा दौर आया जब मैं कभी-कभी उन्हें, स्वप्नों में, एक ऐसी अवस्था में देखता जिसका वर्णन करते हुए मुझे लगभग लज्जा आती है — एक वृद्ध व्यक्ति अशोभनीय व्यथा में, उनका शरीर उन्हें उन छोटे, अपमानजनक ढंगों से धोखा देता हुआ जिन ढंगों से शरीर धोखा देते हैं। और मैं भय में जागता, और आश्रम में फ़ोन करता, और पाता कि वे पूर्णतः स्वस्थ हैं। यह समझने में मुझे बहुत समय लगा, और एक साधु के सादे शब्द लगे, कि ये स्वप्न उनके विषय में थे ही नहीं।

◆

मैंने आपको बताया है कि मेरे स्वप्न, कुल मिलाकर, साधारण स्वप्न न थे — कि उनमें से कुछ संदेशों की भाँति आते थे, और कि मैंने, वर्षों में, उन पर ध्यान देना सीख लिया था। यह सत्य है, और यही इस पुस्तक का कारण है। किन्तु मैंने आपको उस दूसरे प्रकार के विषय में, विचलित कर देने वाले प्रकार के विषय में, अभी नहीं बताया, और मैं आपको अब बताऊँगा, क्योंकि उन्होंने मुझे उनके विषय में — और स्वयं अपने विषय में — कुछ ऐसा सिखाया जो वे प्रकाशमान स्वप्न न सिखा सके।

और उन अवधियों में, दो वस्तुएँ एक साथ होतीं।

पहली यह कि उनका रूप मेरे भीतरी जीवन से मिटने लगता। जब मैं साधना कर रहा होता, तो वे मेरे लिए उपस्थित होते — शारीरिक रूप से नहीं, बल्कि उस भीतरी ढंग से, एक अनुभूत निकटता, वस्तुओं के छोर पर उनका एक बोध। जब मैं रुक जाता, तो वह निकटता पतली होती और फिर चली जाती। मैं, कुछ दिनों बाद, लक्षित करता कि मैंने उन्हें कुछ समय से अनुभव नहीं किया, और उसे एक लक्षण के रूप में पहचानता, उसी ढंग से जैसे आप पहचानते हैं कि आपने किसी के विषय में नहीं सोचा है और सोचते हैं कि इसका क्या अर्थ है।

और दूसरी यह कि मैं उन्हें व्यथा में देखता।

◆

मैं इन स्वप्नों का वर्णन सादगी से और संक्षेप में करूँगा, क्योंकि उनका समूचा मर्म यही है कि वे शोभनीय न थे और मुझे उन्हें सजाना नहीं है, और इसलिए भी कि उन पर ठहरना ठीक ग़लत वस्तु होगी।

मैं इनसे वास्तविक व्यथा में जागता। भयभीत। तड़के के घंटों के अतार्किक निश्चय में, निश्चित कि उनके साथ कुछ अनिष्ट है — कि वे रुग्ण हैं, कि वह स्वप्न एक चेतावनी है, कि मुझे जानना आवश्यक है कि वे सुरक्षित हैं। और मैं आश्रम में फ़ोन करता जैसे ही कोई उचित घंटा होता, और साधुओं में से एक तक पहुँचता, और उनके स्वास्थ्य का हाल पूछता।

◆

मुझे उस व्यक्ति का नाम लेना चाहिए जो उन दूरभाष-वार्ताओं के दूसरे छोर पर होता था, क्योंकि वे इस पुस्तक में बहुत लम्बे समय तक अनाम रहे हैं और वर्षों तक मेरे सद्गुरु तक मेरी समूची पहुँच वही थे।

हम उन्हें बिल्लू बाबा कहते थे। वे सकतेशगढ़ में रहते थे, और उन दिनों उन्हीं का दूरभाष मुझे स्वामीजी से जोड़ता था — देश के आर-पार, जब भी मुझे ऐसे व्यक्ति तक पहुँचना होता जिसे स्वयं दूरभाष से कोई प्रयोजन न था। यदि आपने यह पुस्तक कुछ भी ध्यान से पढ़ी है तो आप समझ जाएँगे कि इसका क्या अर्थ है। सद्गुरु को कष्ट में देखने वाले स्वप्न के बाद रात के छोटे पहरों में की गई प्रत्येक घबराई हुई कॉल; वह प्रत्येक प्रश्न जिसे मैं यात्रा कर पाने तक थाम न सका; उन समस्त वर्षों में वह प्रत्येक बार जब मुझे उनकी वाणी सुननी थी और मैं उन तक जा नहीं सकता था — वह सब सकतेशगढ़ के एक साधु से होकर गया, जो फ़ोन उठाते, सुनते, उसे उन तक ले जाते, और एक बार भी मुझे यह अनुभव न होने देते कि मैं उपद्रव हूँ — जो मैं निश्चय ही था।

किसी भी महान व्यक्ति के इर्द-गिर्द ऐसे लोगों की एक पूरी श्रेणी होती है, और वे रचना से भी और अपनी इच्छा से भी अदृश्य रहते हैं। वे कहानियों वाले शिष्य नहीं होते। वे वे होते हैं जो

उत्तर देते हैं, ले आते हैं, प्रबंध करते हैं, द्वार पर खड़े रहते हैं — और जो कभी किसी के विवरण में नहीं आते कि क्या हुआ था। बिल्लू बाबा मेरे विवरण में हैं।

अब वे स्वामीजी के किसी एक आश्रम का प्रबंध देखते हैं। मैंने उन्हें पंद्रह वर्षों से नहीं देखा। मैं उनका नाम यहाँ कृतज्ञता के साथ अंकित करता हूँ और कुछ संकोच के साथ भी, क्योंकि जिस व्यक्ति ने आपको दूरभाष थमाया हो, उसे धन्यवाद देने में मनुष्य को पंद्रह वर्ष नहीं लगाने चाहिए।

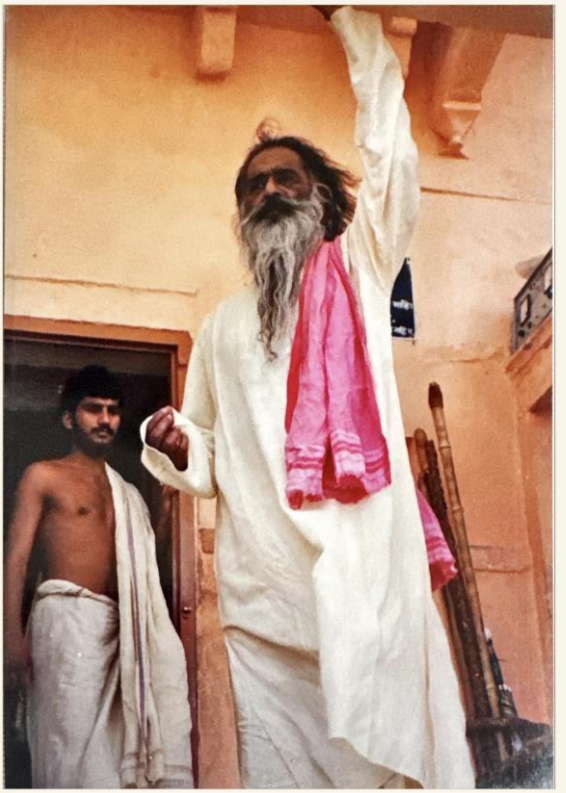

On the porch at Sakteshgarh; Billu Baba behind him.

◆

और हर बार — हर एक बार — वे पूर्णतः स्वस्थ होते। बिल्कुल ठीक। उनके साथ कुछ भी अनिष्ट न होता।

◆

यह मुझे बहुत समय तक उलझाता रहा, और यह मुझे भयभीत करता, और मैं इसका कोई अर्थ न निकाल पाता। प्रकाशमान स्वप्नों को मैं कम-से-कम उपहारों के रूप में समझ सकता था, तब भी जब मैं उन्हें अर्थ न दे पाता। किन्तु ये कुछ और थे। मैं उस व्यक्ति को, जिसे मैं सबसे अधिक प्रेम करता था, अवनति की अवस्थाओं में क्यों देखूँ? वह किस प्रकार का संदेश था? वह मुझे किस बात की चेतावनी दे रहा था, यदि उनके स्वास्थ्य की नहीं, क्योंकि उनका स्वास्थ्य सदा ठीक होता?

और उस साधु ने मुझे वह बात बताई जिसने इसके विषय में मेरी समूची समझ को पुनर्व्यवस्थित कर दिया कि ये स्वप्न क्या थे।

उसने कहा: जब तुम अपने सद्गुरु को ऐसी अवस्था में देखते हो, तो वह तुम्हारा सद्गुरु नहीं जिसे तुम देख रहे हो। जिस सद्गुरु को तुम भीतर देखते हो वह तुम्हारी अपनी आत्मा है। गुरु और आत्मा एक हैं। स्वप्न तुम्हें उनकी अवस्था नहीं दिखा रहा। वह तुम्हें तुम्हारी दिखा रहा है।

◆

मैं इस पर ठहरना चाहता हूँ, क्योंकि यह उन सबसे महत्वपूर्ण बातों में से एक है जो मुझसे कभी कही गईं, और यह उस प्रश्न का मौन उत्तर है जिसे एक सावधान पाठक इस समूची पुस्तक में ढोता आया हो सकता है।

वह प्रश्न यह है: क्या यह सब एक प्रकार की मूर्तिपूजा नहीं है? एक ऐसा व्यक्ति जो अपने गुरु का स्वप्न देखता है, अपने गुरु के विषय में फ़ोन करता है, अपने भीतरी जीवन को अपने गुरु के चारों ओर संगठित करता है, अपने समूचे अस्तित्व को एक अकेले मनुष्य के चारों ओर व्यवस्थित करता है — क्या वह ठीक वही किसी व्यक्ति में महत्व का जमाव नहीं जिसे मैंने स्वयं, संशयवादी अभियंता ने, इस पुस्तक के प्रथम पृष्ठों में ही समूची गुरु-पूजा के तंत्र के रूप में निदान किया था? क्या मैं बस वही वस्तु नहीं बन गया था जिसे मैंने कभी समझा-बुझाकर किनारे किया था — एक ऐसा व्यक्ति जिसने एक खाट पर बैठे वृद्ध व्यक्ति की एक मूर्ति बना ली थी?

और उत्तर, इन अशोभनीय स्वप्नों और एक साधु के सादे शब्दों के माध्यम से मुझ तक पहुँचाया गया, यह था: नहीं। क्योंकि भीतर का सद्गुरु वह मनुष्य नहीं है। भीतर का सद्गुरु आपकी अपनी गहनतम आत्मा है, उस मनुष्य का चेहरा पहने हुए क्योंकि वही चेहरा आपके प्रेम ने उसे दिया है। जब मैं स्वामी जी का स्वप्न देखता था, तो मैं उत्तर प्रदेश में किसी ऐसे व्यक्ति का स्वप्न नहीं देख रहा था जिसका स्वास्थ्य मुझे जाँचना आवश्यक था। मैं उस एकमात्र भाषा में स्वप्न देख रहा था जो मेरे भीतर के पास थी — उनके चेहरे की भाषा में — अपनी अपनी आत्मा की अवस्था के विषय में। और जब मैं अपनी साधना को शिथिल पड़ने देता, जब मैं बैठना और देखना बंद कर देता और संसार को उस अनुशासन को भीड़ में दबा देने देता, तो मेरी आत्मा एक प्रकार की अवनति में गिर जाती — उपेक्षित, अनदेखी, शरीर की माँगों में धँसी हुई — और मेरा भीतर मुझे वह अवनति उस एकमात्र ढंग से दिखाता जिस ढंग से वह दिखा सकता था: उस प्रिय चेहरे के रूप में, व्यथा में गिरा हुआ।

वह स्वप्न एक दर्पण था। वह सदा एक दर्पण रहा था। वह व्यथा उनकी न थी। वह मेरी थी। वह विफल होता शरीर उनका शरीर न था; वह मेरी अपनी उपेक्षित साधना की अवस्था थी, मेरी अपनी आत्मा जो मात्र भौतिक में धँस गई थी, मुझे उस रूप में वापस दिखाई गई जिस रूप को अनदेखा करने से मेरा प्रेम सबसे अधिक इनकार करता। मैं अपनी अपनी अवनति के एक स्वप्न को कंधे उचकाकर टाल देता। मैं उन्हें व्यथा में देखने के एक स्वप्न को टाल न सकता — और इसलिए मेरी अपनी गहराइयों ने उनका चेहरा उपयोग किया, ठीक इसलिए कि वह वह एकमात्र चेहरा था जो मुझे दूरभाष की ओर दौड़ा देता, अर्थात्, उस साधना की ओर वापस दौड़ा देता जिसे मैंने छोड़ दिया था।

◆

एक बार जब मैं यह समझ गया, तो उन स्वप्नों ने अपना स्वरूप पूर्णतः बदल लिया, यद्यपि वे रुके नहीं। वे एक मापक बन गए। एक विश्वसनीय मापक। जब मैं उन्हें व्यथा में देखता, तो मैं अब उनके स्वास्थ्य का हाल पूछने आश्रम में फ़ोन नहीं करता, क्योंकि मैं सीख चुका था कि उनका स्वास्थ्य विषय न था। इसके बजाय मैं अपनी अपनी साधना का हाल पूछता — और सदा, जब मैं ईमानदारी से देखता, मैं पाता कि मैंने उसे फिसलने दिया है, कि वह बैठना शिथिल पड़ गया है, कि मैं कुछ दिनों या सप्ताहों से पूर्णतः स्वयं की सतह पर जी रहा हूँ। वह

स्वप्न उनके विषय में कोई चेतावनी न था। वह मेरे भीतर ढोए एक उपकरण से एक पाठ था, और वह उपकरण सटीक था, और वह मुझे माप रहा था।

और यही, मैं देखने आया, उस मूर्तिपूजा के विरुद्ध अंतिम रक्षा थी जिससे मैं भयभीत था। क्योंकि इन स्वप्नों की समूची वास्तुकला मुझे, बार-बार, उस मनुष्य से दूर और अपनी अपनी आत्मा और अपनी अपनी साधना की ओर वापस मोड़ती थी। यहाँ तक कि उनके प्रति मेरी श्रद्धा, यहाँ तक कि मेरा प्रेम, यहाँ तक कि वे स्वप्न जिनमें वे प्रकट होते — वह सब, अंततः, मुझे स्वयं की ओर, उस कार्य की ओर जिसे केवल मैं कर सकता था, एक शांत कक्ष में अपनी ही श्वास के देखने की ओर लौटाने का तंत्र था। वे कभी, गहनतम अर्थ में, गंतव्य न थे। वे वह चेहरा थे जिसे मेरी अपनी गहराइयाँ मुझे घर बुलाने के लिए पहनती थीं।

मैंने आपको देखा है, उन्होंने मेरी पुत्री से कहा था। और यहाँ वही शिक्षा थी, दूसरी दिशा से पहुँचती हुई, मेरे सबसे बुरे स्वप्नों के पिछले द्वार से: कि जिस ईश्वर को मैं उनमें खोज रहा था वह मेरी अपनी आत्मा थी, कि भीतर का गुरु और भीतर की आत्मा एक हैं, कि उनके प्रति मेरी भक्ति भी, अपने मूल में, आत्मा का आत्मा को उस एकमात्र स्वर में पुकारना था जिसका मैं उत्तर देता।

◆

मैंने बहुत लोगों को इन स्वप्नों के विषय में कभी नहीं बताया, क्योंकि वे अशोभनीय हैं और क्योंकि उन्हें ग़लत समझना सरल है। किन्तु वे इस पुस्तक के हैं, और ठीक यहीं के हैं, क्योंकि वे उस हर प्रकाशमान वस्तु का ईमानदार प्रतिभार हैं जिसका मैंने वर्णन किया है। यह एक प्रकार का झूठ होगा कि मैं आपको केवल वह श्वेत प्रकाश और वह पूर्वज्ञान और बच्चों को दिए वे कोमल उत्तर दूँ, और उन रातों को छोड़ दूँ जब मैं अपने सद्गुरु के स्वयं को मलिन करते चित्रों से भयभीत होकर जागा, और घबराहट में फ़ोन किया, और मुझे कोमलता से बताया गया कि मैं समूचे समय एक दर्पण में देख रहा था।

वह भी शिष्यत्व है। केवल पर्वत-शिखर और संगमरमर का गर्भगृह नहीं। तड़के तीन बजे का वह भय भी, वह अशोभनीय चित्र, वह लज्जाजनक फ़ोन-कॉल, और वह धीमी, विनत कर देने वाली समझ कि वह स्वप्न सद्गुरु की पूर्णता के विषय में नहीं बल्कि शिष्य की उपेक्षा के

विषय में था — और कि वे दोनों, उस स्थान पर जहाँ गुरु और आत्मा एक हैं, कभी उतने अलग न थे जितना मैंने सोचा था।

◆

किन्तु मैं आपको एक झूठा संतुलन दूँगा यदि मैं इसे वहीं छोड़ दूँ, उन भयावह स्वप्नों पर, क्योंकि उन्हीं वर्षों में अन्य स्वप्न भी थे जो बिलकुल भयावह न थे — जो, अपने शांत ढंग से, उन सबसे महत्वपूर्ण संदेशों में से थे जो मैंने कभी पाए, और जिन्हें मैं तभी समझ सका जब उन्होंने मुझे उनका अर्थ बताया।

मैं आपको दो दूँगा।

पहला शायद उनसे मिलने के दो वर्ष बाद आया, एक ऐसे दौर में जब मैं अपने कार्य में अप्रसन्न था — उसके दबाव से थका हुआ, दूसरों की समस्याएँ पैसे के लिए हल करते बीते जीवन की उस विशिष्ट थकान से — और मैंने, गम्भीरता से और निजी रूप से, बाहर निकलना चाहना शुरू कर दिया था। मैं संसार छोड़ना चाहता था। मैं कैरियर और प्रयास और संघर्ष की समूची व्यवस्था नीचे रखकर जाना और स्वामी जी के निकट रहना चाहता था, और उस निकटता को अपना जीवन बनने देना चाहता था। इसी मनःस्थिति में वह स्वप्न आया।

वे एक घर की बरामदे में बैठे थे — एक साधारण, मध्यमवर्गीय, स्वतंत्र मकान, वैसा जैसा कोई भला परिवार बनाता है और जिस पर गर्व करता है — और बरामदा ऊँचा था, ताकि वे एक ऊँचाई पर बैठे थे। जो लोग उन्हें देखने आए थे वे नीचे बैठे थे, शायद तीन फुट नीचे, ज़मीन पर। मैं सामने था, उनके सबसे निकट। और जैसे मैं देखता रहा, उन्होंने मेरे हाथों में काले अंगूर उँडेलने शुरू कर दिए — उँडेलते और उँडेलते, मेरे दो हाथों में समा सकने से कहीं अधिक, ताकि वे उमड़कर छलक पड़े, और मैं जो बटोर सका बटोरने के लिए हड़बड़ाया, और सब न बटोर सका, और नीचे के लोगों ने वह बटोर लिया जो मुझसे गिरा।

मैंने उनसे इसके विषय में पूछा, लगभग एक सप्ताह बाद। और उन्होंने मुझे बताया।

काले अंगूर भौतिक सम्पदा हैं, उन्होंने कहा। श्वेत अंगूर भीतरी, दिव्य सम्पदा हैं। पहले तुम बहुत भौतिक सम्पदा कमाओगे — इतनी कि वह तुम्हारे अपने हाथों से उमड़ पड़े, और

उससे औरों का भी निर्वाह होगा। फिर, उसके बाद, तुम श्वेत अंगूरों की ओर बढ़ोगे। तुम भीतरी सम्पदा की ओर बढ़ोगे।

मैं चाहता हूँ आप लक्षित करें कि उन्होंने क्या नहीं किया। उन्होंने संसार से भागने के इच्छुक एक मनुष्य से यह नहीं कहा कि भागना ही मार्ग है। उन्होंने मेरे संन्यास को आशीर्वाद नहीं दिया। उन्होंने, वस्तुतः, मुझसे कहा कि मैं अभी संसार से समाप्त नहीं हुआ हूँ — कि कुछ भौतिक सम्पदा है जिसे मुझे कमाना और वितरित करना है, कि यह भी मार्ग का भाग है, और कि भीतरी सम्पदा अपने क्रम में आएगी, उसके बाद, उसके बदले नहीं। यह अपने ही जीवन को लाँघने की जल्दी में पड़े एक मनुष्य का सबसे कोमल सम्भव सुधार था। रुको, स्वप्न ने कहा। पहले काला फल बटोरना है, और वह अकेले तुम्हारा नहीं है; तुम्हारे हाथों से जो छलकता है उससे और लोग भी खाते हैं। श्वेत आएगा। वह सदा आता है, उनके लिए जो पहला भाग ईमानदारी से करते हैं।

मैंने संसार नहीं छोड़ा। मैंने उस स्वप्न के विषय में उन दशकों में बहुत बार सोचा है, प्रायः तब जब मेरे हाथ सबसे भरे हुए थे।

दूसरा स्वप्न छोटा था, और उसने मुझे थोड़ा भयभीत किया, और उसका अर्थ मेरे साथ एक ऐसी चेतावनी के रूप में रहा है जिससे मैं कभी पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ।

मेरी पुत्री — तब छोटी — उस भवन की छत पर खेल रही थी जहाँ स्वामी जी पहली बार हमसे मिलने आए थे, वह चार मंज़िला भवन बिना किसी लिफ़्ट के, उन सारी सीढ़ियों के ऊपर। वह ऊपर छत पर थी, सबसे ऊपर, खेलती हुई। और स्वप्न में वह गिरी। वह भवन की समूची ऊँचाई से गिरी, नीचे भूतल तक — और फिर वह उठ खड़ी हुई, और चलने लगी, और ऐसे चली गई मानो कुछ हुआ ही न हो।

मैंने उनसे पूछा कि इसका क्या अर्थ है।

पुत्री तुम्हारी लौ है, उन्होंने कहा — तुम्हारी दिव्य दृष्टि, तुम्हारी आध्यात्मिक तल्लीनता का वह महीन तंतु, वह भीतरी दर्शन जो तुम्हें दिया गया है। स्वप्न में वह गिर गई है। किन्तु देखो — वह अब भी जीवित है। वह उठती है; वह चलती है। वह मरी नहीं है। किन्तु वह गिरी है, और तुम्हें सावधान रहना होगा।

मैं सावधान रहा हूँ। या मैंने रहने का प्रयास किया है। एक ऐसा मनुष्य जिसे, उस एकमात्र भाषा में जिससे वह तर्क नहीं कर सकता, यह बताया गया हो कि उसके पास जो सबसे मूल्यवान क्षमता है वह गिरी है और बच गई है — कि वह जीवित है किन्तु उसकी रक्षा की जानी चाहिए — वह इसे सहज ही नहीं भूलता। लौ कोई ऐसी वस्तु नहीं जो आपको एक बार दे दी जाए और आप उसे अधिकार से रखें। वह गिर सकती है। जब आप कहीं और व्यस्त हों तब वह किसी छत के किनारे से उपेक्षित होकर गिर सकती है। वह बची रही, मेरे स्वप्न में और मेरा विश्वास है मेरे जीवन में भी; किन्तु उन्होंने मुझे उसके बचे रहने को स्वतःसिद्ध मानने नहीं दिया, और मैंने भी नहीं माना।

तो दो स्वप्न, उन भयावह स्वप्नों के साथ रखने के लिए। एक जिसने जल्दी में पड़े एक मनुष्य से कहा कि श्वेत की ओर हाथ बढ़ाने से पहले काला फल बटोरो और रुको। एक जिसने लापरवाह हो चले एक मनुष्य से कहा कि उस गिरी हुई, चलती हुई वस्तु की रक्षा करो जो उसकी अपनी भीतरी दृष्टि थी। न ही मृत्यु के विषय में था। दोनों इस विषय में थे कि कैसे जिया जाए — जो कि, मैं सोचने लगा हूँ, वह है जिसके लिए स्वप्न अधिकतर थे।

अध्याय इक्कीस:

वह भाषा जो उन्होंने मुझे सिखाई

वर्षों में उन्होंने मुझे कुछ ऐसा दिया जिसका मैंने अभी वर्णन नहीं किया, और वही कारण है कि मैं अपने ही कुछ स्वप्नों को उनसे कभी पूछे बिना पढ़ सका: एक शब्दावली। संगतियों का एक समुच्चय — यह बिम्ब उसका अर्थ है, वह प्राणी इसका प्रतीक है — जिससे स्वप्नों की भाषा तक, यदि ठीक-ठीक अनूदित न भी की जा सके, तो कम-से-कम उस तक पहुँचा तो जा सके। मैं इसे सावधानी से अंकित करना चाहता हूँ, क्योंकि इसे सरलता से किसी सस्ती वस्तु समझ लिया जाता है, और यह सस्ती न थी।

◆

मुझे पहले यह बता देने दीजिए कि यह क्या न थी, क्योंकि वह ग़लतफ़हमी इतनी सहज ही हाथ आ जाती है।

वास्तव में, इसका अधिकांश उन्होंने मुझे निजी रूप से दिया ही न था। उन्होंने इसे अपने प्रवचनों में सिखाया — कबीर की अपनी व्याख्याओं में, अमृतवाणी में, जहाँ वह कवि-संत निरंतर ठीक इसी प्रकार के सांकेतिक बिम्ब में बोलते हैं, वह समूची परम्परा एक विशाल प्रतीकात्मक भाषा होते हुए जिसमें पक्षी और पशु और नदियाँ और वस्त्र और सिक्के आत्मा की अवस्थाओं के प्रतीक हैं। कबीर वास्तविक जुलाहों और वास्तविक धागे के विषय में नहीं लिखते; वे आत्मा और उसकी अवस्था के विषय में लिखते हैं, करघे की शब्दावली में। कबीर को पढ़ना ही यह सीखना है कि परम्परा सदा जानती रही है कि गहनतम वस्तुएँ सीधे नहीं कही जा सकतीं और उन्हें बिम्बों में ढोया जाना चाहिए। स्वामी जी, कबीर की व्याख्या करते हुए, उस समूचे प्रतीकात्मक संसार का व्याकरण सिखा रहे थे — और मैं, सुनते हुए, अपनी ही रातों की कुंजी थमाया जा रहा था।

अतः वह दोनों थी। एक सार्वजनिक शिक्षा, पाँच शताब्दी पुरानी एक संत की कविता में जड़ी हुई, इस विषय में कि भीतर की भाषा कैसे काम करती है। और, क्योंकि मैं उनके पास अपने

विशिष्ट स्वप्न लाता था और वे कभी-कभी उत्तर देते, उस भाषा का उस विशिष्ट बोली के अनुरूप एक निजी अंशांकन जो संयोगवश मेरी अपनी आत्मा बोलती थी।

◆

यहाँ उस शब्दावली में से कुछ है, जैसे मैंने उसे पाया। मैं उसे सादगी से देता हूँ, और फिर मैं बताऊँगा कि वह जितनी दिखती है उससे अधिक गम्भीर क्यों है।

गरुड़ ईश्वर है — या एक दिव्य, रक्षा करने वाली शक्ति। जब गरुड़ प्रकट होता है, तो ऊपर से कुछ, उच्चतर व्यवस्था का कुछ, दृश्य में प्रवेश कर चुका है।

कारें जीवन हैं। आपकी अपनी कार आपका अपना जीवन है; किसी और की कार उस व्यक्ति का जीवन है। और जो कार के साथ होता है वह उस जीवन के साथ होता है — एक दुर्घटना, एक ख़राबी, गाड़ी का पीछे की ओर जाना जब उसे आगे जाना चाहिए, गाड़ी का आपके नियंत्रण से बाहर निकल जाना: इनमें से प्रत्येक उस जीवन के विषय में एक कथन है जिसका वह प्रतीक है, न कि किसी वास्तविक गाड़ी चलाने के विषय में।

सड़क का कुत्ता — वह आवारा, वह जो आपको काटता है या आपके चारों ओर चक्कर लगाता है — दूसरों का कर्म है, बाहर से आप तक पहुँचता हुआ, अन्य लोगों के कर्मों के परिणाम आपके जीवन में आते हुए। वह कुत्ता जो आपका अपना है, आपका पालतू, आपका अपना कर्म है, वे परिणाम जो आपने स्वयं उत्पन्न किए हैं और जिनके बीच आपको रहना है।

ऊँट एक बची हुई इच्छा है — एक वृत्ति, ठीक उसी शब्द में जो उन्होंने प्रयोग किया: मन की एक अवशिष्ट प्रवृत्ति, एक चाह जो अभी भस्म नहीं हुई और इसलिए किसी जीवन के किनारे भटकती रहती है, उसके पीछे-पीछे चलती हुई। जब कोई ऊँट प्रकट होता, तो वह कोई पशु न था; वह मुझमें कोई ऐसी वस्तु थी जो अभी समाप्त न हुई थी, कुछ जो अभी अग्नि को दिया जाना शेष था। मैं ऊँट के विषय में आगे और कहूँगा, इस पुस्तक के अंत के निकट, क्योंकि यह पता चलता है कि जिस महानतम व्यक्ति को मैं कभी जान पाया उनका अपना एक ऊँट था — और उनका ऊँट क्या था, और उसने उन्हें किस ओर प्रेरित किया, यह समूची कथा

की सबसे विस्मयकारी वस्तुओं में से एक है। किन्तु भाषा के एक पद के रूप में, इसका अर्थ यही था: एक इच्छा जो अभी खड़ी है, अभी चक्कर लगा रही है, अभी छोड़ी नहीं गई।

फिर लोग थे। और यहाँ शब्दावली सबसे अंतरंग हो जाती थी, क्योंकि जो आकृतियाँ किसी मनुष्य के स्वप्नों को भरती हैं वे वही लोग हैं जिन्हें वह प्रेम करता है, और स्वामी जी ने उनमें से हर एक को आत्मा की एक अवस्था के रूप में पढ़ा। पुत्र परम लक्ष्य है — भगवान, आत्मा, वह उच्चतम वस्तु जिसकी ओर एक जीवन बढ़ रहा है। पत्नी इष्टोन्मुखी प्रवृत्ति है, आत्मा की अपनी वह प्रवृत्ति जो दिव्य आदर्श की ओर मुड़ी हुई है, मनुष्य में वह क्षमता जो उसकी आराध्य वस्तु की ओर झुकती है। पिता प्रारब्ध है — वह भाग्य जो पहले ही परिपक्व हो चुका, कर्म का वह अंश जो इस जीवन में फल देने लगा है और जिसे अब अस्वीकार नहीं किया जा सकता। भाई सम्बद्ध कर्म है, परिवार और रक्त के बंधन, वे परिणाम जिनमें कोई अपनेपन के कारण उलझा होता है। और मगर — मैंने उसका उल्लेख किया है, और उस पर लौटूँगा — काल है, स्वयं समय, वह भक्षक, वह जो जल में प्रतीक्षा करता है।

और एक और था जिसे मैंने चुपचाप अंकित किया, क्योंकि पहली बार समझने पर उसने मुझे विचलित किया था। स्वप्न में अपने गुरु को रुग्ण देखना गुरु के विषय में है ही नहीं। गुरु रुग्ण नहीं होते। इसका अर्थ है कि आप रुग्ण हैं — कि आपका अपना मन, आपकी अपनी आत्मा, किसी रुग्णता से, आपकी साधना या आपकी अवस्था में किसी विकार से गुज़र रही है। वह बिम्ब उस चेहरे को उधार लेता है जिसका आप सबसे अधिक आदर करते हैं, ताकि आपको, बिना किसी भ्रम के, यह बता सके कि आपमें कुछ अस्वस्थ है और उसे संभाल की आवश्यकता है। एक स्वप्न उस व्यक्ति का प्रयोग करेगा जिसे आप अनदेखा नहीं कर सकते, ताकि वह संदेश पहुँचा सके जिसे आप अन्यथा सुनने से इनकार कर देते।

और इसी प्रकार आगे। और भी था, और और भी है जिसे मैं जोड़ता जाऊँगा जैसे-जैसे मुझे स्मरण आएगा, किन्तु इस वस्तु का आकार दिखाने के लिए ये पर्याप्त हैं।

◆

अब — यह, अंततः, रेलवे-स्टॉल की स्वप्न-पुस्तिका क्यों नहीं है? मैं यह क्यों बल देता हूँ कि यह गम्भीर थी?

तीन कारण, और वे महत्वपूर्ण हैं।

पहला संगति है। उनकी शब्दावली में एक प्रतीक का अर्थ वही होता था जो उसका अर्थ था, चाहे वह स्वप्न कैसा भी अनुभव हुआ हो। कार एक जीवन थी चाहे उसका स्वप्न मधुर हो या भयावह; गरुड़ दिव्य था चाहे उसने मुझे सांत्वना दी हो या भयभीत किया हो। यह उस अभिलाषापूर्ण व्याख्या के विपरीत है जिस पर एक संशयवादी — जिस पर मैं, वह संशयवादी — सही ही संदेह करता, जिसमें कोई मनुष्य अपने स्वप्नों में वही पढ़ लेता है जिसकी वह पहले से आशा या भय कर रहा था। एक निश्चित शब्दावली, हर बार एक ही ढंग से लागू की गई, प्रक्षेपण नहीं है। वह अनुवाद है। और अनुवाद जाँचा जा सकता है: मैं एक ऐसा स्वप्न ले सकता था जो मुझे पसंद न हो, और उसे कुंजी से पढ़ सकता था, और एक ऐसे अर्थ तक पहुँच सकता था जो मैं नहीं चाहता था — जो ठीक वही है जो उस मगर के साथ हुआ, जैसा मैं आपको अगले अध्याय में बताऊँगा। एक ऐसी संकेत-पुस्तिका जो आपको ऐसे उत्तर देती है जो आप पाना नहीं चाहते, वह कोई ऐसी संकेत-पुस्तिका नहीं जिसे आप अपनी ही चापलूसी के लिए लिख रहे हैं।

दूसरा यह कि वह परम्परा में जड़ी थी, मेरी सुविधा के लिए गढ़ी न गई थी। ये ऐसी संगतियाँ न थीं जो उन्होंने किसी शिष्य का मनोरंजन बनाए रखने के लिए गढ़ी हों। वे संत-कवियों की समूची परम्परा की कार्यशील शब्दावली थीं, वह सांकेतिक भाषा जिसमें कबीर और अन्य सदा बोले थे, क्योंकि वे सदा जानते थे कि आत्मा की अवस्थाओं को आमने-सामने सम्बोधित नहीं किया जा सकता। वे मुझे कोई नवीनता नहीं दे रहे थे। वे मुझे एक पाँच सौ वर्ष पुराने व्याकरण में दीक्षित कर रहे थे।

और तीसरा — सबसे महत्वपूर्ण — यह कि वह शब्दावली सदा मेरी ओर संकेत करती थी। लक्षित कीजिए कि वे प्रतीक किसके विषय में हैं। भविष्य के नहीं। लॉटरी के नम्बरों या अजनबियों के भाग्य के नहीं। मेरा कर्म। दूसरों का कर्म मुझ तक पहुँचता हुआ। मेरा जीवन, और उसकी दिशा, और यह कि वह मेरे नियंत्रण में था या पीछे की ओर चल रहा था। दिव्य का मेरी स्थिति में प्रवेश। उस भाषा का हर पद एक आत्मा की अवस्था और परिणाम के संचालन के विषय में एक पद था — अर्थात्, वह शब्दावली कोई भविष्य-कथन का तंत्र थी ही नहीं। वह एक निदानात्मक तंत्र था। वह मुझे यह नहीं बताती थी कि क्या होगा। वह मुझे

बताती थी कि मैं कहाँ खड़ा हूँ — कौन-सा कर्म संचालित हो रहा है, किसका, और यह कि उच्चतर व्यवस्था उपस्थित है या नहीं। वह, उनकी हर उस अन्य वस्तु की भाँति जो उन्होंने मुझे कभी दी, शिष्य की ओर वापस मोड़ा गया एक दर्पण थी।

◆

मैं मानने लगा हूँ कि यही उस भाषा के विषय में सबसे गहन बात है जो उन्होंने मुझे सिखाई, और वही वस्तु है जो उसे अंधविश्वास से पूर्णतः अलग करती है।

अंधविश्वास भविष्य को इसलिए जानना चाहता है कि उसे नियंत्रित करे या उससे लाभ उठाए। वह स्वप्न को एक भविष्यवाणी के रूप में पढ़ता है। उसकी समूची क्षुधा अर्जनकारी है — मुझे बताओ कि क्या आ रहा है ताकि मैं स्वयं को स्थिति में रख सकूँ।

स्वामी जी ने जो सिखाया वह इसका उलटा था। वह स्वप्न, उनकी कुंजी से पढ़ा गया, आपको इस विषय में कुछ न बताता कि क्या आ रहा है और सब कुछ इस विषय में कि आप क्या थे — आपकी साधना की अवस्था, वह कर्म जिसमें आप उलझे थे, कृपा की उपस्थिति या अनुपस्थिति। वह भविष्य पर एक खिड़की न था। वह आत्मा की वर्तमान अवस्था के समक्ष धरा हुआ एक दर्पण था। और जो मनुष्य अपने स्वप्नों को उस ढंग से पढ़ता है वह उनसे लोभी या चिंतित नहीं बनता, जैसे भाग्य-खोजी बनता है; वह ईमानदार बनता है। हर स्वप्न इस बात को स्पष्ट रूप से देखने का एक अवसर बन जाता है कि वह वास्तव में कहाँ खड़ा है।

यही कारण है कि मैं उस मगर के स्वप्न पर, अगले अध्याय में, उनसे उसका अर्थ पूछने के लिए कभी फ़ोन किए बिना कर्म कर सका। वे मुझे भाषा पहले ही सिखा चुके थे। मैं उसे स्वयं पढ़ सकता था। और उसने मुझे जो बताया वह यह होगा न था बल्कि यह है जो अभी तुम्हारे चारों ओर संचालित हो रहा है — और जो मनुष्य जानता है कि उसके चारों ओर क्या संचालित हो रहा है वह बस, चुपचाप, कर्म कर सकता है।

और मुझे कहना चाहिए, इस अध्याय को समाप्त करने से पहले, कि स्वप्न ही एकमात्र भाषा न थी। एक और थी, और वह पहले आई, और वह शरीर के माध्यम से आई।

मेरा अर्थ है फड़कन — किसी मांसपेशी का छोटा-सा अनैच्छिक स्पंदन, त्वचा के नीचे की वह फड़फड़ाहट जिसे हर किसी ने अनुभव किया है और लगभग हर कोई अनदेखा कर देता

है। परम्परा में यह कुछ नहीं नहीं है। इसका एक समूचा विज्ञान है, जो स्वामी जी की अपनी एक छोटी पुस्तक में अंकित है, जो शरीर को लगभग छप्पन बिंदुओं का एक क्षेत्र मानती है, जिनमें से प्रत्येक फड़क सकता है, और प्रत्येक फड़कन एक अर्थ ढोती है — किसी आने वाली वस्तु का संकेत, शुभ या अशुभ, माँस से पढ़ा गया एक संकेत जैसे कोई नाविक समुद्र की सतह पढ़ता है। जो पूरा विवरण चाहते हैं वे उसे उनकी इस विषय की पुस्तक में पा सकते हैं; उसका अंग्रेज़ी शीर्षक सहज ही ढूँढ़ा जा सकता है। मैं केवल यह अंकित करना चाहता हूँ कि यह मेरे लिए वास्तविक है, क्योंकि यह मुझ पर घटित हुआ और अब भी घटित होता है।

मेरा शरीर स्पंदित होता था। यह आरम्भ में ही, इस सबके बिलकुल आरम्भ के निकट शुरू हुआ, और यह कभी पूरी तरह रुका नहीं — पलक, पहले बाईं और फिर दाईं; कान, एक बाँह, एक उँगली, छाती, पीठ, टखना; वर्षों में मेरा शायद ही कोई अंग हो जिसने किसी न किसी समय अपनी छोटी-सी फड़फड़ाहट और अपना छोटा-सा संदेश न पहुँचाया हो। मैं हर बिंदु की सूची नहीं दूँगा, इसलिए भी कि पूरी कुंजी देना उनका अधिकार है, मेरा नहीं, और इसलिए भी कि अपने ही शरीर की फड़कनों को गिनता हुआ मनुष्य शीघ्र ही स्वयं को हास्यास्पद बना सकता है। किन्तु मैं यह तथ्य सादगी से अंकित करता हूँ: यह पहला ढंग था जिससे उच्चतर व्यवस्था मेरे साधारण भौतिक जीवन में पहुँची और बोली, ध्यान दो, कुछ संचालित हो रहा है। शरीर पहला यंत्र था। स्वप्न दूसरे थे — और मेरे लिए स्वप्न भी आरम्भ में ही शुरू हो गए, लगभग तुरंत, ताकि मेरे पास आरम्भ के निकट से ही दोनों भाषाएँ एक साथ चलती रहीं।

मैं दोनों को एक ही उपकरण के रूप में सोचने लगा हूँ जिसके दो सूचक हैं। फड़कन स्थूल यंत्र था — एक सामान्य चेतावनी, शुभ या अशुभ, माँस में अनुभव की गई। स्वप्न सूक्ष्म यंत्र थे — विशिष्ट, कथात्मक, सम्बोधित, मुझे केवल कुछ नहीं बल्कि क्या बताते हुए, और मैं कहाँ खड़ा हूँ, और कौन-सा कर्म अपने को पूरा कर रहा है। एक साथ उन्होंने वह किया जो मैं अपनी समूची अभियांत्रिकी से भी अपने लिए न कर सकता था: उन्होंने मुझे त्वरित किया। उन्होंने मुझे, बार-बार, मेरी अपनी अवस्था पर एक पठन दिया जिसे प्राप्त करने का मेरे पास कोई अन्य ढंग न था, और पठन-दर-पठन, उन्होंने मुझे अपनी इच्छाओं को उनके यथार्थ रूप में देखने और उन्हें जल जाने देने में सहायता की — एक शिष्यत्व का समूचा धीमा कार्य,

एक ऐसे शरीर से जो बोलना बंद न करता और एक ऐसी नींद से जो सिखाना बंद न करती, आगे बढ़ाया गया।

उन्होंने मुझे, दूसरे शब्दों में, अपनी ही आत्मा का मौसम पढ़ना सिखाया। उसके भविष्य की भविष्यवाणी करना नहीं। उसका वर्तमान देखना। और जो मनुष्य अपनी ही आत्मा की वर्तमान अवस्था को ईमानदारी से देख सकता है उसके पास वह अधिकांश है जिसकी उसे आवश्यकता है, क्योंकि भविष्य, जैसा मेरे सद्गुरु ने सौ अन्य ढंगों से सिखाया, बहुत हद तक बस वर्तमान ही है, आगे की ओर चला हुआ।

अध्याय बाईस:

गरुड़ और मगर

अब मैं आपको एक ऐसे स्वप्न के विषय में बताना चाहता हूँ जिस पर मैंने उनसे उसका अर्थ कभी पूछे बिना कर्म किया — क्योंकि तब तक वे मुझे भाषा सिखा चुके थे, और मैं उसे स्वयं पढ़ सकता था, और उसने मुझे जो बताया वह कोई भविष्यवाणी न थी बल्कि वर्तमान के विषय में एक चेतावनी थी, और मैंने उसे माना, और मुझे प्रसन्नता थी कि मैंने माना।

मैं इसे सावधानी से बताऊँगा, और इसमें सम्मिलित लोगों के विषय में जान-बूझकर संयम के साथ, क्योंकि वे वास्तविक जीवनों वाले वास्तविक लोग थे और इस पुस्तक को उन्हें उजागर करने का कोई अधिकार नहीं। वह स्वप्न मेरा है, बताने के लिए। उनकी निजी परिस्थितियाँ नहीं। अतः मैं उन्हें छाया में रखूँगा, जैसा वे योग्य हैं, और आपको केवल वही दिखाऊँगा जो मुझे दिखाना ही है।

◆

उस काल की एक बात मुझे स्वप्न से पूर्व अंकित करनी चाहिए, क्योंकि वह उसी के साथ आती है, और क्योंकि अब मैं जानता हूँ कि उन्होंने वस्तुतः क्या कहा था।

मेरी पत्नी ने हीरानंदानी के एमराल्ड प्लाज़ा में अपना बुटीक खोला था — हमारे द्वार से तीन सौ मीटर दूर, इतना निकट कि प्लाज़ा घर से दिखता था। और स्वामीजी ने, जो तब तक हमारे घर आ चुके थे, कहा कि हमें दुकान पर चलना चाहिए।

उन्होंने इस प्रकार कहा:

"चलो, चलते हैं — नहीं तो गड़बड़ हो जाएगी।"

मैं चाहता हूँ कि पाठक इस वाक्य को समूचे अध्याय भर हल्के से थामे रहे, जैसे मैंने छह महीने तक हल्के से थामे रखा — अर्थात्: मैंने उसे सुना, मैंने लक्षित किया कि किसी दुकान के विषय में यह कहना अटपटा है, और मैंने उसका कुछ भी नहीं किया। उन्होंने इसे किसी गम्भीरता से नहीं कहा। उनके ढंग में कोई चेतावनी न थी। यह उस तरह कहा गया जैसे कोई

कहता है कि इसे देख लेना चाहिए — एक छोटी व्यावहारिक बात, और मैंने इसे अपनी पत्नी के नए उपक्रम के प्रति स्नेह माना, जो वह थी भी।

तो हम गए।

और दुकान में जो हुआ वह तनिक भी गम्भीर न था, और मैं उसे इसलिए अंकित करता हूँ क्योंकि वह उनकी मेरी प्रिय स्मृतियों में से एक है और क्योंकि वह ठीक वही व्यक्ति दिखाता है जिसे मैं आपको दिखाने का प्रयत्न करता रहा हूँ।

उन्होंने जगदीश की ओर मुड़कर कहा कि एक कुरता ले लो। जगदीश स्वयं अपने लिए कुछ चुनने वाले न थे, तो मेरी पत्नी जाकर एक कपड़ा निकाल लाईं — एक अच्छा, रैक की सबसे बढ़िया वस्तु।

उन्होंने उसे देखा और कहा: यह तो बहुत लीचड़ है।

लीचड़। बहुत साधारण। मामूली। कुछ ख़ास नहीं।

और मैंने, जैसा मैं हूँ, इसे माल पर लगा दोष समझा और बचाव में कूद पड़ा। नहीं स्वामीजी — मैंने कहा — यह बहुत महँगा है।

वे हँसने लगे।

"हम कह रहे हैं लीचड़ है, और यह कह रहा है महँगा है।"

मैं बीस वर्षों से स्वयं पर हँसता आया हूँ, और मैं ईमानदारी से बताना चाहता हूँ कि यह हास्यास्पद क्यों है, क्योंकि विनोद पूर्णतः मेरी क़ीमत पर है और मैंने उसे कमाया है।

अब देखिए कि मैंने वहाँ वस्तुतः क्या किया, क्योंकि इसे देखने में मुझे वर्ष लगे और यह प्रशंसनीय नहीं।

उन्होंने कुरते को देखकर बता दिया कि वह क्या है। साधारण। वह उस वस्तु के विषय में निर्णय था — कपड़े के विषय में, काम के विषय में, कि वह क्या बनता है — और वह निर्णय ऐसे व्यक्ति का था जिसने अपना जीवन लगभग बिना किसी वस्तु के बिताया था और जो ठीक-ठीक जानता था कि कपड़े का एक टुकड़ा किस लायक़ है।

और मैंने कपड़े के विषय में उनका खंडन नहीं किया। कर भी न सकता; मैंने कपड़े को देखा ही न था। मैंने लेबल से उत्तर दिया। मैंने इस कथन का — कि कोई वस्तु क्या है — उत्तर इस कथन से दिया कि वह वस्तु कितने की है, मानो ये एक ही प्रश्न के दो उत्तर हों; और मैंने यह तत्क्षण किया, बिना रुके, क्योंकि किसी वस्तु के लिए मेरे पास यही अकेली शब्दावली थी।

और उन्होंने इसे हवा में ही पकड़ लिया। उन्होंने मुझे सुधारा नहीं। समझाया नहीं। उन्होंने बस ऊँचे स्वर में कह दिया कि हम दोनों के बीच अभी-अभी क्या हुआ, और दुकान को सुन लेने दिया, और हँस पड़े।

हम कह रहे हैं लीचड़ है, और यह कह रहा है महँगा है।

दो व्यक्ति एक कुरते को देख रहे हैं, उस प्लाज़ा के एक बुटीक में जिसे मैं भी चलाता था, और पाते हैं कि उनके बीच कोई साझा शब्द ही नहीं — और उस समय हममें से केवल एक ने यह लक्षित किया।

एक ही संवाद में उनके साथ मेरी समूची शिक्षा यही है। वे कहते हैं कि वस्तु क्या है। मैं उत्तर देता हूँ कि वह कितने की है। वे हँसते हैं।

उस समय मैंने इनमें से किसी पर अधिक विचार नहीं किया — न विनोद पर, और गड़बड़ वाले वाक्य पर तो निश्चय ही नहीं। मैं इसे अब केवल इसलिए लक्षित करता हूँ कि बाद में जो हुआ उसके प्रकाश में यह अटपटा बैठता है: एक संत यह कहते हुए कि दुकान पर चल लेना चाहिए, नहीं तो गड़बड़ हो जाएगी — उससे कुछ ही महीने पूर्व जब उस प्लाज़ा के आसपास के जल में से कोई भूखी वस्तु मेरे परिवार की ओर तैरती हुई आई।

◆

◆

अब उस स्वप्न की ओर, और उस स्थिति की ओर जिससे वह बोला, जिसका मैं केवल रूपरेखा में वर्णन करूँगा।

मैं, मैं स्वीकार करता हूँ, इसे उनसे धीमे देख पाया जितना वे देख पाईं। प्रायः यही ढंग होता है। जो खींचा जा रहा होता है वह उस खिंचाव को उतनी स्पष्टता से नहीं देखता जितना वह जो उसके बगल से देख रहा होता है। अनुपमा असहज थीं, और उन्होंने ऐसा कहा, और दूरी

रखे जाने की इच्छा की; और मैं, जो वे देख रही थीं उसे अभी न देखते हुए, उससे कम निर्णायक था जितना मुझे होना चाहिए था। कुछ महीने ऐसे बीते — छोटी घटनाओं का एक धीमा संचय, एक असहजता जो सुलझती न थी, एक स्थिति जिस पर मैं ठीक-ठीक कर्म करने को स्वयं को ला न सका क्योंकि मैं उसे ठीक-ठीक उस रूप में देख न सका जो वह थी।

और फिर, सम्भवतः इसके छह महीने बाद, मैंने वह स्वप्न देखा।

◆

और उस जल में एक मगर था। एक बहुत बड़ा — मैं उसका आकार बताना चाहता हूँ, क्योंकि आकार स्वप्न में महत्वपूर्ण था; वह एक बड़ा, दुर्जेय प्राणी था, जल में से मेरी ओर बढ़ता हुआ। मुझ पर आता हुआ। एक शिकारी, दूरी घटाता हुआ, और मैं उसके मार्ग में।

और फिर, ऊपर से, एक गरुड़ आया।

एक विशाल गरुड़ — स्वर्णिम, और विराट, सम्भवतः उस मगर से पाँच गुना बड़ा, जो स्वयं कोई छोटी वस्तु न था। वह नीचे आया और उसने उस मगर को पकड़ लिया। उसे, ऊपर से, मगर के आने के क्षण में, ले लिया, और उठा लिया, और उसे पूर्णतः अपनी पकड़ में ले लिया।

और वह मगर — यही वह विवरण है जिसे मैं कभी नहीं भूला — वह मगर मुस्कुराया। वह उस ढंग से मुस्कुराया जिस ढंग से कोई मनुष्य तब मुस्कुराता है जब वह रंगे हाथों पकड़ा गया हो: किसी ऐसे व्यक्ति की झेंपी हुई, उजागर, लगभग लज्जित मुस्कान जिसका छिपा हुआ अभिप्राय अचानक सबके द्वारा देख लिया गया हो, जिसका खेल समाप्त हो गया हो, जो पकड़े जाने के क्षण में जान जाता है कि वह पकड़ा गया है और उस अपराधी, जानती हुई मुस्कान देने के अतिरिक्त कुछ करने को नहीं। वह मगर एक मानवीय मुस्कान मुस्कुराया, उजागर हुए व्यक्ति की मुस्कान।

और मैं जागा।

◆

मैंने आश्रम में फ़ोन नहीं किया। मैंने स्वामी जी से नहीं पूछा कि इसका क्या अर्थ है। और मैं चाहता हूँ कि आप उसे लक्षित करें, क्योंकि वही इससे पिछले अध्याय का समूचा मर्म है।

मुझे पूछने की आवश्यकता न थी। वे मुझे भाषा सिखा चुके थे, और मैं उसे पढ़ सकता था।

गरुड़ ईश्वर है — दिव्य, रक्षा करने वाली शक्ति, ऊपर से आती हुई। वह मगर — वह वस्तु जो जल की सतह के नीचे आधी-देखी रहती है, जो आपकी ओर छिपकर बढ़ती है, जो समूची क्षुधा और धैर्य है — वह मगर वह शिकारी अभिप्राय था जो मेरे परिवार के निकट आ गया था, वह वस्तु जो उस सुखद सतह के नीचे थी, वह अभिकल्प जो मेरी ओर लक्षित था जिसे मेरी पत्नी ने देखा था और मैंने नहीं। और वह मुस्कान — पकड़े गए व्यक्ति की मानवीय मुस्कान — वह अभिकल्प का उजागर होना था। देखा जाना। ऊपर से प्रकाश में उठा लिया जाना, जहाँ उसका सच्चा स्वरूप अब छिप न सकता था, जहाँ वह उस व्यक्ति की अपराधी मुस्कान देने के अतिरिक्त कुछ न कर सकता था जिसका खेल समाप्त हो गया हो।

उस स्वप्न ने मुझे नहीं बताया कि क्या होगा। उनकी कुंजी से पढ़ा गया, उसने कोई भविष्य का पूर्वानुमान किया ही नहीं। उसने मुझे बताया कि क्या संचालित हो रहा है — ठीक तभी, वर्तमान में, मेरे और मेरे परिवार के चारों ओर। उसने कहा: तुम्हारे जल में एक शिकारी है। तुमने उसे स्पष्ट रूप से नहीं देखा, किन्तु वह वहाँ है, वह वास्तविक है, वह तुम्हारी ओर बढ़ रहा है, और वह उच्चतर शक्ति उसे देखती है यद्यपि तुम नहीं देखते, और उसका अभिप्राय वह नहीं जो उसकी सतह ढोंग करती है। यह है जो वस्तुस्थिति है। अब तुम जानते हो।

और जो मनुष्य जानता है कि उसके चारों ओर क्या संचालित हो रहा है वह कर्म कर सकता है।

◆

अतः मैंने कर्म किया। चुपचाप। बिना टकराव, बिना नाटक, बिना कभी यह घोषित किए कि क्यों। मैंने बस वह दूरी रखनी आरम्भ कर दी जो मेरी पत्नी सदा से रखवाना चाहती थीं। मैंने अपने परिवार को उस सम्बन्ध से हटा लिया, गर्माहट को ठंडा होने दिया, स्थिति को उस वस्तु के सीधे हट जाने से स्वयं सुलझने दिया जिस पर वह पल रही थी — मेरी उपस्थिति, मेरा खुलापन, मेरा न देख पाना। मैंने वही किया जो अनुपमा मुझसे महीनों से करने को कह रही थीं, और मैंने अब उसे इसलिए नहीं किया कि मुझे तर्कों से मना लिया गया था बल्कि इसलिए कि मैंने, अंततः, देख लिया था — अपनी जागती आँखों से नहीं, जो धीमी रही थीं, बल्कि एक ऐसी भाषा में पढ़े गए स्वप्न के माध्यम से जो मेरे सद्गुरु ने मुझे सिखाई थी।

मैंने सम्मिलित लोगों को किसी स्वप्न के विषय में कभी नहीं बताया। वे कभी न जान पाए। कोई दृश्य न हुआ, कोई आरोप नहीं, कोई ऐसा विच्छेद नहीं जिसकी ओर कोई संकेत कर सके। वहाँ केवल एक परिवार था जो किसी ऐसी वस्तु से चुपचाप पीछे हट रहा था जो बहुत निकट आ गई थी, और एक असहजता जो दूरी रखे जाने पर फीकी पड़ गई, और एक पत्नी जो सदा से सही रही थीं और जिनकी सच्चाई पर मैं अंततः कर्म कर पाया था।

◆

मैंने उसके बाद उस बात पर विचार किया है जो उन्होंने दुकान के खुलते समय कही थी। चलो, चलते हैं — नहीं तो गड़बड़ हो जाएगी। मैं इसका बहुत कुछ नहीं बनाना चाहता। किन्तु वह वहाँ अभिलेख में पड़ी है — एक संत यह कहते हुए कि दुकान देख आना चाहिए, उससे कुछ महीने पूर्व जब उस परिवार के आसपास के जल में एक शिकारी प्रकट हुआ जिसका जीवन उत्तरोत्तर उसी दुकान और उसी प्लाज़ा से होकर बहता था। सम्भव है इसका कोई अर्थ न हो। सम्भव है वे बस मेरी पत्नी के नए उपक्रम के प्रति स्नेही हो रहे हों। मैं इसे अंकित करता हूँ और छोड़ देता हूँ, जैसा मैंने ऐसी वस्तुओं को छोड़ना सीखा है — उसके किनारे के पास जिसे मैं समझा सकता हूँ, और ठीक उसके भीतर नहीं।

किन्तु उस स्वप्न को मैं छोर पर नहीं छोड़ता। उस स्वप्न को मैं समझा, और उस पर कर्म किया, और उससे प्रसन्न था। वह पहली बार था जब उनकी सिखाई भाषा ने मुझे किसी वस्तु से बचाया — पहली बार जब मैंने अपनी ही रात को उनके व्याकरण से पढ़ा और उसमें विस्मय करने योग्य कोई अचम्भा नहीं बल्कि इस विषय में एक सादा, उपयोग करने योग्य सत्य पाया कि मैं कहाँ खड़ा था और मेरे निकट क्या था। उन्होंने मुझे नहीं बताया था कि क्या करना है। उन्होंने मुझे देखना सिखाया था। और देखकर, मैंने वह किया जिसे किए जाने की आवश्यकता थी।

यही, मैं मानने लगा हूँ, उस हर वस्तु का समूचा प्रयोजन है जो उन्होंने मुझे कभी दी। उत्तर नहीं। भविष्यवाणियाँ नहीं। ठीक-ठीक रक्षा भी नहीं। बल्कि दृष्टि — उस मनुष्य की धीमी शिक्षा जो वह न देख सकता था जो उसकी अपनी पत्नी देख सकती थीं, जब तक कि उसके सद्गुरु ने उसे एक ऐसी भाषा न सिखा दी जिसमें उसके स्वप्न भी उसे सत्य दिखा सकें।

अध्याय तेईस:

पत्थर पर माता

अब मैं आपको एक ऐसा स्वप्न बताऊँगा जिसे मैं बहुत समय तक किसी को न बता सका, क्योंकि वह मुझे लज्जित करता था — स्वयं वह स्वप्न नहीं, बल्कि वह वस्तु जो मैंने उसके भीतर अनुभव की, जो कुछ भी नहीं थी। मैंने अपनी माता के साथ कुछ भयानक होते देखा और मैंने कुछ अनुभव नहीं किया, और भाव की उस अनुपस्थिति ने मुझे किसी भी भय से अधिक भयभीत किया। और फिर मेरे सद्गुरु ने मुझे बताया कि उसका क्या अर्थ है, और मैं समझ गया कि जो कुछ भी नहीं मैंने अनुभव किया वही समूचा मर्म था, और कि वह स्वप्न मृत्यु के विषय में था ही नहीं।

◆

मुझे पहले यह बता देने दीजिए कि यह पुस्तक चुपचाप किस ओर निर्माण करती आई है, ताकि आप इस अध्याय और अगले को उस जोड़ी के रूप में देख सकें जो वे हैं।

दो बार, मेरे सोते हुए मन ने मुझे मृत्यु का एक बिम्ब थमाया। पहला वह चिता थी — मैंने उसका वर्णन किया है, मेरे बचपन की वह श्मशान-भूमि, अग्नि पर वह शरीर, स्वामी जी उसकी परिक्रमा करते हुए, वह हँसती हुई भीड़, और मेरा अपना स्वर जो पुकार उठा कि वे भगवान हैं। मैंने वह स्वप्न अव्याख्यायित छोड़ दिया, जैसा मैंने वचन दिया था, और आपको बताया कि उसका अर्थ बहुत बाद में आएगा, उन्हीं के शब्दों में। यह अध्याय और अगला वह हैं जहाँ वे अर्थ आते हैं। क्योंकि यह निकलता है कि मेरे दोनों में से कोई भी मृत्यु-स्वप्न मृत्यु के विषय में न था। दोनों मृत्यु के विपरीत के विषय में थे। और मैं यह स्वयं खोज न सकता था; मैं उन्हें अपने शेष जीवन-भर अंधकार के रूप में पढ़ता रहता, यदि उन्होंने प्रत्येक को, एक ही वाक्य से, भीतर-बाहर उलट न दिया होता।

यह उन दोनों में से पहला है।

◆

स्वप्न में, स्वामी जी मेरी माता को थामे हुए थे।

और फिर वे चले — वे उन्हें ले गए, वे उन्हें अपने से सटाए घूमते रहे — और फिर उन्होंने उन्हें एक पत्थर पर फेंक दिया।

एक नुकीला पत्थर। उन्होंने उन्हें अपने वक्ष से नीचे एक तीखे, नुकीले पत्थर पर फेंक दिया, और वे उससे टकराईं, और उनसे रक्त बहने लगा। अत्यधिक। रक्त आया, और वे नुकीले पत्थर पर रक्त बहाती पड़ी रहीं, और वह, इस बात के हर मापदंड से कि ऐसे बिम्ब को क्या होना चाहिए, भयावह था — एक प्रिय व्यक्ति, एक क्षण शिशु की भाँति गोद में लिया गया और फिर अगले क्षण तीखे पत्थर पर फेंक दिया गया और चीर दिया गया, अत्यधिक रक्त बहाती हुई, जबकि वह व्यक्ति जिसे मैं सबसे ऊपर पूजता था, अपने किए के ऊपर खड़ा था।

और मैंने कुछ अनुभव नहीं किया।

◆

यही वह था जो मैं किसी को न बता सका। उस बिम्ब की हिंसा नहीं — स्वप्नों में बिम्ब हिंसक हो सकते हैं और उसका अधिक अर्थ नहीं। जिसकी मैं बात न कर सका वह यह था कि मैंने अपनी ही माता को फेंका जाता और चीरा जाता और रक्त बहाती देखा, अपने ही सद्गुरु के हाथों, और मुझमें कोई शोक न उठा। कोई भय नहीं। इसे रोकने या उनकी सहायता करने के लिए कोई दौड़ना नहीं। मैंने बस देखा, और मेरे भीतर वहाँ एक निस्तब्धता थी जहाँ व्यथा होनी चाहिए थी, उस भाव की एक पूर्ण अनुपस्थिति जिसकी वह दृश्य माँग करता था।

मैं विचलित होकर जागा — स्वप्न की हिंसा से नहीं बल्कि उसके भीतर अपनी ही शीतलता से। किस प्रकार का पुत्र वह देखता है और कुछ अनुभव नहीं करता? मेरे साथ क्या हुआ था, कि मैं ऐसी वस्तु को अविचलित देख सका? मैंने उसे उलट-पुलट कर देखा और उसका अर्थ न निकाल सका, और वह मुझमें एक छोटे-से अभियोग की भाँति बैठा रहा, किसी ऐसी कठोरता का प्रमाण जिसके घटित होने पर मैं विश्वास नहीं करना चाहता था।

अतः मैंने उनसे पूछा।

◆

और स्वामी जी ने कहा:

"मा प्रकृति है। तीन गुणों से बनी है। उसका विच्छेद शुरू हो गया है।"

माता प्रकृति है। वह तीन गुणों से बनी है। उसका विच्छेद आरम्भ हो गया है।

◆

मुझे इसे धीरे-धीरे खोलना होगा, क्योंकि यह परम्परा के गहनतम दर्शन से सघन है, और क्योंकि जब यह अंततः मेरे लिए खुला तो इसने समूचे स्वप्न को भयावहता से कृपा में पुनर्व्यवस्थित कर दिया।

माता, उन्होंने कहा, प्रकृति है। मेरी माता नहीं — प्रकृति। सांख्य दर्शन में, जो गीता के इतने भाग को आधार देता है, प्रकृति प्रकृति है, आद्य भौतिक तत्त्व, वह पदार्थ जिससे समूचा व्यक्त संसार बुना गया है — पदार्थ, ऊर्जा, मन, शरीर, प्रपंच का समूचा तंत्र। उसे माता कहा जाता है क्योंकि वह समस्त रूपों की योनि है; जो कुछ भी परिवर्तनशील संसार में विद्यमान है वह उसी से जन्मा है। और वह तीन गुणों से बनी है — तीन गुणों से, वे तीन मूल तंतु जिनका गुँथना समूची प्रकृति का गठन करता है: सत्त्व, प्रकाश और स्पष्टता का तंतु; रजस्, आवेग और गति का तंतु; तमस्, जड़ता और अंधकार का तंतु। व्यक्त संसार में हर वस्तु, सांख्य कहता है, इन तीनों का कोई-न-कोई परस्पर-गुँथाव है। प्रकृति वही गुँथाव है। वह वह तीन-तंतुओं वाली रस्सी है जिससे संसार का समूचा जाल गाँठा गया है — और जिससे, परम्परा सिखाती है, आत्मा को अंततः मुक्त होना ही है।

अतः वह आकृति जिसे मैंने फेंका जाता और चीरा जाता देखा था, मेरी माता न थी। वह स्वयं प्रकृति थी — वह भौतिक तत्त्व, वह तीन-गुण गुँथाव, प्रपंचिक संसार का वह समूचा सुंदर बाँधने वाला तंत्र जिसमें हर आत्मा लिपटी है और जिससे तादात्म्य किए है।

और उसका विच्छेद शुरू हो गया है — उसका विभाजन आरम्भ हो गया है। वह अलगाव आरम्भ हो गया है। प्रकृति के साथ आत्मा का वह लंबा उलझाव, पदार्थ और शरीर और मन से उसका तादात्म्य, तीन गुणों से उसका बंधन — वह तादात्म्य टूटने लगा था। वह स्वप्न मुझे मुक्ति का आरम्भ दिखा रहा था। उस विलगाव का आरम्भ जिसे सम्पन्न करने के लिए

समूचा मार्ग विद्यमान है: द्रष्टा का दृश्य से अलगाव, चेतना का उस प्रकृति से अलगाव जिसे उसने अपना समझ लिया था, आत्मा का उस भौतिक रस्सी से अलगाव जिसमें वह बँधी थी।

◆

और अब — क्या आप देखते हैं कि वह "कुछ नहीं" क्या था?

भाव की वह अनुपस्थिति जिसने मुझे लज्जित किया था, जो मुझे किसी भयानक कठोरता का प्रमाण लगी थी — वह वैसा कुछ न थी। वह ठीक वही संकेत थी जिसकी ओर वे संकेत कर रहे थे। वह इस बात का प्रमाण थी कि विच्छेद आरम्भ हो गया था। यदि मैंने पूर्ण व्यथा अनुभव की होती, यदि मैं शोक से टूटा हुआ आगे दौड़ा होता, तो इसका अर्थ होता कि मैं अब भी प्रकृति से पूर्णतः तादात्म्य किए हूँ — अब भी प्रकृति से बँधा, अब भी भौतिक संसार को अपनी माता, अपना माँस, अपना स्व मानता, उसके विलय को उससे विदीर्ण हुए बिना देखने में असमर्थ। मेरा शोक मेरे बंधन का माप होता।

किन्तु मैंने कुछ अनुभव नहीं किया। और वह कुछ नहीं ही वह ढीलापन था। वह कुछ नहीं उस साक्षी-चेतना का पहला, विचित्र, भयकारी स्वाद था जो स्वयं प्रकृति के टूटने को भी उससे नष्ट हुए बिना देख सकती है — क्योंकि उसने जानना आरम्भ कर दिया है, केवल आरम्भ, कि वह वह नहीं है। कि वह कभी वह थी ही नहीं। कि द्रष्टा और दृश्य दो हैं, और कि द्रष्टा तब रक्त नहीं बहाता जब दृश्य फेंक दिया जाता है, चाहे वह दृश्य कितना ही गोद में लिया गया और प्रिय क्यों न रहा हो।

उस स्वप्न ने मुझे कोई कठोर पुत्र नहीं दिखाया था। उसने मुझे एक आत्मा दिखाई थी जो, अंततः, उस संसार से ढीली पड़ने लगी थी जिसे उसने सदा स्वयं को समझा था। और वह शीतलता जिस पर मैं लज्जित हुआ था, वह उस पहले विच्छेद की शीतलता थी — जन्म से जिस प्रकृति से गुँथे रहे उस द्रष्टा का उससे पहला, क्षीण, अनैच्छिक विलगाव।

◆

मैं इसे इस पुस्तक में बहुत पहले की किसी वस्तु के बगल में रखना चाहता हूँ, क्योंकि यह एक ऐसा चक्र पूरा करता है जिसे मैं नहीं जानता था कि मैं खींच रहा हूँ।

उनके निकट अपनी पहली ही रात, जंगल में, मेरा मन रुक गया था, और मैंने देखा था कि वह रुक गया है — और मैंने, उस अध्याय में, पूछा था कि देखने वाला कौन था। विचार की अनुपस्थिति का साक्षी कौन था? वही साक्षी था, वह साक्षी, एक स्वप्न में दो मिनट के लिए, बाहर से झलका हुआ।

और यहाँ, वर्षों बाद, वही साक्षी फिर था — अब दो मिनट के लिए झलका हुआ नहीं बल्कि स्वयं को स्थापित करता हुआ, वह दृष्टिकोण बनता हुआ जिससे मैं स्वयं प्रकृति को भी, समस्त रूपों की माता को भी, फेंकी जाती और चीरी जाती देख सकता था, उसके साथ चीरे बिना। जंगल के स्वप्न ने मुझे दिखाया था कि मैं अपने विचार नहीं हूँ। इस स्वप्न ने मुझे दिखाया कि मैं प्रकृति नहीं हूँ — न शरीर, न संसार, न वह तीन-गुण गुँथाव जिसे मैंने अपना समूचा जीवन स्वयं समझते हुए बिताया था। वही शिक्षा, गहराती हुई। वह साक्षी, पहले देखा गया, अब धीरे-धीरे जन्म लेता हुआ।

उन्होंने तीन वाक्य कहे। माता प्रकृति है। वह तीन गुणों से बनी है। उसका विच्छेद आरम्भ हो गया है। और उन तीन वाक्यों से उन्होंने मेरे जीवन के सबसे विचलित कर देने वाले स्वप्न को मेरी शीतलता के प्रमाण से मेरी जागृति के प्रमाण में बदल दिया — और मुझे, उपदेश के एक भी शब्द के बिना, सिखा दिया कि जब आप इस मार्ग पर होते हैं, तो जो वस्तुएँ आपको सबसे अधिक भयभीत करती हैं वे ठीक आपकी मुक्ति के संकेत हो सकती हैं, हानि का मुखौटा पहने हुए।

मैंने सोचा था कि मैं एक मृत्यु देख रहा हूँ। मैं एक जन्म देख रहा था। मैं, अगले अध्याय में, जानने वाला था कि मैंने ठीक यही भूल एक बार पहले भी की थी — एक चिता पर, मेरे बचपन की भूमि में, वही सद्गुरु उसी आभासी मृत्यु की परिक्रमा करते हुए, जो कि, जैसा निकला, एक ऐसी जागृति भी थी जिसे पहचानने की आँखें मेरे पास न थीं।

वे मुझे जन्म दिखाते रहे और मुझे यह सोचने देते रहे कि वे मृत्युएँ हैं, जब तक कि मुझमें अंतर बता पाने की आँखें न उग आईं।

अध्याय चौबीस:

वह चिता, चिता न थी

इस पुस्तक में बहुत पहले — उनके निकट मेरी पहली चार रातों की दूसरी रात को — मैंने आपको एक स्वप्न बताया था और व्याख्या न करने का वचन दिया था। मेरे बचपन की एक श्मशान-भूमि। चिता पर एक शरीर। स्वामी जी उसकी परिक्रमा करते हुए। एक हँसती हुई भीड़। और मेरा अपना स्वर जो पुकार उठा कि वे भगवान हैं। मैंने कहा था कि उसका अर्थ बहुत बाद में आएगा, उन्हीं के शब्दों में, न कि मेरे। यह वह अध्याय है जहाँ वह आता है। उसे पाने में मुझे दस से अधिक वर्ष लगे, और जब मैंने पाया, तो वह एक अकेला श्लेष था — एक अक्षर दूसरे में बदला हुआ — और समूचा स्वप्न उठ खड़ा हुआ और उस क़ब्र से बाहर निकल आया जिसमें मैंने उसे गाड़ दिया था।

◆

मुझे यहाँ दो दूर की वस्तुओं को साथ लाना होगा, क्योंकि मेरे जीवन में वे साथ आईं, और उनका साथ आना ही मर्म है।

दूसरी यह कि, वर्षों बाद, मैंने उसी भूमि पर एक आश्रम बनाया।

◆

मैं उस लंबी, असाधारण कहानी को — इनकारों का वह वर्ष, वर्षा के विषय में वह असम्भव वचन, वह दिन जब मूसलधार बरसी — एक बाद के अध्याय में बताऊँगा, क्योंकि वह अपने अलग कहे जाने योग्य है। यहाँ मुझे केवल वह भाग चाहिए जो स्वप्न को खोलता है।


बीडीसी की बैठक में हंगामा

प्रेम वर्मा फिर से बने तारुन ब्लाक अध्यक्ष

आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी शाश्वत नहीं

अवर अभियंताओं को मिली फटकार

बार एसो. चुनाव : आज जारी होगी मतदाता सूची

BAMS

M.S.RAMAIAH COLLEGE OF PHARMACY

ADMISSION NOTICE 2011-12

The local press on Swamiji's visit to the ashram the author had built in his village.

क्योंकि उन्हें आने के लिए मनाने के उस लंबे दौर में, मैंने उन्हें वह स्वप्न बताया।

मैं उसे एक दशक से अधिक समय से ढो रहा था, अव्याख्यायित, ठीक वैसे ही जैसे मैंने आपसे उसे इस पुस्तक भर ढुलवाया है। और अब जब मैं ठीक उसी भूमि पर निर्माण कर रहा था जहाँ मैंने उसे देखा था, वह स्वप्न मुझ पर दबाव डालने लगा — निश्चय ही, मैंने सोचा, इसका इस स्थान के लिए कोई अर्थ है; निश्चय ही वह चिता जो मैंने इस भूमि पर देखी थी, उनके परिक्रमा करते हुए, उससे सम्बद्ध है जिसे मैं अब यहाँ बना रहा था। अतः मैंने उन्हें वह सुनाया। वह श्मशान-भूमि, अग्नि पर वह शरीर, उनका उसकी परिक्रमा करना, वे हँसते हुए लोग, मेरी वह पुकार कि वे भगवान हैं। और मैंने उनसे, वस्तुतः, पूछा कि इसका क्या अर्थ है।

◆

और उन्होंने मुझे वह श्लेष दिया।

उन्होंने कहा: "चिता सजी हुई थी — माने चित्त सोया हुआ है। अब जाग जाएगा।"

◆

मुझे रुककर इसे दोनों हाथों में थामना होगा, क्योंकि हर वस्तु इसके भीतर है, और यह पूर्णतः दो ऐसे शब्दों पर घूमता है जो लगभग एक समान सुनाई देते हैं और पूर्णतः भिन्न वस्तुओं का अर्थ रखते हैं।

चिता। वह श्मशान की चिता। लकड़ी की वह व्यवस्था जिस पर मृतक जलाए जाते हैं। यही वह है जो मैंने देखा था और यही वह है जो मैंने उन्हें बताया था — चिता सजी हुई थी, चिता बिछी थी, तैयार, सजाई हुई।

और चित्त। लगभग वही ध्वनि। एक अक्षर का अंतर। किन्तु चित्त चिता नहीं है। चित्त समूची परम्परा के मनोविज्ञान के गहनतम शब्दों में से एक है — मन-पदार्थ, चेतना का आधार, स्वयं जागरूकता का क्षेत्र, ठीक वही वस्तु जिसकी वृत्तियों को शांत करने के लिए, पतंजलि कहते हैं, योग विद्यमान है। चित्त मन की भूमि है, वह पर्दा जिस पर समूचा मानसिक जीवन चलता है, सतही बकबक के नीचे चेतना का वह गहरा सरोवर।

और स्वामी जी ने मेरा स्वप्न सुना और कहा: चिता बिछी थी — अर्थात् चित्त सोया पड़ा था। माने चित्त सोया हुआ है। जो चिता तुमने देखी वह चिता न थी। वह तुम्हारी अपनी चेतना थी, तुम्हारा अपना चित्त, मानो मृत पड़ा हुआ — सोया हुआ, जड़, दाह के लिए बिछाया गया मानो, किन्तु वस्तुतः मरा हुआ बिल्कुल नहीं, केवल सोया हुआ। और — अब जाग जाएगा — अब वह जाग जाएगा।

◆

वह स्वप्न कभी मृत्यु के विषय में था ही नहीं।

मैंने उसे ग्यारह वर्ष मृत्यु के एक बिम्ब के रूप में ढोया था — एक अंत्येष्टि, एक शव, एक जलना, सबसे अंतिम वस्तु जो है। और वह ठीक इसका विपरीत था। चिता पर वह शरीर शव न था। वह मेरी सोई हुई चेतना थी, मानो मृत बिछाई हुई क्योंकि ठीक वही है जो अजागृत चेतना होती है — जीवित पर सोई हुई, उपस्थित पर जड़, एक जीवित वस्तु जो मृत वस्तु से इतनी मिलती-जुलती है कि आप उसे चिता पर बिछा दें और अंतर न जान पाएँ। और उसकी परिक्रमा करती हुई आकृति — मेरे सद्गुरु, उस आभासी शव के चारों ओर घूमते हुए — कोई अंत्येष्टि-संस्कार नहीं कर रही थी। वे वही कर रहे थे जो वे मेरे जीवन में करने आए थे। वे उसे

जगा रहे थे। सोए हुए चित्त की परिक्रमा उस ढंग से करते हुए जैसे आप किसी वस्तु को जगाने के लिए उसकी परिक्रमा करते हैं, वह परिक्रमा शोक की नहीं बल्कि जागृति की, मेरी सोई हुई चेतना के चारों ओर घूमते हुए जब तक कि वह जाग न जाए।

अब जाग जाएगा। अब वह जाग जाएगा।

और वह भीड़ — वह हँसती हुई भीड़, वे लोग जिन पर मैं पुकार उठा था, मत हँसो, ये भगवान हैं — वह भीड़ वे थे जो अंतर न बता सके। जिन्होंने वहाँ एक अंत्येष्टि देखी जहाँ एक पुनरुत्थान चल रहा था। जिन्होंने शव-सी बिछी सोई हुई चेतना को और उसकी परिक्रमा करते संत को देखा और केवल मृत्यु और उसके निरर्थक कर्मकांड देखे, और हँसे, क्योंकि अनदेखी आँख को एक चलती-हुई-जागृति एक ऐसे व्यक्ति जैसी दिखती है जो एक मृत शरीर के चारों ओर व्यर्थ घूम रहा हो। वे इसलिए हँसे क्योंकि उन्होंने एक जन्म को मृत्यु समझ लिया — ठीक वही भूल जो मैंने स्वयं अपने ही स्वप्न के विषय में ग्यारह वर्ष की थी। और मुझमें वह वस्तु जो पुकार उठी ये भगवान हैं वही वस्तु थी जो, मेरी अपनी समझ के नीचे, जानती थी कि जो एक अंत्येष्टि दिखता था वह वस्तुतः सबसे पवित्र कृत्य था जो है: एक सोई हुई आत्मा का उसके द्वारा जगाया जाना जो उसे जगा सकता है।

◆

क्या आप अब देखते हैं कि मैंने इस अध्याय को पिछले के बगल में क्यों रखा? वे एक ही प्रकटीकरण हैं, दो बार।

अपनी माता के स्वप्न में, मैंने प्रकृति को फेंकी जाती और चीरी जाती देखा, और सोचा कि मैं एक मृत्यु देख रहा हूँ, और अपनी ही शीतलता पर लज्जित हुआ — और उन्होंने मुझे बताया कि वह प्रकृति से आत्मा का विच्छेद था, मुक्ति का आरम्भ, और कि मेरी शीतलता उसका संकेत थी।

और चिता के स्वप्न में, मैंने एक श्मशान-भूमि पर एक शव को जलते देखा, और सोचा कि मैं एक मृत्यु देख रहा हूँ, और उस स्वप्न को ग्यारह वर्ष गाड़ दिया — और उन्होंने मुझे बताया कि वह मेरी अपनी चेतना थी, सोई हुई, जगाई जाने ही वाली, और कि वह अंत्येष्टि एक ऐसी जागृति थी जिसे देखने की आँखें मेरे पास न थीं।

दो बार मेरे सोते हुए मन ने मुझसे मृत्यु के व्याकरण में बात की। दो बार मैंने उस व्याकरण को शब्दशः पढ़ा और केवल अंधकार देखा। और दो बार उन्होंने वही अंधकारमय बिम्ब लिया और उसे, एक वाक्य से, उसके विपरीत में बदल दिया — मुझे दिखाते हुए कि इस मार्ग पर मृत्यु की भाषा बहुत बार जन्म की भाषा होती है, कि विलय और जागृति एक ही चेहरा पहनते हैं, कि चिता और जागना, टूटना और मुक्त होना, दो ओरों से देखी गई एक ही घटना हैं। जो मरता है वह केवल वही है जो सोया हुआ था। जो टूटता है वह केवल वह रस्सी है जिसने बाँधा था। वह मृत्यु कभी मृत्यु थी ही नहीं। वह वह भेस था जो जागृति तब पहनती है जब वह ऐसे मनुष्य के पास आती है जो अब भी मानता है कि वह वही शरीर है जो जलाया जा रहा है।

◆

और एक और मोड़ है, जो स्वयं उस भूमि का है।

मैंने यह अपने बचपन की समाधि की भूमि पर देखा था — वह स्थान जहाँ, एक बालक के रूप में, मैंने पहली बार ज्ञान की मृत्यु का सामना किया था, वह दफ़नाया गया संत जिसकी शिक्षा किसी को स्मरण न थी, भक्ति वहाँ बची रहती जहाँ समझ मर चुकी थी। वहीं से यह पुस्तक आरम्भ हुई थी। और ठीक उसी भूमि पर, वर्षों बाद, मैंने एक आश्रम बनाया, और अपने जीवित सद्गुरु को उस पर लाया, और उन्होंने मुझे बताया कि वह चिता जो मैंने वहाँ देखी थी वह मेरी अपनी सोई हुई चेतना थी, जगाई जाने ही वाली।

उस मृत संत की भूमि जिसका ज्ञान लुप्त हो गया था, वह भूमि बन गई जहाँ मेरी अपनी चेतना जगाई जानी थी। वह स्थान जिसने मुझे, आठ वर्ष की आयु में, यह सिखाया था कि भक्ति ज्ञान से अधिक जीवित रहती है और जिसने मुझे एक संशयवादी बनाया था — वही स्थान, तीन दशक बाद, वह स्थान बन गया जहाँ स्वयं ज्ञान को लौटना था, जागृत, मुझमें, एक जीवित गुरु द्वारा उस सोई हुई वस्तु की परिक्रमा करते हुए जब तक कि वह हिल न उठे। वह चक्र ठीक उसी धरती पर बंद हुआ जहाँ वह खुला था। मैंने वह योजना नहीं बनाई। मैं नहीं जानता कि किसी ने वह योजना बनाई। किन्तु वह बालक जो लकड़ी के धुएँ में खड़ा यह पूछ रहा था कि उस दफ़नाए गए व्यक्ति ने क्या जाना था, वह उस मनुष्य में बड़ा हुआ जिसने उस

स्थान पर एक आश्रम बनाया और जिसे बताया गया कि उसकी अपनी दफ़नाई हुई चेतना जागने ही वाली है।

अब जाग जाएगा। अब वह जाग जाएगा।

उन्होंने यह स्वप्न में चित्त के विषय में कहा। किन्तु मैं इसे हर वस्तु के विषय में कहा गया सुनने लगा हूँ — उस भूमि के, उस बालक के, उस संशयवादी के, स्वयं अपनी ही सतह पर जिए एक जीवन की समूची लंबी निद्रा के। अब वह जाग जाएगा। यही वह है जो वे करने आए थे। विश्वास किए जाने को नहीं। पूजे जाने को नहीं। उस सोई हुई वस्तु की परिक्रमा करने को, धैर्यपूर्वक, जितने वर्ष भी लगें, जब तक कि वह जाग न जाए।

अध्याय पच्चीस:

जब मूसलधार बरसती है

मैंने आपसे उस कहानी का वचन दिया था कि वे अंततः उस आश्रम में कैसे आए जिसे मैंने अपने बचपन की भूमि पर बनाया था, और मैं उसे अब, पूरा, बताना चाहता हूँ, क्योंकि वह मेरे उनके साथ के समूचे जीवन का सबसे विचित्र निरंतर क्रम है, और क्योंकि मैं उसका एकमात्र साक्षी न था। एक समूचे ज़िले ने उसे होते देखा। उनमें से बहुतों ने पहले मुझ पर हँसी उड़ाई थी।

किन्तु आश्रम से पहले एक कुटिया थी, और कुटिया से पहले मेरा भाई था, और मैं आपको ईमानदारी से नहीं बता सकता कि एक दूसरा कैसे बना बिना आपको उसके विषय में बताए। उनका नाम है अशोक पाण्डेय। वे मेरे बड़े भाई हैं — मेरी बहन शांति के जुड़वाँ, जिसे मैंने इस पुस्तक में बहुत पहले नाम दिया था — और वे जीवित हैं, और वे मेरे समूचे परिवार में वह व्यक्ति हैं जिन्होंने मुझे सबसे अधिक प्रेम किया।

वे एक किसान थे। जब मैं युवा था और संघर्ष कर रहा था, तो वे मुझे सहारा देने मुम्बई आए — अपने खेत छोड़कर नगर में काम करने आए — किन्तु वे कारख़ानों को न सह सके, उस प्रकार के श्रम की उस विशेष पिसती हुई कठिनाई को, और उसने उनमें कुछ ऐसा तोड़ दिया जो खेतों ने कभी न तोड़ा था। किन्तु उससे पहले, वे वह वस्तु पहले ही कर चुके थे जिसका मैं कभी ऋण न चुका सकता। उन्होंने अपनी सावधि जमा (फ़िक्स्ड डिपॉज़िट) तोड़ी — आठ हज़ार रुपये, जो उन दिनों एक बड़ी राशि थी, एक किसान की सावधानी से की गई बचत — और उन्होंने वह मुझे थमा दी, और उसने मेरी अभियांत्रिकी के एक वर्ष और मेरे छात्रावास का ख़र्च उठाया। उन्होंने मुझे किसी से भी अधिक प्रेम किया, और मैं उनसे कुछ भी कह सकता था, और मैंने कहा।

और फिर, जैसा परिवारों में होता है, हमारे बीच अनबन हो गई। मैं मुम्बई में था। कुछ हमारे बीच आ गया; मैं उनसे चिढ़ गया; मैंने उन्हें सहारा देना बंद कर दिया और मैंने गाँव जाकर

उनसे मिलना बंद कर दिया। दो वर्ष तक हमारे बीच कोई सम्पर्क ही न रहा — मेरे उस भाई की ओर मेरे मौन के दो वर्ष जिसने मेरे लिए अपनी बचत ख़ाली कर दी थी।

फिर किसी ने मुझे बताया कि उन्होंने उन दो वर्षों में क्या किया था।

उन्होंने एक कुटिया बनाई थी। अपने ही हाथों से — मिट्टी, बाँस, सूखी घास — एक मित्र की सहायता से, हमारे गाँव की भूमि पर, और वे उसमें रहने चले गए थे, अपने ही परिवार से अलग। और वे स्वामी जी की उपासना कर रहे थे। वे जानते थे कि मैं अपने सद्गुरु का कट्टर भक्त बन गया हूँ, और वे स्वयं उस ओर मुड़ गए थे, और वे उस कुटिया में इतनी कठोर सादगी में रह रहे थे कि कई-कई दिन वे भोजन तक न करते। उनमें फ़क़ीरी आ गई थी — एक संत की देह-मुद्रा, एक ऐसा व्यक्ति जिसने चुपचाप सांसारिक वस्तुओं के निर्माण में, सम्बन्धों में, अच्छी तरह ग्रहण किए जाने में रुचि लेनी बंद कर दी थी।

जब मैंने यह सुना, तो मेरा हृदय पीड़ा से भर गया। मैं मुम्बई में अपनी कार में बैठा और मैंने गाड़ी चलाई — समूचा मार्ग, वे सारे घंटे — गाँव तक, उन्हें देखने।

और जब मैंने वह कुटिया देखी, और उन्हें उसमें रहते देखा, तो मुझमें कुछ ऐसा उठा जिसकी मैंने अपेक्षा न की थी। मुझे वह चिता स्मरण आई। मुझे वह स्वप्न स्मरण आया जो मुझे वर्षों पहले, मेरे बचपन की उसी भूमि पर दिया गया था — वह चिता जो वहाँ बिछाई गई थी जहाँ एक वस्तु को जलना और जागना था — और वहाँ खड़े अपने भाई की मिट्टी और घास की कुटिया को देखते हुए, मुझे लगा कि यहाँ कोई सम्बन्ध हो सकता है जिसे मैं नाम न दे सकता था किन्तु अस्वीकार भी न कर सकता था। अतः मैंने आश्रम बनाना आरम्भ किया। उसी भूमि पर। जहाँ उनकी कुटिया खड़ी थी।

जब स्वामी जी बाद में आए और उन्होंने यह सब देखा, तो उन्होंने मुझसे एक प्रश्न पूछा जिसने मुझे द्रवित किया और जिसे मुझे अस्वीकार करना पड़ा। उन्होंने पूछा कि क्या हमें अशोक को आश्रम का बाबा बना देना चाहिए — क्या मेरे भाई को उसका निवासी संत होना चाहिए। मैंने कहा कि यह उचित न होगा। अशोक ने अपने परिवार का त्याग नहीं किया था; उन्हें बिठाना समूची बात को एक पारिवारिक मामला, एक मंदिर के भेस में एक पारिवारिक व्यवसाय दिखा देता, और वह अंतिम वस्तु थी जो इस भूमि को बनना चाहिए था। मैंने स्वामी जी से इसके बजाय अनुरोध किया कि वे आश्रम का नेतृत्व करने के लिए अपने ही शिष्यों में

से एक को भेजें। उन्होंने विजय बाबा को भेजा — जो मेरे भाई को गहराई से प्रेम करने लगे, और जिनके साथ अशोक आश्रम में रहे, वे दोनों उस स्थान को साथ सँभालते हुए, मेरा भाई और उनका परिवार और आस-पास के गाँववाले भेजे गए साधु की देखभाल करते हुए।

अशोक कभी संसार के ढंग से चिकने न थे। वे सहज ही चिढ़ जाते, तीखेपन की सीमा तक सादे, उन छोटे शिष्टाचारों में अच्छे नहीं जिनकी लोग अपेक्षा करते हैं। किन्तु उनका हृदय सोने का था, और वे सबसे विश्वसनीय व्यक्ति थे जिन्हें मैंने जाना है, और मित्रता में श्रेष्ठतम — और उनमें की वह फ़क़ीरी कोई ढोंग न थी। वह वास्तविक थी, और वह बढ़ी। अंततः उन्होंने आश्रम छोड़ दिया, और घर छोड़ दिया, और अब वे एक घुमक्कड़ संन्यासी हैं।

मैं इसे यहाँ, उस अभिषेक की कहानी के शीर्ष पर अंकित करता हूँ, क्योंकि जिस भूमि पर वर्षा गिरने वाली थी वह ख़ाली भूमि न थी, और केवल मेरे बचपन की भूमि भी नहीं। वह वह भूमि थी जिसे मेरे भाई ने पहले पवित्र किया था, अपने ही हाथों और अपनी ही भूख से, इससे पहले कि मैंने एक भी दीवार खड़ी की। वह आश्रम जो भी बना, वह एक ऐसी कुटिया के रूप में आरम्भ हुआ जिसे एक किसान ने मिट्टी से बनाया क्योंकि वह उसी सद्गुरु की ओर मुड़ गया था जिसकी ओर मैं मुड़ा था — और मुड़ गया था, अपने ही टूटे हुए, स्वर्णिम, कठिन ढंग से, मुझसे कहीं आगे तक।

◆

मुझे इनकारों से आरम्भ करने दीजिए, क्योंकि वे एक वर्ष चले और वे महत्वपूर्ण हैं।

वे नहीं आएँगे।

मैंने अनुरोध किया, और उन्होंने इनकार कर दिया। मैंने फिर अनुरोध किया, और उन्होंने फिर इनकार कर दिया। और मैं अकेला अनुरोध करने वाला न था — यह वह स्थान है जहाँ इसे कहना है, क्योंकि यह महत्वपूर्ण है और क्योंकि वे मुझे प्रिय थे। दो लोगों ने इस अभियान को मेरे साथ उस समूचे वर्ष ढोया। एक थे श्री मृत्युंजयानंद जी, स्वामी जी के निकट आश्रम के एक साधु, जिन्होंने मेरे पक्ष को भीतर से वैसे ही दबाव दिया जैसे केवल उनका अपना कोई दे सकता था। और दूसरे थे श्री विनय दुबे — वही विनय जिन्होंने, वर्षों पहले, घाटकोपर के एक फ़्लैट में यथार्थ गीता मेरे हाथों में रखी थी और इस समूचे जीवन को गति दी थी। यह

उपयुक्त था, और मैं इससे द्रवित होना कभी न रुका, कि जिस मित्र ने सद्गुरु तक मेरी यात्रा आरम्भ की थी, वही उन दो में से एक भी हो जिन्होंने सद्गुरु को मेरे बचपन की भूमि तक लाने में सहायता की। उन्होंने आरम्भ में वह द्वार खोला था; उन्होंने अंत में उसे खुला रखने में सहायता की। हम तीनों के बीच — भीतर मृत्युंजयानंद जी, बाहर विनय और मैं — हमने अनुरोध किया, और अनुरोध किया, और अनुरोध किया, लगभग एक वर्ष भर। और फिर भी, उस वर्ष के अधिकांश भर, उत्तर नहीं था। उनका इनकार किसी व्यस्त व्यक्ति का अभी नहीं न था। वह कुछ अधिक विचित्र और अधिक निरपेक्ष था। उन्होंने कहा कि उनके गुरु उन्हें वहाँ जाने की अनुमति नहीं दे रहे — कि वह स्वीकृति उनके ऊपर से, उनके अपने सद्गुरु से, नहीं आई थी, और कि उसके बिना वे हिलेंगे नहीं।

मुझे वहाँ रुकना चाहिए, क्योंकि वह आपको उनके विषय में कुछ ऐसा बताता है जो एक महान संत की समूची छवि के विरुद्ध जाता है। यहाँ एक सिद्ध पुरुष थे, समूचे देश में पूजित, जिनका वचन हज़ारों को हिला देता था — और वे एक शिष्य के आश्रम तक इसलिए यात्रा न करते क्योंकि उनके अपने गुरु ने, जो बहुत पहले जा चुके थे, उन्हें अनुमति न दी थी। वे स्वयं, आज्ञा के अधीन जीते थे। जिस वंश-परम्परा के शिखर पर, जैसा मैं जानता था, वे थे, वे स्वयं को किसी वस्तु के शिखर पर नहीं मानते थे; वे अपने सद्गुरु के अधीन ठीक वैसे ही खड़े थे जैसे मैं उनके अधीन खड़ा था, और ऊपर से स्वीकृति के बिना कर्म न करते। मैं उनके पास एक अनुग्रह चाहते हुए आया था। मुझे, उस इनकार में ही, शिष्यत्व का आकार दिखाया जा रहा था — कि वे भी, अपनी ऊँचाई पर भी, सदा तभी हिलते थे जब अनुमति होती।

◆

किन्तु जिस ढंग से वे माने वह स्वयं सबसे विचित्र भाग था।

उन्होंने मुझे एक शर्त दी, और वह शर्त एक वचन का मुखौटा पहने एक इनकार जैसी सुनाई दी। उन्होंने कहा कि वे आएँगे — जब ख़ूब बूँदा-बाँदी होगी तब जाएँगे।

जब मूसलधार बरसेगी। जब भारी वर्षा होगी। मैं भारी वर्षा के दिन आऊँगा।

और फिर उन्होंने वह दिन बता दिया।

तेईस मई।

◆

मैं चाहता हूँ कि आप उसकी असम्भवता अनुभव करें, और उसे अनुभव करने के लिए आपको वह ऋतु जाननी होगी।

तेईस मई, उत्तर प्रदेश में, ग्रीष्म का निर्जीव हृदय है। वह भारत के उस भाग में वर्ष के सबसे गरम, सबसे शुष्क समयों में से एक है — मानसून-पूर्व की वह भट्ठी, जब भूमि पकी और चटकी होती है और आकाश एक श्वेत रिक्त चौंध होता है और वर्षा केवल असम्भाव्य नहीं बल्कि लगभग अनसुनी होती है। उस क्षेत्र में मानसून सप्ताहों बाद तक नहीं आता। अम्बेडकर नगर में तेईस मई को भारी वर्षा का वचन देना एक मरुस्थल में हिमपात के वचन देने के बहुत निकट है। वह होता नहीं। वहाँ रहने वाला हर व्यक्ति जानता है कि वह होता नहीं।

अतः उन्होंने मुझे एक तिथि दी थी जिस पर वे आएँगे यदि मूसलधार बरसे — एक ऐसे दिन जब वह सम्भवतः बरस ही न सकती थी। मैं नहीं जानता था कि इसे कैसे पढ़ूँ। क्या यह एक कोमल न था? एक ऐसी शर्त जो कभी पूरी न होने के लिए रची गई हो? मैंने उसे उलट-पुलट कर देखा और सुलझा न सका। किन्तु उन्होंने एक तिथि बता दी थी, तेईस मई, और मैंने वह तिथि ली और मैं अपने गाँव घर गया और मैंने लोगों को बताया।

◆

उन्होंने मुझ पर विश्वास न किया।

मैं इसे ईमानदारी से अंकित करना चाहता हूँ, क्योंकि यह समूची कहानी का कोरस है और क्योंकि उनका अविश्वास पूर्णतः तर्कसंगत था। मैंने अपने पड़ोसियों को, अपने गाँव और आस-पास के क़स्बों के लोगों को बताया, कि स्वयं परमहंस स्वामी अड़गड़ानंद जी महाराज मेरे आश्रम में, तेईस मई को, उसका अभिषेक करने आने वाले हैं।

और उन्होंने गपशप की, और उनमें से कुछ हँसे।

◆

एक व्यक्ति हैं जिनका नाम मैंने अभी तक नहीं लिया और जो इस अध्याय में लगभग किसी से भी अधिक आते हैं; और यह उचित है कि वे यहीं आएँ — सबसे कठिन वर्ष में, न कि किसी प्रकाशमान वर्ष में।

उनका नाम श्री संतोष बाबा जी है, और वे स्वामीजी के लिए भोजन बनाते हैं।

वे वर्षों से स्वामीजी के लिए भोजन बनाते आए हैं। वे उनके पास रहते हैं — निकट नहीं, बगल में — और उनके साथ यात्रा करते हैं, और वे भोजन जानते हैं: मेरे सद्गुरु को क्या प्रिय है, विधियाँ, मात्राएँ, वह ठीक-ठीक ढंग जिससे कोई वस्तु किसी विशेष व्यक्ति के लिए किसी विशेष ऋतु में बननी चाहिए। यही उनका जीवन है। वे मेरे देखे सबसे सरल और सबसे निर्मल-हृदय संतों में से एक हैं, और मैं संत शब्द जान-बूझकर और बिना किसी अतिशयोक्ति के प्रयोग करता हूँ।

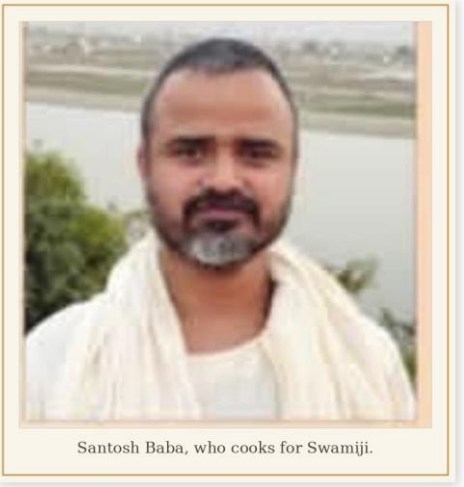

Santosh Baba, who cooks for Swamiji.

मैंने वर्षों में वह भोजन बहुत खाया है। और कभी-कभी — मैं इसे सादे ढंग से अंकित करता हूँ और इस संसार के बाहर का पाठक इसका जो चाहे अर्थ लगाए — स्वामीजी की अपनी थाली में जो शेष रह जाता, वह मुझे दिया जाता। मैंने उसे प्रसाद माना और प्रसाद की भाँति खाया, और मैंने तब माना और अब भी मानता हूँ कि वह उन वस्तुओं में से एक थी जो मुझे चुपचाप उससे तेज़ आगे बढ़ा रही थीं जितना तेज़ मैं स्वयं बढ़ रहा था। इस मान्यता के लिए

मेरे पास कोई तर्क नहीं। मैं कोई गढ़ूँगा भी नहीं। यह उसी बही में है जिसमें इस पुस्तक की शेष हर वह वस्तु है जिसे मैंने लिख तो दिया है पर प्रमाणित नहीं कर सकता।

अब वह वर्ष जिसका मैं वर्णन कर रहा था।

मैं बम्बई में रहता था। आश्रम वहाँ से सत्रह सौ किलोमीटर दूर, अम्बेडकर नगर के मेरे गाँव में बन रहा था, और मैं वह दूरी चलाकर तय करता था — दो हज़ार किलोमीटर एक ओर, अपनी ही कार से, बार-बार। वहाँ पहुँचकर मैं वैसे ही रहता जैसे गाँव रहता है। दिन के अधिकांश भाग बिजली नहीं। कोई बिस्तर नहीं। वह कोई भी साज-सामान नहीं जो मनुष्य तीस वर्ष अच्छा करते हुए जोड़ लेता है। मुझे ठीक-ठीक बताना चाहिए कि मुझे क्या चला रहा था, क्योंकि वह विनम्रता न थी। वह उत्कट लगन थी। मेरे सिर में एक ही बात थी और वह किसी और वस्तु पर नहीं चलती थी: कि मैं स्वामीजी को वहाँ ले आऊँगा, और जब वे आएँगे तो मेरा परिवार और मेरा गाँव और समूचा ज़िला उससे धन्य हो जाएगा।

और उसके नीचे कुछ ऐसा था जिसे मैंने इन पृष्ठों में अभी तक स्वीकार नहीं किया।

उस क्षेत्र में सड़क का एक हिस्सा है, कोई पंद्रह किलोमीटर, जो पैंतीस वर्षों से अनदेखा पड़ा था। कोई उसे नहीं बनाता था। कोई नहीं आता था। और जब से मुझे स्मरण है, मैं यह निजी धारणा ढोता आया था कि वह स्थान किसी वस्तु के नीचे है — कि वह उपेक्षा प्रशासनिक नहीं, उससे पुरानी थी, और यह कि वह क्षेत्र, मेरे पास उपलब्ध सबसे सादे शब्द में, शापित था।

मैं मानता था कि यदि स्वामीजी वहाँ खड़े हो जाएँ, तो वह उठ जाएगा। कि भूमि बदल जाएगी और ज़िला समृद्ध होने लगेगा।

मैं यह इसलिए मानता था क्योंकि मैंने इसे होते देखा था। वर्षों में मैंने बार-बार देखा था कि वे जहाँ भी गए, वह स्थान उसके बाद पहले से बेहतर हुआ।

अब सादा विवरण, और मैं इसे इसलिए देता हूँ क्योंकि मैंने इसे सर्वत्र दिया है। किसी संत को वहीं बुलाया जाता है जहाँ लोग इतने संगठित और इतने प्रेरित हों कि बुला सकें। जिन स्थानों में इतनी सामूहिक इच्छाशक्ति हो, वे वैसे भी सुधरते हैं। वे भीड़ लाते हैं; भीड़ ध्यान लाती है; ध्यान सड़कें और धन और मरम्मत लाता है। समृद्धि संगठित होने के पीछे आती है, और

संगठित होना उनके आने से पहले ही वहाँ था — वही तो उन्हें बुलवा लाया। इस प्रतिमान के टिकने के लिए किसी वस्तु का उठना आवश्यक नहीं, और कोई भी सांख्यिकीविद् मुझसे कहेगा कि मैंने कारण और लक्षण को गड्डमड्ड कर दिया है।

वह विवरण पूर्ण है और मुझे नहीं लगता कि वह ग़लत है। इतना भर अंकित करता हूँ कि मैं दूसरी बात मानता था, और मैंने एक वर्ष उस पर आचरण किया, अपने ही व्यय पर, बिना बिजली के घर के फ़र्श पर सोते हुए, आने-जाने के चार हज़ार किलोमीटर चलाते हुए — इसलिए कि सड़क के एक शापित हिस्से पर कोई संत चल सके।

गाँव ने मुझ पर विश्वास नहीं किया।

यही वह भाग है जिसे मैं टालता रहा। ग्रामवासियों को नहीं लगता था कि वे आएँगे। नगर के लोगों को तो निश्चय ही नहीं। और उनमें से कुछ, जैसा मैंने बाद में जाना, मेरी पीठ पीछे मुझ पर हँस रहे थे — उस बम्बई वाले पर, अपनी कार और अपनी सनक के साथ, एक ऐसे संत के लिए कुछ बनवाता हुआ जो कभी आने ही न था।

और फिर बात हँसी से आगे बढ़ गई।

नगर के कुछ लोग सकतेशगढ़ गए, और उन्होंने संतोष बाबा को खोज निकाला, और उनसे पूछा कि क्या वे जानते हैं कि पांडेय आश्रम के नाम पर चंदा इकट्ठा कर रहा है।

मैंने यह उन्हीं से सुना। मैं सकतेशगढ़ गया था, जैसे जाता था, और संतोष बाबा ने मुझे बताया कि उनसे क्या कहा गया है।

मैंने पूछा कि कौन।

उन्होंने कहा कि वे बाद में बताएँगे।

उन्होंने कभी नहीं बताया, और मैं अब समझता हूँ कि यह जान-बूझकर था, और कि वह दया थी, और यह कि जो व्यक्ति कोई नाम रोक लेता है वह उससे कहीं कठिन काम कर रहा होता है जो नाम दे देता है।

मैं ईमानदारी से बताना चाहता हूँ कि मेरे भीतर क्या हुआ। मैं रो पड़ा। उनके सामने खड़े-खड़े मैं रो पड़ा — क्रोध से नहीं, यद्यपि उसमें कहीं क्रोध भी था, बल्कि उस बात की निरी

अपमानजनकता से। मैंने किसी एक व्यक्ति से एक पैसा नहीं लिया था। एक भी नहीं। उस आश्रम में जो कुछ भी लगा था वह मेरी अपनी जेब से गया था, और उसे लगाने के लिए मैंने एक ओर दो हज़ार किलोमीटर गाड़ी चलाई थी, और उसे लगाने के लिए फ़र्श पर सोया था — और जिस नगर में मैं जन्मा, वहाँ इसका जो प्रतिफल मुझे मिल रहा था वह यह अफ़वाह थी कि मैं आश्रम के नाम पर धन इकट्ठा कर रहा हूँ।

और मैंने, उसी बीच से, कहा: मैं यह स्वामीजी को बताऊँगा।

संतोष बाबा ने न मुझसे तर्क किया, न मुझे बहलाया। उन्होंने मेरी ओर देखा — और मैं चाहता हूँ कि पाठक लक्षित करे कि उन्होंने यह सब एक क्षण में मेरे चेहरे से पढ़ लिया, बिना किसी प्रमाण के, बिना किसी हिसाब के, बिना किसी सत्यापन के, केवल इस बल पर कि उन्हें सामने खड़े एक रोते हुए व्यक्ति में क्या दिख रहा था — और उन्होंने कहा:

"अब मैं समझ गया कि वे क्या कर रहे हैं। तुम इसकी चिंता मत करो और दुःखी मत हो।"

मैंने स्वामीजी को नहीं बताया।

मैंने इस पर बहुत विचार किया है, और मैं इसे सजाऊँगा नहीं। मैं नहीं जानता कि उस संयम में कितना सद्गुण था और कितनी थकान, और कितना यह भय कि अपने सद्गुरु के पास कोई शिकायत ले जाना उन्हें मेरे विषय में कुछ ऐसा दिखा देगा जो मैं नहीं चाहता था कि वे देखें। सम्भवतः तीनों। किन्तु मैं उसे उनके पास नहीं ले गया, और यह इस पुस्तक की उन थोड़ी वस्तुओं में से एक है जिन्हें न करने पर मुझे प्रसन्नता है।

और उसके बाद संतोष बाबा मेरा ध्यान रखते रहे। हर बार जब मैं वहाँ होता। वे मेरा कुशल पूछते, देखते कि मैंने खाया या नहीं, देखते कि मैं कैसा हूँ — उस व्यक्ति का वह छोटा निरंतर ध्यान जिसने आपके विषय में निश्चय कर लिया हो और जो उस निश्चय को दोबारा नहीं खोलता। और भारत में कहीं भी, किसी भी आश्रम में, यदि मैं भीतर जाता और संतोष बाबा स्वामीजी के साथ वहाँ होते, तो मुझे देखकर उनकी आँखों में एक चमक आ जाती। वे बस प्रसन्न हो जाते। वर्षों तक।

और एक और हैं जिनका नाम मुझे यहीं लेना चाहिए, क्योंकि वे मेरी प्रातःकालीन स्मृति में इन्हीं के बगल खड़े हैं, और क्योंकि यह पुस्तक उन लोगों के विषय में लापरवाह रही है जो किसी परम्परा को रहने योग्य बनाते हैं।

तानसेन बाबा उस परम्परा के वयोवृद्ध हैं, जैसे नारद महाराज जी हैं। वे गाते हैं। वे भजन दिव्य रूप से गाते हैं — मैं यह शब्द सावधानी से प्रयोग करता हूँ और इसे वर्णन के रूप में कहता हूँ, प्रशंसा के रूप में नहीं — और उन्होंने बारहमासी गाई है, बारह महीनों का वह गीत जो एक वर्ष को उसकी ऋतुओं में से चलाकर ले जाता है और जिसे थामना छोटी बात नहीं। उनकी साधना के विषय में मैं बहुत कम जानता हूँ और इसका ढोंग नहीं करूँगा; उस गहराई के लोग अपनी व्याख्या नहीं करते और मैंने कभी पूछा भी नहीं। जो मैं बता सकता हूँ वह अकेली वही बात है जिसे बताने का मैं अधिकारी हूँ — कि उनके पास होना कैसा लगता है। वह शांतिपूर्ण है। सरलता से और निरंतर शांतिपूर्ण, उनकी संगति में, सदा।

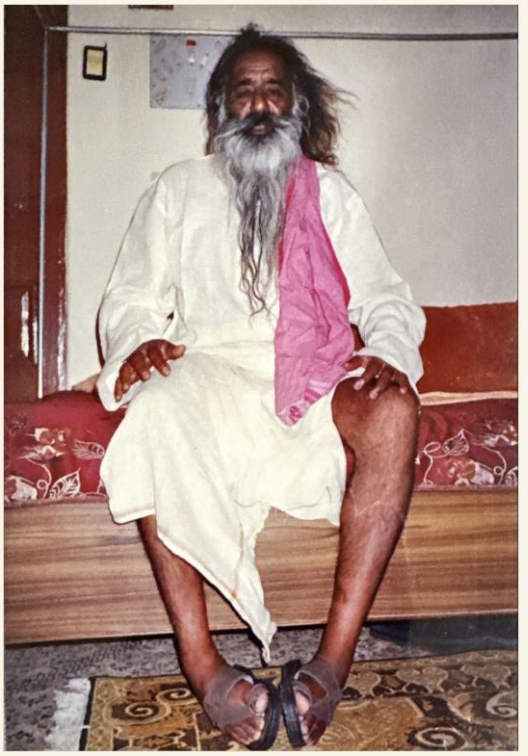

Swamiji in samadhi.

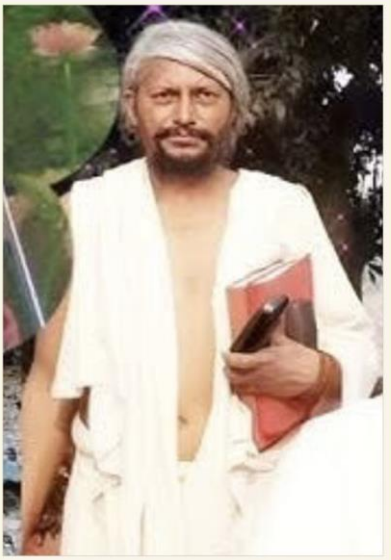

Tansen Baba.

मैं उन्हें प्रतिदिन प्रातः स्मरण करता हूँ।

अपनी पूजा में, जब मैं उस क्रम से उतरता हूँ — श्री सत्संगी महाराज जी, श्री परमानंद जी महाराज, स्वामीजी, श्री सच्चिदानंद महाराज जी, श्री भगवानंद जी महाराज, श्री बच्चा बाबा जी, श्री श्रीराम बाबा जी, श्री नारद महाराज जी, श्री तानसेन बाबा जी — तब श्री संतोष बाबा जी आते हैं, और वे हर दिन आते हैं।

मैं इस अंश को यह कहकर समाप्त करना चाहता हूँ जिसे देखने में मुझे बहुत समय लगा। यह पुस्तक एक ऐसे व्यक्ति का विवरण है जो सबसे बड़े प्रश्न का उत्तर खोजने निकला, और जिसे स्वप्न मिले और एक पर्वत और एक झील और बहुत कुछ और भी। और उसके सबसे बुरे वर्ष में — जब मेरे अपने नगर ने तय कर लिया कि मैं आश्रम के नाम पर धन इकट्ठा कर रहा हूँ, और मैं किसी के सामने खड़ा रो रहा था क्योंकि उसे रखने के लिए मेरे पास और कोई स्थान न था — तब जिन्होंने मुझे सँभाला वे श्री संतोष बाबा जी थे। उन्होंने मुझसे कोई प्रमाण नहीं माँगा। उन्होंने कोई तर्क नहीं दिया। उन्होंने मेरी ओर देखा और जान लिया, और उसके बाद वर्षों तक मेरा ध्यान रखा और एक बार भी उस बात को फिर नहीं उठाया।

◆

मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे अपने संदेह थे — इस विषय में नहीं कि क्या वे अपना वचन निभाएँगे, बल्कि वर्षा के विषय में। उत्तर प्रदेश में तेईस मई को भारी वर्षा कैसे हो सकती थी? मैं नहीं समझता था कि वह शर्त कैसे पूरी हो सकती थी। किन्तु मैं, तब तक, यह सीख चुका था कि अपनी समझ को उनके वचन के विरुद्ध न लगाऊँ। मैं वह पाठ एक बगीचे में, एक कीड़े के साथ, सीख चुका था, और मैं उसे दुबारा सीखने का अभिप्राय नहीं रखता था।

◆

उस दिन से पहले, एक छोटी बात थी जिसे मुझे सम्मिलित करना है, क्योंकि वह मेरे न-सुनने के प्रतिरूप की है और क्योंकि वह उनके पास जाते समय हुई।

मैं इसका उल्लेख करता हूँ क्योंकि वह वही पाठ है जो उस बगीचे का था, फिर आता हुआ: वे एक सादा आदेश देते हैं, मैं उसे आधा सुनता हूँ, मैं अपना विवेक उसके स्थान पर रख देता हूँ, और वह छोटा सटीक परिणाम आता है। वे मुझे वर्षों से आज्ञापालन सिखा रहे थे, कीड़ों के काटों में और ख़राब होती कारों में, और मैं, अब भी, एक धीमा विद्यार्थी था। तेईस के निकट आते हुए इसे मन में रखिए, क्योंकि तेईस को मैं अंततः, एक बार, अपने समूचे विवेक के विरुद्ध ठीक वही करने वाला था जो उन्होंने कहा था — और मुझे बहुत प्रसन्नता होने वाली थी कि मैंने किया।

◆

तेईस का सूर्योदय हुआ। शक्तेशगढ़ में गरमी थी। स्वच्छ आकाश। उस ऋतु की भट्ठी, ठीक वैसी ही जैसी हर तेईस मई सदा रही थी।

और फिर मेरा मोबाइल फ़ोन बजा। वह मेरा गाँव था।

◆

मैं चाहता हूँ कि आप उस फ़ोन-कॉल की समूची विचित्रता थामे रहें।

उन्होंने कहा था: मैं तब आऊँगा जब भारी मूसलधार बरसेगी, तेईस मई को। तेईस मई को, उत्तर प्रदेश की ग्रीष्म की निर्जीव शुष्क गरमी में, एक ऐसे स्थान पर जहाँ मई में वर्षा नहीं होती, इतनी भारी मूसलधार बरसी थी कि मेरे अपने लोग मुझसे विनती कर रहे थे कि मैं न

आऊँ। वह असम्भव शर्त पूरी हो गई थी — इतनी पूर्णता से, इतनी अपव्ययी रूप से पूरी हुई कि उसकी पूर्ति ही अब उस भेंट को रोकने का ख़तरा बन रही थी जिसकी वह शर्त थी। केवल वर्षा नहीं हुई थी। वह उसी ढंग से बरसी थी जैसा उन्होंने कहा था, ख़ूब बूँदा-बाँदी, भारी वर्षा, ठीक जैसा वचन दिया था, ठीक बताए हुए दिन, ठीक उस ऋतु में जिसमें वह न हो सकती थी।

मैंने, उस क्षण में, कोई विस्मय न किया। विस्मय करने का समय ही न था। वहाँ केवल एक निर्णय लेना था: मेरे अपने लोग, वहाँ ज़मीन पर, मुझसे कह रहे थे कि मैं उन्हें न लाऊँ। और मैं यह समाचार लेकर स्वामी जी के पास गया।

◆

मैंने उन्हें बताया कि वर्षा आ गई है, और सब कुछ चौपट कर दिया है, और कि वे कह रहे हैं कि हमें नहीं आना चाहिए।

और उन्होंने कहा: "चलो, हम चलेंगे — हेलिकॉप्टर की तरह।"

चलो, हम चलेंगे। हम चलेंगे — हेलिकॉप्टर की तरह।

◆

हम गाँव पहुँचे। और अंतिम खंड कीचड़ था।

मेरी कार, आगे रास्ता दिखाती हुई, कीचड़ में फँस गई। और मैं नीचे उतरा — कीचड़ में, सबके सामने — और मैंने, स्वयं, उन दरियों को व्यवस्थित करना आरम्भ कर दिया जो वर्षा से अस्त-व्यस्त हो गई थीं, ताकि उनकी कार के आगे बढ़ने का मार्ग बने। मैंने पहले यह अकेले किया, अच्छे वस्त्रों में एक व्यक्ति कीचड़ में उतरकर हाथों से दरियाँ बिछाता हुआ। और फिर, मुझे ऐसा करते देखकर, बाक़ी आ गए — हर कोई उतरा और सम्मिलित हो गया, और साथ मिलकर हमने वह मार्ग बनाया।

मैंने उस क्षण के विषय में प्रायः सोचा है। मैंने एक वर्ष उन्हें आने के लिए मनाने में बिताया था; वह दिन आ गया था; वह असम्भव वर्षा आ गई थी; और यहाँ मैं अंत में था, अपने ही गाँव के कीचड़ में घुटनों के बल, अपने ही हाथों से दरियाँ बिछाता हुआ ताकि मेरे सद्गुरु की

कार उस आश्रम तक पहुँच सके जो मैंने बनाया था। उसमें कोई गरिमा न थी और वह सबसे गरिमामय वस्तु थी जो मैंने कभी की। आश्रम जिसके लिए भी था — और उन्होंने प्रश्न किया था कि वह किसलिए था — मैं उस कीचड़ में घुटनों के बल बैठकर कुछ ऐसा समझा जो कोई अभिषेक मुझे न सिखा सकता था: कि उसका समस्त, वह बनाना और वह मनाना और वह वर्षा और वह कीचड़, मुझे मेरे घुटनों पर ले आया था, जो सम्भवतः वही है जहाँ उसे मुझे सदा से लाने के लिए रचा गया था।

◆

वे धूना घर तक ऊपर आए, जहाँ त्रिशूल स्थापना होनी थी।

और उससे पहले, मैं उन्हें माला पहनाना चाहता था।

◆

और उस आश्रम के उस छोटे सादे कमरे की खिड़की से गाँव की ओर देखते हुए जो मैंने अपने बचपन की भूमि पर बनाया था, उन्होंने कहा:

"यह पुण्य तुम्हारे बुढ़ापे में काम आएगा।"

यह पुण्य, यह सत्कर्म — यह तुम्हारे बुढ़ापे में तुम्हारे काम आएगा।

◆

मैंने वह वाक्य अपनी जेब में एक पत्थर की भाँति रखा है, बार-बार छूने से चिकना हो गया।

उन्होंने आश्रम की वास्तुकला के रूप में प्रशंसा नहीं की। वे मुझे पहले ही बता चुके थे कि सत्य और ईंटों के समुच्चय के बीच कोई सम्बन्ध नहीं। किन्तु उन्होंने उसके बनाने को पुण्य नाम दिया — पुण्य के रूप में, एक सच्चे भले के रूप में — और उन्होंने उसे आगे की ओर फेंका, एक ऐसे समय में जिस तक मैं अभी पहुँचा न था, मेरा बुढ़ापा, और मुझे बताया कि वह तब मेरे काम आएगा। वे समूचा मार्ग आए थे, उस असम्भव वर्षा के आर-पार, एक चौपट कीचड़-भरे स्थल तक जिसके विरुद्ध उन्हें चेताया गया था, मार्ग के हर अन्य आश्रम को अस्वीकार करते हुए, मेरे बचपन की भूमि में एक त्रिशूल गाड़ने और कीचड़ में घुटनों के बल

बैठे एक नाटे व्यक्ति को यह बताने कि उसका करना पुण्य था, और वह पुण्य उसके आगे काम आएगा।

मुझे उस वाक्य के साथ सावधान रहना है, क्योंकि यह ठीक उसी प्रकार का वाक्य है जिसे मनुष्य चुपचाप एक दावे में बदल लेता है। मैंने स्वयं को एक से अधिक बार ऐसा करते पकड़ा है, और मैं उस प्रलोभन को यहीं रख देना उचित समझता हूँ, बजाय इसके कि वह पाठक पर बिना बताए काम करता रहे। जो पाठ सबसे सरलता से आता है वही सबसे अधिक स्वार्थपूर्ण है: कि आश्रम स्वयं मेरे लिए वहाँ रहेगा — एक छत, जाने का एक स्थान, कोई ऐसी वस्तु जिसे मैंने बनाया और जिस पर मैं किसी दिन बस सकता हूँ। मुझे नहीं लगता कि उन्होंने यह कहा था, और उस भूमि पर मेरा कोई भी दावा नहीं। वह मेरी नहीं है। वह कभी मेरी थी ही नहीं। मैंने उसे बनवाया और दे दिया; और जिस व्यक्ति से मुँह पर कहा जा चुका हो कि सत्य और ईंटों के समुच्चय के बीच कोई सम्बन्ध नहीं, उसे किसी ईंट-समुच्चय के भीतर अपना बुढ़ापा नियोजित करने का कोई अधिकार नहीं। पुण्य सम्पत्ति नहीं है। वह कोई जमा-राशि नहीं जिसे आप किश्तों में निकालें। उन्होंने एक कर्म को पुण्य कहा और कहा कि वह पुण्य आगे मेरे काम आएगा — और पुण्य किसी मनुष्य के काम उसे छत देकर नहीं आता।

एक दूसरा पाठ है, और मैं उसे पहले से अधिक थामता हूँ, यद्यपि उसे भी हल्के से ही थामता हूँ: कि मेरे बुढ़ापे में जो मेरे काम आएगा वह भवन नहीं, वह निकटता है — कि यह कर चुकने के बाद, मैं उनके साथ, या उनके निकट, या उसी परम्परा में कहीं थमा हुआ रहूँगा, ठीक उस समय जब मुझे उसकी सबसे अधिक आवश्यकता होगी। मैं यही चाहूँगा कि इसका यही अर्थ हो। और मैं जानता हूँ कि इसे चाहना ही इस पर संदेह करने का एक कारण है। और एक तीसरी सम्भावना है, जो मुझे सबसे अधिक सम्भव लगती है: कि उनका अभिप्राय कुछ ऐसा था जो मैंने सोचा ही नहीं, जिसे मैं तब समझूँगा जब मैं वस्तुतः वृद्ध हो जाऊँगा, और जिसे मैं अब कितना भी बैठकर नहीं समझ सकता।

अतः मैंने निश्चय करना छोड़ दिया है। मैंने उस वाक्य को वहीं रख दिया है जहाँ मैंने टूटी हुई जीप, और गरुड़, और मन के विषय में कहे चार शब्द रखे — उसके किनारे के पास जिसे मैं समझा सकता हूँ, और ठीक उसके भीतर नहीं। उन्होंने इसे एक छोटी खिड़की पर, वर्षा में,

कीचड़ में घुटनों के बल बैठे एक व्यक्ति से कहा था। उसका अंततः क्या अर्थ निकलेगा, यह अभी मेरा काम नहीं।

◆

मैंने उस दिन उस वर्षा पर विस्मय न किया। करने को बहुत अधिक था। किन्तु मैंने तब से विस्मय किया है, और मैंने स्वयं को विस्मय करते देखा है, और मैंने मुझमें बैठे संशयवादी को, जैसा वह सदा प्रयास करता है, उस विस्मय को अलग-अलग करने का प्रयास करते देखा है।

वह प्रयास कर सकता है। उत्तर प्रदेश में मई में भारी वर्षा विरल है किन्तु असम्भव नहीं; मानसून-पूर्व के अप्रत्याशित तूफ़ान आते हैं; एक व्यक्ति जिसने पर्याप्त पहले एक तिथि बताई हो, वह, संयोग से, अपनी शर्त पूरी करवा सकता है। यह सब सत्य है और मैं इसे ईमानदारी से अंकित करता हूँ, क्योंकि मैं सदा करता हूँ।

किन्तु मैं वह कहूँगा जिसे कहने का अधिकार मैंने इस समूची पुस्तक के बाद अर्जित किया है, जो केवल यह है: उन्होंने कहा कि वे तब आएँगे जब मूसलधार बरसेगी, तेईस मई को, और तेईस मई को, ग्रीष्म के शुष्क हृदय में, मूसलधार बरसी — इतनी भारी कि उसने लगभग उसी भेंट को रोक दिया जिसकी उसने अनुमति दी — और वे आए, हेलिकॉप्टर की तरह, उसकी बर्बादी के आर-पार, हर अन्य द्वार को अस्वीकार करते हुए जब तक कि वे मेरे तक न पहुँच गए। आप उसे जैसे चाहें तौलें। एक समूचे ज़िले ने उसे तौला। उनमें से बहुतों ने हँसी उड़ाई थी। मैं नहीं जानता कि संध्या तक उनमें से कितने अब भी हँस रहे थे।

मैं केवल इतना जानता हूँ कि मैं कीचड़ में घुटनों के बल था, और कि वर्षा ठीक वैसे ही आई थी जैसे उन्होंने कहा था, और कि वे एक छोटी खिड़की पर बैठे एक ऐसे गाँव को देख रहे थे जिसे वे देख सकते थे किन्तु एक ऐसे घर को जिसे वे न देख सकते थे, और मुझे बता रहे थे कि जो मैंने बनाया है वह मेरे बुढ़ापे में मेरे काम आएगा।

मैं अब उस आयु में हूँ। वे सही थे। किन्तु फिर, वे उसे खिड़की से देख रहे थे, और मैंने उन्हें एक बार भी किसी ऐसी वस्तु को देखते हुए कभी नहीं जाना जिसे वे देख न सकते हों।

◆

मैंने एक आश्रम बनवाया, और मेरे सद्गुरु असम्भव वर्षा के बीच से उसमें आए, और एक छोटी खिड़की पर मुझसे कहा कि जो मैंने बनाया है वह मेरे बुढ़ापे में काम आएगा।

और उसके बाद उन्होंने अच्छा-ख़ासा समय यह सुनिश्चित करने में लगाया कि वह मेरे सिर पर न चढ़ जाए।

मैं दो अवसर अंकित करना चाहता हूँ, क्योंकि मुझे इनमें से कोई भी सुनाने में कभी आनंद नहीं आया और ठीक इसी कारण वे इस पुस्तक में आते हैं।

पहला ठाणे में था, उसके कुछ ही समय बाद। वे किसी और के घर आए हुए थे, और विश्राम करने चले गए थे, और शयनकक्ष में लेटे थे। और मैं — जो तब तक ऐसा व्यक्ति बन चुका था जिसने एक आश्रम बनवाया था और जिसकी प्राण-प्रतिष्ठा स्वयं परमहंस स्वामी अड़गड़ानंद जी महाराज ने की थी — भीतर चला गया। मैंने खटखटाया नहीं। मैंने पूछा नहीं। मुझे सूझा ही नहीं। मेरे मन में यह आया ही नहीं कि कोई द्वार मुझ पर भी लागू हो सकता है।

और उन्होंने कहा, किसी विशेष से नहीं और ठीक मुझसे:

"अब पांडेय भी बड़ा आदमी हो गया है — कहीं भी आ-जा सकता है।"

मुझे लगा जैसे पैरों तले की भूमि खिसक गई हो, और जब-जब मुझे यह स्मरण आया है, तब-तब पुनः वैसा ही लगा है।

उन्होंने मुझे डाँटा नहीं। उस वाक्य में भर्त्सना का एक शब्द नहीं है; आप यह किसी मित्र से कह सकते हैं और स्नेह से कह सकते हैं। और वह मुझे मिले सबसे पूर्ण सुधारों में से एक था। उन्होंने बस वह वर्णन कर दिया जो मैंने अभी-अभी किया था — अन्य पुरुष में, ऊँचे स्वर में, ऐसे कक्ष में जहाँ और लोग भी थे — और मुझे उसी वर्णन में खड़ा छोड़ दिया।

मैंने समय पर विचार किया है, जो आकस्मिक नहीं हो सकता और जिसे उन्होंने रचा भी नहीं हो सकता, क्योंकि द्वार से भीतर जाने वाला मैं था। मैंने एक वर्ष उन्हें अपने आश्रम आने के लिए मनाने में लगाया था। मैं कीचड़ में घुटनों के बल बैठा था। मुझे बताया गया था कि उसका बनना पुण्य है। और उस सबके कुछ सप्ताह बाद कहीं, मेरे भीतर किसी ने चुपचाप यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि जिस मनुष्य ने ऐसा किया हो उसे खटखटाने की आवश्यकता नहीं।

मैंने इसे चेतावनी माना, और उनकी इस प्रकार की प्रत्येक टिप्पणी को मैंने चेतावनी ही माना है, और हर बार लज्जित हुआ हूँ। मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि उस लज्जा ने मेरी श्रद्धा को एक बार भी क्षति नहीं पहुँचाई — वह कभी कम नहीं हुई, पच्चीस वर्षों में एक दिन के लिए भी नहीं। किन्तु वे ठीक इसी की प्रतीक्षा में थे। वे जानते थे कि वस्तुएँ बनाना उनके बनाने वालों के साथ क्या करता है। उन्होंने स्वयं मुझसे कहा था कि सत्य और ईंटों के ढेर के बीच कोई सम्बन्ध नहीं, और मैं फिर भी ईंटें जोड़ता चला गया, और वे आकर उन्हें आशीर्वाद दे गए, और फिर वे खड़े रहे जब मैंने जाना कि उन ईंटों ने मेरे साथ क्या कर दिया है।

दूसरा अवसर छोटा है और मुझे अधिक प्रिय है, क्योंकि उसमें वे मेरे अहंकार को नहीं, मेरी अधीरता को सुधार रहे हैं, और क्योंकि उसमें मेरी पत्नी हैं।

कुछ वर्ष ऐसे रहे जब आश्रम मुझे कठिन लगता था। वे नहीं — वे कभी नहीं। उनके चारों ओर का तंत्र: वे साधु जो किसी संत के विश्राम की रक्षा करते हैं, जो आपसे प्रतीक्षा करने को कहते हैं, जो तय करते हैं कि कौन कब भीतर जाएगा। अब मैं इसे भली-भाँति समझता हूँ। तब नहीं समझता था, और मुझे झुँझलाहट होती थी, और उस पर भी मुझे गर्व नहीं।

और चूँकि मैं परिचित था, मुझे सरलता से प्रवेश मिल जाता। यही कठिनाई थी। महाराष्ट्र के पालघर आश्रम में, जहाँ मैं और मेरी पत्नी एक बार अपने एक मित्र और उनकी पत्नी के साथ गए थे, मैं सीधे भीतर चला गया — और अनुपमा नहीं जा सकीं। वे भीड़ के दबाव में बाहर रह गईं, भीतर आने के लिए जूझती हुईं, जबकि उनका पति पहचाने जाने के बल पर भीतर चला गया था।

तो मैं उन्हें पुकारता। कक्ष के आर-पार, सबके ऊपर से, चिल्लाकर कि मेरी पत्नी को आने दिया जाए।

और स्वामीजी, अपनी लाठी मुट्ठी में थामे बैठे हुए, उससे मुझे एक धक्का देते और कहते:

"आ जाएगी। कहीं भाग नहीं जाएगी।"

मुझे वह ठीक-ठीक सुनाई देता है। उसमें तनिक भी गम्भीरता नहीं। लाठी का एक धक्का और एक सपाट, व्यावहारिक वाक्य — एक ऐसे वयस्क पुरुष से जो लोगों से भरे हॉल में उस पत्नी के लिए तमाशा कर रहा था जो तीस फ़ीट दूर थी और चलने में पूर्णतः सक्षम।

आ जाएगी। कहीं भाग नहीं जाएगी।

मैंने इसे दूसरे के बगल जान-बूझकर रखा है, क्योंकि दोनों मिलकर वही सब हैं जो उन्होंने पच्चीस वर्षों तक मेरे साथ किया। उन्होंने मुझे बड़ा आदमी नहीं बनने दिया, और उन्होंने मुझे जल्दी में नहीं रहने दिया। और दोनों बार उन्होंने यह एक ही स्वर में किया — न कोई उपदेश, न कोई भर्त्सना, न ऊँचा स्वर। अन्य पुरुष में कहा गया एक वाक्य, और एक लाठी का धक्का, और सुन लेने के लिए लोगों से भरा एक कक्ष।

◆

अध्याय छब्बीस:

वह चाल जो मैं पहले ही देख चुका था

अब मैं एक छोटी वस्तु की ओर लौटना चाहता हूँ जिसे थामने और फिर जाने देने को मैंने आपसे, बहुत समय पहले, कहा था। उस चिता के स्वप्न में — मेरे पहले तीन स्वप्नों में से दूसरे में — मैंने आपको बताया था कि मैंने देखा कि स्वामी जी अग्नि की परिक्रमा करते समय कैसे चलते हैं, और मैंने आपसे कहा था कि उसे लक्षित करें और उसका कोई अर्थ न निकालें, और मैंने वचन दिया था कि एक वर्ष बाद, जागती हुई अवस्था में, इस पुस्तक का समूचा फ़र्श खिसक जाएगा। यह वह अध्याय है जहाँ वह खिसकता है।

◆

मुझे आपको ठीक-ठीक याद दिलाने दीजिए कि मैंने तब क्या कहा था, क्योंकि सटीकता महत्वपूर्ण है।

मैंने यह नहीं कहा था कि मैंने उनकी चाल में कुछ रहस्यमय देखा। मैंने इसके विपरीत कहा था — कि स्वप्न ने, उसी उग्र सटीकता के साथ जो उसने मेरी पुत्री के हरे वस्त्र पर लगाई थी, वह विशिष्ट ढंग प्रस्तुत किया जिससे उनका शरीर चिता की परिक्रमा करते समय चलता था। उनकी चाल। उनकी वह विशेष देह-मुद्रा। उनकी गति की छाप, जो किसी व्यक्ति के लिए एक चेहरे जितनी ही व्यक्तिगत होती है और जाली बनाना उससे कहीं कठिन। मैंने उसे स्वप्न में देखा, और मैंने उसे रखा, उस ढंग से जैसे मैंने वह हरा वस्त्र रखा था, बिना जाने क्यों।

अब यहाँ वह बात है जो मैं आपको तब न बता सका, क्योंकि आपको बताना उसे बिगाड़ देता, और क्योंकि मैं चाहता हूँ कि आप उस क्रम को ठीक वैसे ही अनुभव करें जैसे मैंने उसे जिया।

जब मैंने चिता का स्वप्न देखा, तब मैंने उन्हें चलते हुए अभी देखा न था।

◆

मुझे यहाँ सावधान और ईमानदार रहना होगा, क्योंकि इस अध्याय का समूचा भार कालक्रम पर टिका है, और एक पाठक का उसे जाँचना उचित है।

उस स्वप्न के समय तक मैं उनसे मिल चुका था — निस्संदेह मिल चुका था; वह स्वप्न जंगल के आश्रम में उनके निकट मेरी दूसरी रात को आया था। मैंने उनका चेहरा देखा था। मैंने उनके चरण दबाए थे। मैं जानता था कि वे कैसे दिखते हैं। अतः यह कोई दावा नहीं कि मैंने ऐसे व्यक्ति का स्वप्न देखा जिससे मैं कभी मिला ही न था।

◆

मैंने कई बार यह वर्णन करने का प्रयास किया है कि उस क्षण मुझमें क्या हुआ, और मुझे उसके बराबर कोई भाषा कभी न मिली, अतः मैं आपको बस वह तथ्य बता दूँगा।

मैंने वह चाल देखने से पहले वह चाल देख ली थी।

◆

मैंने किसी को नहीं बताया। कहने को क्या था, और किससे? मैंने उसे फ़ाइल कर लिया, जैसे मैं हर वस्तु को फ़ाइल करता था, उस बही में जिसे मुझमें बैठे संशयवादी ने कभी रखना बंद न किया था: *आज उन्हें चलते देखा। मैंने यह चाल पहले देखी है — चिता के स्वप्न में, एक वर्ष पहले, इससे पहले कि मैंने उन्हें कभी चलते देखा हो। कारण अज्ञात। मत त्यागो।*

किन्तु मैं इस विषय में ईमानदार रहना चाहता हूँ कि इस एक ने स्वयं उस बही के साथ क्या किया, क्योंकि यह अन्य प्रविष्टियों से भिन्न था, और वह भिन्नता ही इस अध्याय का मर्म है।

मैंने जो अधिकांश विसंगतियाँ अंकित की थीं वे ऐसी वस्तुएँ थीं जिन्हें मैं, प्रयत्न से, समझा-बुझाकर किनारे कर सकता था। हवाई अड्डे पर वह झुकाव — प्रतिवर्त, सामाजिक अनुकूलन। वे दृष्टियाँ — नवागंतुकों के लिए एक संत की अभ्यस्त आँख। वह जीप, वह रुका हुआ मन, यहाँ तक कि वह वर्षा — प्रत्येक के लिए एक संशयपूर्ण विवरण उपलब्ध था, पूर्ण, यदि मैं चाहता। मैंने आपको वे विवरण इस समूची पुस्तक भर ईमानदारी से दिए हैं, क्योंकि वे विद्यमान हैं और मैं यह ढोंग नहीं करूँगा कि वे नहीं हैं।

किन्तु मुझे उस चाल के लिए कोई विवरण न मिला।

मैंने प्रयास किया। यही वह है जो मुझ जैसा व्यक्ति करता है; मैंने कठिन प्रयास किया। सम्भवतः मैंने उन्हें जंगल में चलते *देखा* हो और भूल गया होऊँ, और स्वप्न ने एक ऐसी स्मृति का सहारा लिया हो जिसका मुझे पता न था कि मेरे पास है। सम्भवतः स्वप्न की वह चाल सामान्य रही हो, और मैंने उन्हें चलते देखने के बाद उस पर वह विशिष्टता पिछले-से जड़ दी हो, स्मृति ने कृपापूर्वक मिलान कस दिया हो। सम्भवतः। ये वे बच निकलने के मार्ग हैं, और मैंने प्रत्येक को परखा, और यहाँ वह है जो मैंने पाया: उनके लिए मुझे यह मानना पड़ता कि मेरी अपनी स्मृति ठीक वही सटीकता गढ़ रही थी जिसने उस वस्तु को उल्लेखनीय बनाया — कि मैंने वास्तव में स्वप्न में कोई विशिष्ट चाल न देखी थी, केवल एक धुँधली, और अनजाने में उसे बाद में अनुकूल बनाने के लिए सम्पादित कर दिया था। और मैं वह न मान सका, क्योंकि मुझे वह स्वप्न-चाल जागती हुई चाल देखने से *पहले* स्मरण थी। मैंने उसे एक वर्ष ढोया था। वह तब विशिष्ट थी जब मैंने उसे ढोया, पीछे मुड़कर विशिष्ट नहीं। वह हरा वस्त्र विशिष्ट था; वह चाल विशिष्ट थी; वे एक ही टुकड़े की थीं, उसी स्वप्न से रखी गईं, उसी सटीकता के साथ, और वे दोनों मेरे अधिकार में एक वर्ष रहीं इससे पहले कि वह जागती हुई चाल कभी घटित हुई।

◆

मैं आपको नहीं बताने वाला कि इसका क्या अर्थ है। आप अब तक जान चुके हैं कि मैं नहीं बताऊँगा।

किन्तु मैं आपको बताऊँगा कि इसने क्या किया, जो आपको यह बताने से अधिक ईमानदार है कि इसका क्या अर्थ है। इसने मुझमें किसी वस्तु को एक स्तम्भ से दूसरे में सरका दिया। वर्षों तक मैंने, भली-भाँति स्वीकार किए बिना, दो स्तम्भ रखे थे — उन वस्तुओं का स्तम्भ जिनकी व्याख्या की जा सकती थी, चाहे कितनी ही विचित्रता से, और उन वस्तुओं का स्तम्भ जिनकी नहीं की जा सकती थी। और मैंने लगभग हर वस्तु को पहले स्तम्भ में रखा था, क्योंकि मैं उस प्रकार का व्यक्ति हूँ जो वस्तुओं को पहले स्तम्भ में रखता है, जो किसी वस्तु को दूसरे में सरकाने से बचने के लिए चातुर्य में लगभग कोई भी क़ीमत चुकाएगा।

वह चाल दूसरे स्तम्भ में गई। वह पहली वस्तु थी जो कभी गई, स्थायी रूप से, मेरे समूचे चातुर्य के परे। और एक बार जब एक वस्तु उस स्तम्भ में होती है — एक बार जब यंत्र-पटल

पर एक अकेला पाठ किसी भी ऐसे विवरण से व्याख्यायित नहीं किया जा सकता जिसे आप रच पाने में समर्थ हों — तो समूचा उपकरण भिन्न ढंग से पढ़ता है। आप विश्वासी नहीं बनते। मैं विश्वासी न बना। किन्तु आप एक ऐसे मनुष्य बन जाते हैं जो, अपने ही सावधान और अनिच्छुक अनुभव से, जानता है कि उसका व्याख्यात्मक ढाँचा पूर्ण नहीं है — कि कम-से-कम एक वस्तु है, ठोस और विशिष्ट और उसकी अपनी, जिसे वह थाम नहीं सकता। और जो मनुष्य अपने ढाँचे के विषय में यह जानता है वह उसे उसके बाद सदा अधिक हल्के से थामता है। उसे थामना ही पड़ता है। उसने उसे एक बार, स्वच्छता से, एक ऐसी वस्तु पर विफल होते देखा है जिसे वह निरस्त न कर सका।

यही वह है जो उस चाल ने किया। वह अचम्भों में सबसे छोटी थी — कोई रुका हुआ मन नहीं, कोई पूर्वज्ञात पुत्र नहीं, मरुस्थल में वर्षा नहीं। बस एक चाल, एक स्वप्न में देखी गई, एक वर्ष बाद पहचानी गई। किन्तु वह वही थी जिसे मैं दूसरे स्तम्भ से बाहर न निकाल सका, और इसलिए वह, एक विचित्र ढंग से, सबसे महत्वपूर्ण थी। बड़े अचम्भों को मैं हाथ-भर की दूरी पर थाम सकता था। यह छोटा वाला भीतर घुस गया।

◆

मैं मानने लगा हूँ कि इसमें इस विषय में एक शिक्षा है कि वे कैसे काम करते थे, और सत्य कैसे काम करता है, और मैं उसे रखूँगा और फिर अध्याय को बंद होने दूँगा।

बड़ी वस्तुएँ — नाटकीय वस्तुएँ, वह रुका हुआ मन और वह वर्षा — प्रभावित करती हैं, किन्तु वे बचाव को भी आमंत्रित करती हैं। वे इतनी बड़ी होती हैं कि उनसे बहस की जा सके। एक मनुष्य किसी चमत्कार के विरुद्ध स्वयं को कस सकता है। जिसके विरुद्ध वह स्वयं को नहीं कस सकता वह एक चाल है। एक नन्ही, विशिष्ट, अनाटकीय वस्तु जो उस पहरे के नीचे से सरक जाती है जिसे उसने बड़ी वस्तुओं के विरुद्ध उठाया है, और धँस जाती है, और हटाई नहीं जाएगी। मेरे सद्गुरु विरले ही जान-बूझकर बड़ी नाटकीय वस्तु करते थे, मुझे लगता है; वह वर्षा एक निभाया गया वचन था, दिया गया कोई प्रदर्शन नहीं। किन्तु छोटी वस्तुएँ संचित हुईं, और उनमें से एक — एक चाल — पूर्णतः मेरे पहरे को पार कर गई, और मैं उससे कभी उबरा नहीं, और मैं उबरना चाहता भी नहीं।

मैंने आपसे, चौदह अध्याय पहले, कहा था कि उस चाल को थामें और उसका कोई अर्थ न निकालें।

मुझे आशा है कि आपने उसे थामा। क्योंकि मैंने उसे एक वर्ष बिना जाने क्यों थामा, और फिर उसने एक आँगन में स्वयं को पहचान लिया, और मेरे सावधान संसार में फिर कभी कुछ उतना बंद न रहा।

अध्याय सत्ताईस:

आपको किसने बताया?

अपने पुत्र के जन्म के बारह वर्ष बाद, मैंने अंततः अपने सद्गुरु से वह प्रश्न पूछा जिसे मैं तब से ढो रहा था जब वह बालक चल भी न सकता था। और उनके उत्तर ने एक ऐसा चक्र बंद कर दिया जो उस सबसे विचित्र घंटे से खुला था जो मेरे विवाह में कभी समाया, और उसी साँस में, कुछ ऐसा खोल दिया जिसके भीतर मैं अब भी खड़ा हूँ।

◆

आपको इस पुस्तक के आरम्भ का वह क्रम स्मरण होगा, अतः मैं उसे केवल छू भर लूँगा। एक संत मेरे फ़्लैट तक चार मंज़िल चढ़े, चाय ली, और जाते समय अपनी छड़ी मेरी पत्नी की पीठ से छुआई और अपनी आँखें मूँद लीं। एक महीने बाद वे गर्भवती थीं। उसके तीन महीने बाद, शक्तेशगढ़ में, इससे पहले कि मैंने उन्हें कुछ बताया हो, उन्होंने पूछा कि क्या एक से दो हो जाएगा — दूसरी संतान के आने को मेरे कहने से पहले नाम दिया — और मुझे, अभी न जन्मे पुत्र के विषय में, बताया कि एक दिन लंबी बहू लाना। और फिर आर्यन जन्मा, ग्यारह दिसम्बर, 2000 को।

मैंने यह सब, अनसुलझा, वर्षों ढोया था। मैंने उनसे इसके विषय में कभी सीधे नहीं पूछा था। मैं क्या पूछता? *क्या मेरा पुत्र आपने किया?* ऐसे व्यक्ति से ऐसा प्रश्न नहीं रखा जाता, और मैं यह न जान पाता कि मैं उत्तर को क्या चाहता हूँ। अतः मैंने उसे बैठे रहने दिया, जैसे मैंने हर वस्तु को बैठे रहने दिया, उन वस्तुओं की बही में जिन्हें मैं समझा न सकता था और त्यागूँगा नहीं।

◆

मैंने उनसे पूछा कि क्या वे जानते थे। आर्यन के विषय में। मेरे पुत्र के आने के विषय में — कि क्या, ठाणे के उस घंटे में, और फिर शक्तेशगढ़ में, वे जानते थे कि वह बालक हमारे पास आ रहा है।

◆

मैं इसे बड़ी सावधानी से थामना चाहता हूँ, क्योंकि यह इस सबके विषय में सबसे व्यापक बात है जो उन्होंने मुझसे कभी कही, और क्योंकि मैं इसके साथ जो सावधानी बरतता हूँ वही इस पुस्तक और उस प्रकार की पुस्तक के बीच का समूचा अंतर है जो होने से यह इनकार करती है।

उन्होंने यह नहीं कहा *मैंने यह किया।* उन्होंने उस गर्भ का दावा नहीं किया, उस छड़ी के स्पर्श को अपना कृत्य नहीं माना, यह नहीं कहा *मैंने तुम्हें तुम्हारा पुत्र दिया।* यही वह है जो एक कमतर व्यक्ति कह देता, या मुझे विश्वास करने देता। उन्होंने कुछ ऐसा कहा जो अधिक बड़ा भी था और अधिक विनम्र भी: कि उन्हें *बताया* गया था। कि वह ज्ञान उन्हें ईश्वर से आया था — कि वे, इसमें भी हर वस्तु की भाँति, एक ग्रहणकर्ता थे, रचयिता नहीं। वह पुत्र उनका किया-धरा न था। वह पुत्र ईश्वर का किया-धरा था, और स्वामी जी को बस, पहले से, उस एक ने सूचित किया था जो उसे कर रहा था, उस ढंग से जैसे एक विश्वसनीय सेवक को बता दिया जाता है कि स्वामी का क्या अभिप्राय है इससे पहले कि घर-भर को उसका पता चले।

क्या आप देखते हैं कि यह किस ढंग से इसे भी — यहाँ तक कि सबसे चमत्कारिक-सी प्रतीत होने वाली वस्तु को भी, एक पूर्वज्ञात संतान को — स्वयं से दूर मोड़ देता है? मैं, मुझे लगता है, आधा चाहता था कि वे इसका दावा करें। किसी भक्त में एक भाग होता है जो चाहता है कि उसका सद्गुरु अचम्भों का कर्ता हो, स्रोत हो, वह जिसके पास शक्ति हो। और वे वह नहीं होंगे। यहाँ भी, उन्होंने मोड़ दिया — उस अचम्भे से दूर नहीं, जिसकी उन्होंने पुष्टि की, बल्कि उसके उद्गम के रूप में *स्वयं* से दूर। ईश्वर ने मुझे सूचित किया, उन्होंने कहा। यह नहीं: मैंने उसे व्यवस्थित किया। ईश्वर जानता है; मुझे बताया गया। उन्होंने स्वयं को, एक बार फिर, एक खिड़की बनाया, न कि प्रकाश।

◆

और वह छोटा-सा वाक्यांश — *ईश्वर ने मुझे बताया* — ने, एक क्षण में, न केवल आर्यन को बल्कि हर वस्तु को पुनः ढाँचा दे दिया।

क्योंकि यदि मेरे पुत्र का ज्ञान उन्हें ईश्वर से आया था, तो सम्भवतः यह सब वहीं से आया था। और अचानक उनके साथ मेरे जीवन की समूची वास्तुकला उस विचार के चारों ओर स्वयं को पुनर्व्यवस्थित करने लगी।

वे उन सारे वर्षों में मेरा मन *पढ़ते* नहीं रहे थे, जैसा मैंने मान लिया था — मेरे विचारों को उस ढंग से पकड़ते हुए जैसे एक चतुर व्यक्ति उन्हें पकड़ता है, एक-एक करके, उसी क्षण में। वे उस एक की निकटता में जी रहे थे जो मेरे विचारों को मुझसे पहले जानता था। वह पूर्वज्ञात पुत्र, वे प्रश्न जिनका उत्तर मेरे पूछ चुकने से पहले दिया गया, हवाई अड्डे पर वे दृष्टियाँ मेरे बोलने से पहले — उनमें से कुछ भी मन पढ़ने के अलग-अलग करतबों की एक शृंखला न था। वह उस मनुष्य की स्वाभाविक दशा थी जो ईश्वर के इतने निकट जीता था कि ईश्वर का जानना बस उसे उपलब्ध था, उस ढंग से जैसे एक कमरे का प्रकाश उसमें खड़े हर किसी को उपलब्ध होता है। वे उस जानने का प्रदर्शन नहीं करते थे। वे वहाँ निवास करते थे जहाँ वह जानना था। उन्होंने मुझसे यह उतना ही कहा था, चार शब्दों में, बिना मेरे समझे: *ईश्वर ने मुझे बताया।* यह नहीं — मैंने उसका दिव्य-ज्ञान पाया। यह नहीं — मैंने तुम्हें पढ़ा। ईश्वर ने मुझे बताया। वे वह थे जिन्हें बताया गया था।

◆

मैं आपको यह नहीं बताने वाला कि मैं विश्वास करता हूँ कि उन्होंने ईश्वर की शक्ति से मेरे पुत्र को पूर्वज्ञात किया। मैं वही करूँगा जो मैंने इस समूची पुस्तक भर किया है, जो कि आपको ठीक-ठीक यह बताना है कि क्या हुआ और मैं ठीक कहाँ खड़ा हूँ, और आपको वहाँ खड़ा रहने देना है जहाँ आप चाहें।

जो हुआ: एक छड़ी ने मेरी पत्नी की पीठ को छुआ; एक गर्भ उसके बाद आया; एक पूर्वज्ञान मेरे उस संतान की बात करने से पहले व्यक्त हुआ; और बारह वर्ष बाद उस व्यक्ति ने कहा कि वह ज्ञान उन्हें ईश्वर से आया था।

मुझमें बैठा संशयवादी कहाँ खड़ा है: वह, सही ही, यह बता सकता है कि जो गर्भ किसी आशीर्वाद के बाद आता है वह उस आशीर्वाद से नहीं होता; कि एक संत जो दस हज़ार गृहस्थों से मिलता है, कभी-कभी किसी परिवार का हाल पूछेगा और शुभ समाचार पर आ पहुँचेगा; कि किसी मनुष्य की स्मृति, बारह वर्षों में, एक क्रम को कस और तेज़ कर देती है,

उससे अधिक नुकीली किसी वस्तु में जितना वह था; और कि "ईश्वर ने मुझे बताया" ठीक उस प्रकार का कथन है जिसे जाँचा नहीं जा सकता। सब सत्य। मैं इसे ईमानदारी से अंकित करता हूँ, जैसा मैं सदा करता हूँ।

और मैं, इस सबके बाद, कहाँ खड़ा हूँ: मैं अपनी पत्नी के विवरण और अपने विवरण के साथ खड़ा हूँ, जो कभी सहमत नहीं हुए और कभी न होंगे। वे कहती हैं कुछ नहीं हुआ। वे वहाँ थीं; वे ही छुई गई थीं; वे मानती हैं कि वह संतान वैसे भी आ रही थी और कि एक दयालु वृद्ध व्यक्ति के शब्द और एक छड़ी और एक महीने का संयोग समय में अपनी निकटता से कोई अर्थ नहीं रखते। और मैं वहीं खड़ा हूँ जहाँ मैं चौथी मंज़िल की उस दोपहर से खड़ा रहा हूँ — निश्चित नहीं, किन्तु उसे कुछ भी न बना पाने में भी असमर्थ। उसके आकार को अनदेखा न कर पाता हुआ। एक ऐसा मनुष्य जिसने, एक चौथाई शताब्दी में, बहुत अधिक सुइयों को एक दिशा में हिलते देखा है कि यह विश्वास करे कि प्रत्येक संयोग से हिली, और जो एक बार भी उनमें से एक को भी सिद्ध कभी न कर पाया, और जिसने ठीक वहीं जीने पर, उस स्थान पर जिसे वह न छोड़ सकता है और न सुलझा सकता है, अपनी संधि कर ली है।

◆

किन्तु मैं आपको वह एक बात बताऊँगा जो इस वार्तालाप ने मुझे दी जो नई थी, जो इससे पहले के सारे वर्षों ने न दी थी, और वह आर्यन के विषय में है ही नहीं।

वह वह मोड़ना था। वह यह था कि यहाँ भी, यहाँ तक कि जब मैंने अंततः उनसे सबसे अद्भुत वस्तु के विषय में सीधे पूछा, तो भी वे स्रोत न होंगे। ईश्वर ने मुझे बताया। यह नहीं: मैंने यह किया। और मैं, अपने पुत्र के जन्म के बारह वर्ष बाद उस वार्तालाप से दूर चलते हुए, समझ गया कि मैंने अपने शिष्यत्व का बहुत बड़ा भाग उन्हें कुछ ऐसा बनाने का प्रयास करते हुए बिताया था जो होने से वे लगातार, कोमलता से, इनकार करते रहे — वह अचम्भा-कर्ता, वह शक्ति, वह जो वस्तुएँ *करता* था। और कि हर एक बार, जब मैंने उन्हें स्रोत बनाने के लिए हाथ बढ़ाया, तो वे अपने पंजों पर पीछे हट गए, उसी ढंग से जैसे उन्होंने स्वयं को मेरी माला की पहुँच से बाहर उठा लिया था, और स्वयं से परे ईश्वर की ओर संकेत कर दिया।

वे प्रकाश न थे। वे मुझे बताते रहे कि वे प्रकाश नहीं हैं। वे वह थे जो वहाँ जीते थे जहाँ प्रकाश था, और जो मुझे बता देते — एक सेवक जिसे स्वामी के अभिप्राय की पहले से सूचना दी

गई हो — कि क्या आ रहा है, ताकि जब वह आए तो मैं उन्हें नहीं, बल्कि उनके आर-पार, उस एक को देखूँ जिसने उसे वास्तव में भेजा था।

मैंने पूछा कि उन्हें मेरे पुत्र के विषय में किसने बताया।

उन्होंने मुझसे कहा: ईश्वर।

और तीन वर्ष बाद, संसार के दूसरे छोर पर, एडमॉन्टन के एक होटल-कक्ष में रात के दो बजे, मैं एक स्वप्न देखूँगा जिसमें वे मुझे एक पर्वत पर श्वेत संगमरमर के स्थान तक ले जाएँगे और एक झील दिखाकर उसे गंगा कहेंगे — और जब मैं उनसे, उसी स्वप्न में, पूछूँगा कि मार्ग पर आगे क्या होगा, तो वे ठीक वैसे ही टाल देंगे जैसे उन्होंने यहाँ टाला था।

इसके आगे भगवान ही पढ़ाएँगे।

यहाँ से, स्वयं भगवान पढ़ाएँगे।

वे चार शब्द उस स्वप्न के हैं और उस पर्वत के — मेरे पुत्र के विषय में हुई इस बातचीत के नहीं। मैं उन्हें यहाँ केवल इसलिए रखता हूँ कि दोनों की गति एक ही है। पूछिए कि उन्हें कैसे ज्ञात हुआ — वे कहते हैं, ईश्वर ने बताया। पूछिए कि आगे क्या होगा — वे कहते हैं, ईश्वर पढ़ाएँगे। दोनों में से किसी वाक्य में वे स्वयं नहीं हैं। मैं नहीं। ईश्वर। मैं तो केवल वह हूँ जिसे बताया जाता है।

अध्याय अट्ठाईस:

शिखर पर वह झील

मैं आपको अपने जीवन का सबसे उदात्त स्वप्न बताने जा रहा हूँ, और मैं इसे अपनी ही प्रवृत्ति के विरुद्ध बताने जा रहा हूँ, क्योंकि मुझमें वह हर वस्तु जिसने इस व्यक्ति से विनम्रता सीखी है, इसे छोड़ देना चाहती है। यह वह स्वप्न है जिसमें मार्ग कहीं पहुँचता हुआ प्रतीत हुआ। और ठीक इसीलिए कि यह वह है, मैं इसे बताने में स्वयं पर अविश्वास करता हूँ, और मैं चाहता हूँ कि आप भी उस पर अविश्वास करें, और मैं चाहता हूँ कि हम इसमें से साथ-साथ, अपना पहरा उठाए हुए चलें — क्योंकि जिस स्वप्न में कोई मनुष्य किसी शिखर पर पहुँचता प्रतीत होता है, वह ठीक वह स्वप्न है जिसे कोई मनुष्य सबसे अधिक फुलाने की सम्भावना रखता है, और मैं इसे कम बताना अधिक पसंद करूँगा बजाय इसके कि इसे वह वस्तु बनने दूँ जिसे बनने से मैं इस समूची पुस्तक भर हर वस्तु को रोकता रहा हूँ।

◆

मुझे इसे यथासम्भव कम-से-कम पवित्र परिस्थितियों में रखने दीजिए, क्योंकि वही इसका सत्य है और सत्य ही यहाँ मेरी एकमात्र रक्षा है।

मैं दो बजे होटल पहुँचा। मैं सोया। और मैंने स्वप्न देखा।

◆

मैं एक ऊँचे उठे मार्ग पर चल रहा था, अंधकार में — पहाड़ी प्रदेश से होकर जाता एक उठा हुआ मार्ग, ऊँचाई पर, भूमि नीचे को गिरती हुई। वह एक अधिक अंधकारमय क्षेत्र था, वह मार्ग छायादार ऊँची भूमि से होकर जाता हुआ। और नीचे, सम्भवतः दो किलोमीटर दूर, मैं एक नदी देख सकता था।

और मैं अकेला न था। मैं स्वामी जी की उँगली थामे चल रहा था।

मैं उस बिम्ब पर ठहरना चाहता हूँ, क्योंकि वह एक ही मुद्रा में समूचा सम्बन्ध है। किसी समान की भाँति उनका हाथ थामे नहीं; उनकी *उँगली* थामे, उस ढंग से जैसे एक बहुत छोटा बालक किसी वयस्क के हाथ की एक उँगली थामता है, क्योंकि बालक का हाथ इतना छोटा होता है कि अधिक थाम न सके, और एक उँगली ही ले जाए जाने के लिए पर्याप्त होती है। मैं एक अंधकारमय ऊँचे मार्ग पर ऊँची भूमि में ले जाया जा रहा था, अपने सद्गुरु के हाथ की एक उँगली थामे, उस ढंग से जैसे एक बालक पकड़े रहता है।

◆

हम चढ़े, और पर्वत के बिल्कुल शिखर पर एक स्थान था।

वह श्वेत संगमरमर से बना था। अत्यंत स्वच्छ — निष्कलंक, प्रकाशमान, उस प्रकार की श्वेतता जो आप साधारण संसार में नहीं देखते, शिखर पर पूर्ण शुद्धता का एक स्थान। और वहाँ संत थे। वृद्ध संत, आसीन। महान आयु के विरक्त, पर्वत के शिखर पर उस श्वेत संगमरमर के स्थान में।

मैंने उनसे पूछा — उस ढंग से जैसे आप, एक स्वप्न में, वह प्रश्न पूछते हैं जो वास्तव में आपका अपना हृदय पूछ रहा होता है — *आप इन्हें जानते हैं?*

और उन्होंने उत्तर दिया: *हाँ — इन्हें कौन नहीं जानता।*

◆

मैं यहाँ रुककर बहुत सावधान रहूँगा, क्योंकि यह ठीक वह स्थान है जहाँ इस प्रकार की पुस्तक ग़लत हो जाती है, और मैं लिखते समय भी उस ग़लती की ओर खिंचाव अनुभव करता हूँ।

वह खिंचाव यह है: उन झुकते हुए संतों को, और उस उत्तर को — *इन्हें कौन नहीं जानता* — एक प्रकार का साक्ष्य बनने देना। उस स्वप्न को मेरे सद्गुरु के सर्वोच्च पद के प्रमाण के रूप में खड़ा रहने देना, जिसकी पुष्टि एक संगमरमर के पर्वत के शिखर पर प्राचीन सिद्ध प्राणियों द्वारा की गई हो। और उसके नीचे, अधिक शांत और अधिक ख़तरनाक, उसे *मुझ* पर कुछ प्रदान करने देना — वह शिष्य जो वहाँ था, जो उनके साथ चढ़ा, जिसे वह स्थान दिखाया गया जहाँ हर कोई उन्हें जानता है। इस स्वप्न में एक अहंकार उपलब्ध है, और वह विशेष रूप से मुझे

उपलब्ध है, और मैं उसे ऊँचे स्वर में नाम देना चाहता हूँ ताकि वह अंधकार में काम न कर सके।

अतः मुझे स्पष्ट रूप से कहने दीजिए कि यह क्या था और क्या न था। यह एक स्वप्न था। यह एक ऐसे थके हुए यात्री के पास आया जो होटल के एक कक्ष में था। जो संत झुके वे मेरे अपने सोते हुए मन की आकृतियाँ थीं। कि मेरे मन ने, अपने ही स्वप्निल पर्वत के शिखर पर, उस चोटी को ऐसे प्राणियों से आबाद किया जो मेरे सद्गुरु का आदर करते थे, यह आपको मेरे प्रेम और मेरी श्रद्धा के आकार के विषय में कुछ सच्चा बताता है — किन्तु वह मेरे सद्गुरु के लौकिक पद के विषय में सिद्ध प्राणियों का साक्ष्य नहीं है, और मैं उसे वैसा दिखने न दूँगा। वह मेरी अपनी भक्ति की वास्तुकला है, मुझे निद्रा में दिखाई गई। मैं उसे वैसा ही थामता हूँ। सुंदर, और मेरी, और उनके विषय में ऐसा प्रमाण नहीं जिसे तौलने के लिए कोई अन्य बाध्य हो।

मैं उसे, दूसरे शब्दों में, ठीक वहीं रखता हूँ जहाँ मैंने हर वस्तु को रखा है: अपने अनुभव के रूप में, ईमानदारी से अर्पित, और आप पर किसी दावे के रूप में नहीं।

◆

और फिर मैं एक खिड़की पर गया।

और उस खिड़की से मैंने एक झील देखी।

मैंने इस झील का वर्णन कई बार करने का प्रयास किया है और मैं इसके साथ न्याय नहीं कर सकता, अतः मैं बस शब्द रख दूँगा और उन्हें कम पड़ने दूँगा। वह विशाल थी — एक विराट झील, गहरी नीली, जल पूर्णतः निस्तब्ध। उसके चारों ओर, हरियाली। और उसका समस्त किसी भी ऐसी वस्तु से परे मनोहर था जो मैंने अपने जागते जीवन में कभी देखी थी — और मैंने सुंदर स्थान देखे हैं; मैं, उसी यात्रा पर, कनाडा के उस भाग के महान उद्यानों में, उसके प्रसिद्ध वन्य सौंदर्य में जा चुका था। यह वह न था। यह उससे परे था। निस्तब्ध, गहरी, नीली, विशाल, हरियाली से घिरी, मौन — एक भिन्न कोटि का सौंदर्य, वह प्रकार जो आप संसार में नहीं पाते क्योंकि वह संसार का है ही नहीं।

और मैंने स्वामी जी से कहा: *यह गंगा है क्या?*

और उन्होंने कहा: *हाँ, बेटा। यह गंगा है। जगतानंद से गंगा और सुंदर लगती है।*

हाँ, बेटा। यह गंगा है। जगतानंद से, गंगा और भी सुंदर लगती है।

◆

मैं तड़के साढ़े चार बजे जागा।

और मैं जागा — मुझे इसके लिए इससे बेहतर शब्द नहीं मिलते — मानो मुझे स्नान कराया गया हो। मानो किसी ने मुझ पर दूध उँडेल दिया हो। ताज़ा, धुला हुआ, आर-पार स्वच्छ, एक ऐसे ढंग से जिस ढंग से किसी साधारण निद्रा ने मुझे कभी नहीं छोड़ा, सबसे कम एक लंबी यात्रा के अंत के बाद उसके कुछ घंटों ने। मैं एडमंटन में एक होटल के बिस्तर पर तड़के साढ़े चार बजे पड़ा यह अनुभव करता रहा मानो मुझे भीतर से धो दिया गया हो, और मैं जानता था कि कुछ हुआ है जो कोई साधारण स्वप्न न था, और मैं — तत्काल, अविलम्ब — उन्हें बताना चाहता था।

◆

और इससे पहले कि मैं उन्हें कुछ बता पाता — इससे पहले कि मैं उस स्वप्न के विषय में एक शब्द कह पाता — वे पहले बोले।

उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ हूँ।

मैंने उन्हें बताया। और मैं उस स्वप्न से भरा हुआ था, उसे उँडेल देने को व्याकुल, और मैंने आरम्भ किया — *मैंने एक स्वप्न देखा है* —

और उन्होंने मुझे रोक दिया।

"चलो, वहीं बात होगी।"

बात तब होगी जब तुम यहाँ होगे।

◆

उन्होंने मुझे उसे दूरभाष पर बताने न दिया। भारत आओ, उन्होंने कहा, वस्तुतः; हम उसकी बात तब करेंगे। और मैं, धुँधले ढंग से, समझ गया कि वह स्वप्न किसी होटल से एक फ़ोन-

कॉल पर व्यय किए जाने का न था — कि उसे घर ले जाकर उनकी उपस्थिति में बताया जाना था, कि वह उस प्रकार की वस्तु थी।

वह कोई सार्वजनिक जमघट न था। यह एक निजी भेंट थी, भीतर, एक छोटा घेरा। कई साधु उनके चारों ओर एकत्र थे। और मेरी पत्नी और मैं उनके समक्ष भूमि पर बैठ गए।

और मैंने उन्हें वह स्वप्न बताया। उसका समस्त — वह अंधकारमय ऊँचा मार्ग, वह उँगली, ऊपर की ओर मुड़ना, वह संगमरमर का स्थान, वे झुकते हुए संत, वह झील, वह गंगा।

◆

उन्होंने सुना। और जब मैं समाप्त कर चुका, तो उन्होंने कहा:

"बेटा, जागृति हो चुकी है।"

बेटा, जागृति हो चुकी है।

◆

मैं उस वाक्य के साथ वर्षों बैठा हूँ, और मैं आपको ईमानदारी से बताऊँगा कि मैंने उसे कैसे ग्रहण किया, क्योंकि वह ईमानदारी ही एकमात्र वस्तु है जो उसे सम्मिलित करना सुरक्षित बनाती है।

मैंने उसे किसी विजय-मुकुट के रूप में ग्रहण नहीं किया। मैं इस विषय में बहुत स्पष्ट रहना चाहता हूँ, क्योंकि विजय-मुकुट ठीक वही है जिसे इसे समझ लिया जा सकता है, और जिसे एक कमतर व्यक्ति — जिसे मैं स्वयं, एक कमतर क्षण में — इसका बना लेता। *जागृति हो चुकी है।* एक मनुष्य उन शब्दों को एक तमगे की भाँति पहन सकता है। वह उन्हें यह अर्थ देने दे सकता है कि *मैं पहुँच गया हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं अब जागृतों में हूँ।* और यदि मैं इस पुस्तक को वह करने दूँ, तो मैंने वह हर वस्तु धोखा दे दी जो मेरे सद्गुरु ने पच्चीस वर्ष मुझे सिखाने में बिताए।

अतः मुझे आपको बताने दीजिए कि उन्होंने आगे क्या किया, क्योंकि उन्होंने उस वाक्य को ग़लत समझे जाने के लिए नहीं छोड़ा। उन्होंने उसे तत्काल किसी भी शिखर से दूर मोड़ दिया जिस पर पहुँच जाने की मैं स्वयं कल्पना कर सकता था।

मैंने उनसे पूछा — इसके आगे क्या? इसके बाद क्या आता है? और उन्होंने कहा:

"इसके आगे भगवान ही पढ़ाएँगे। भगवान सब जानते हैं। तुम्हारे मन जो उठता है, भगवान पहले से जानते हैं।"

यहाँ से, स्वयं भगवान पढ़ाएँगे। भगवान सब कुछ जानते हैं। जो तुम्हारे मन में उठता है, भगवान उसके उठने से पहले ही जानते हैं।

◆

क्या आप देखते हैं कि उन्होंने क्या किया? ठीक उसी क्षण जब उन्होंने मुझे बताया कि एक जागृति हुई है, उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि मैं उस पर खड़ा न हो सकूँ। उन्होंने यह नहीं कहा *तुम पहुँच गए हो।* उन्होंने कहा *शिक्षा अब ईश्वर को हस्तांतरित हो जाती है* — जिसका अर्थ है कि शिक्षा समाप्त नहीं हुई, जिसका अर्थ है कि मैं पहुँचा नहीं हूँ, जिसका अर्थ है कि जो कुछ भी हुआ था वह कोई शिखर न था जिस पर मैं पहुँचा था बल्कि एक द्वार था जिस तक मैं लाया गया था, जिसके परे वास्तविक शिक्षा आरम्भ होती है, और जिसके परे गुरु अब वे भी नहीं बल्कि स्वयं ईश्वर हैं। उन्होंने मुझे एक हाथ से एक जागृति थमाई और, दूसरे से, उसके परे संकेत किया — मेरे परे, स्वयं अपने परे — ईश्वर की ओर, और एक ऐसी शिक्षा की ओर जो पूर्ण होने से इतनी दूर थी कि उसे अब केवल ईश्वर ही चला सकता था।

जागृति हो चुकी है। जागृति हो चुकी है। वह हुई; मैं उसका इनकार नहीं करता; मैंने स्वयं को तड़के साढ़े चार बजे दूध में नहलाया हुआ अनुभव किया और मैं यह ढोंग न करूँगा कि नहीं किया। किन्तु वह *मुझ पर* हुई; मैंने उसे उपलब्ध नहीं किया; और वह कोई पहुँचना न था बल्कि एक आरम्भ था; और जो मुझे यहाँ से पढ़ाएगा वह कोई ऐसा मनुष्य न था जिसकी ओर मैं संकेत करके आदर कर सकूँ, बल्कि ईश्वर था, जो हर विचार को उसके मुझमें उठने से पहले ही जानता था।

मेरी जागृति को भी, उन्होंने मुझे अपना बनाने न दिया। उसे भी, उन्होंने मोड़ दिया — ईश्वर की ओर।

◆

और एक बात और, गंगा के विषय में, क्योंकि वह रत्न के भीतर का रत्न है और वह उनका है, मेरा नहीं।

मैंने सोचा था कि मैं उस स्वप्न का भूगोल समझ गया हूँ। *जगतानंद* — मैं वह शब्द जानता था। जगतानंद नाम का एक आश्रम था जहाँ स्वामी जी अपने आरम्भिक वर्षों में रहे थे और उन्होंने तपस्या की थी, और वह गंगा के तट पर बसा था। अतः जब उन्होंने कहा *जगतानंद से गंगा और सुंदर लगती है,* तो मैंने सोचा मैं समझ गया: उनका अभिप्राय वास्तविक स्थान था, वास्तविक नदी पर का वह आश्रम, जहाँ से वास्तविक गंगा देखी जा सकती थी। मैंने आत्मविश्वास से, तर्क करते हुए, शाब्दिक अर्थ तक अपना मार्ग बना लिया।

मैं फिर वही कर रहा था। मैं वह जीप वाला जनजाति-पुरुष था, जो देख सकने वाली वस्तु से सुदृढ़ रूप से तर्क करके एक ऐसे निष्कर्ष तक पहुँचता था जो ठीक-ठीक ग़लत न था, किन्तु मर्म न था। क्योंकि जब मैंने उनसे जगतानंद के विषय में पूछा, तो उन्होंने कहा:

"जगत में आनंद ही जगतानंद है।"

संसार के भीतर का आनंद — *जगत*, संसार; *आनंद*, आनंद — वही स्वयं जगतानंद है।

वह कोई स्थान न था। या वह एक स्थान था, किन्तु वह स्थान केवल उस अर्थ की छाया था। जगतानंद किसी नदी-तट का कोई आश्रम न था। वह एक *अवस्था* थी — वह आनंद जो स्वयं संसार के भीतर उपलब्ध है, वस्तुओं के मूल में वह आनंद — और उस अवस्था से, *जगतानंद* से, गंगा और सुंदर लगती है, क्योंकि गंगा भी कभी केवल एक नदी न थी। मैं उनके सत्संगों से बहुत पहले सीख चुका था: कि गंगा ज्ञान है, ज्ञान है, वह पवित्र नदी जो स्वयं परम ज्ञान की प्रतीक है। संसार के भीतर के आनंद से, ज्ञान और सुंदर लगता है। यही वह है जो उन्होंने मुझसे, एक पर्वत पर, एक स्वप्न में कहा था, और उसे सुन पाने से पहले मुझे मेरे शाब्दिक अनुमान का जागता हुआ सुधार लगा।

मैंने, एक बार फिर, मानचित्र के लिए हाथ बढ़ाया था। और एक बार फिर उन्होंने, कोमलता से, मुझे वह भूभाग वापस दे दिया था।

◆

मैं आपको नहीं बताने वाला कि यह स्वप्न क्या सिद्ध करता है। यह कुछ भी सिद्ध नहीं करता। यह एक स्वप्न था, एक कार्य-यात्रा के अंत में होटल के कक्ष में पड़े एक थके हुए व्यक्ति द्वारा देखा गया, और मैंने उसे वर्षों ठीक वैसा ही थामा है जैसा वह था: मेरा अनुभव, और आपका प्रमाण नहीं।

किन्तु मैं आपको बताऊँगा कि उसने मुझे कहाँ छोड़ा, जो एकमात्र वस्तु है जिसकी सूचना देने का मैं अधिकारी हूँ। उसने मुझे एक ऐसे आरम्भ पर छोड़ा जिसे मैंने, स्वप्न में, एक शिखर समझ लिया था। उसने मुझे यह बताया गया होकर छोड़ा कि एक जागृति हुई है और कि मैं उसका कोई श्रेय न ले सकता और उस पर विश्राम न कर सकता, क्योंकि शिक्षा अब ईश्वर को हस्तांतरित हो गई थी और, सच में, मुश्किल से आरम्भ हुई थी। उसने मुझे धुला हुआ छोड़ा, तड़के साढ़े चार बजे, घर से दूर एक होटल में, कोई निष्कर्ष नहीं बल्कि एक अकेली उँगली थामे — अब भी, एक अंधकारमय मार्ग पर ऊपर ले जाया जाता हुआ, एक ऐसे सद्गुरु द्वारा जो मुझे वह स्वप्न दूरभाष पर बताने न देते, और जो मुझे वह जागृति अपने लिए रखने न देते, और जो मुझे गंगा को एक नदी के रूप में भी न रखने देते, क्योंकि वह ज्ञान था, और जगतानंद को एक स्थान के रूप में, क्योंकि वह आनंद था।

उन्होंने मुझे वह शिखर दिया और उसी साँस में उस पर मेरा खड़ा होना छीन लिया।

मैं मानने लगा हूँ कि यह वह सर्वाधिक है जो वे मेरे लिए कर सकते थे, और सर्वाधिक प्रेमपूर्ण। क्योंकि जिस मनुष्य को बताया जाता है कि वह पहुँच गया है, वह रुक जाता है। और वे नहीं चाहते थे कि मैं रुकूँ। वे चाहते थे कि मैं वह अंधकारमय मार्ग चढ़ता रहूँ, उनकी उँगली थामे, एक ऐसी गंगा की ओर जो ज्ञान थी और एक ऐसे आनंद की ओर जो संसार था — और यह जानूँ, समूचे समय, कि वह जागृति वास्तविक थी और मेरी न थी और केवल आरम्भ थी, और कि यहाँ से यह ईश्वर था जो पढ़ाएगा।



वंश-परम्परा

सत्संगी महाराज · परमानंद जी महाराज · अड़गड़ानंद जी महाराज
और वे जो इस मार्ग पर चले

परमहंस स्वामी श्री सत्संगी महाराज जी

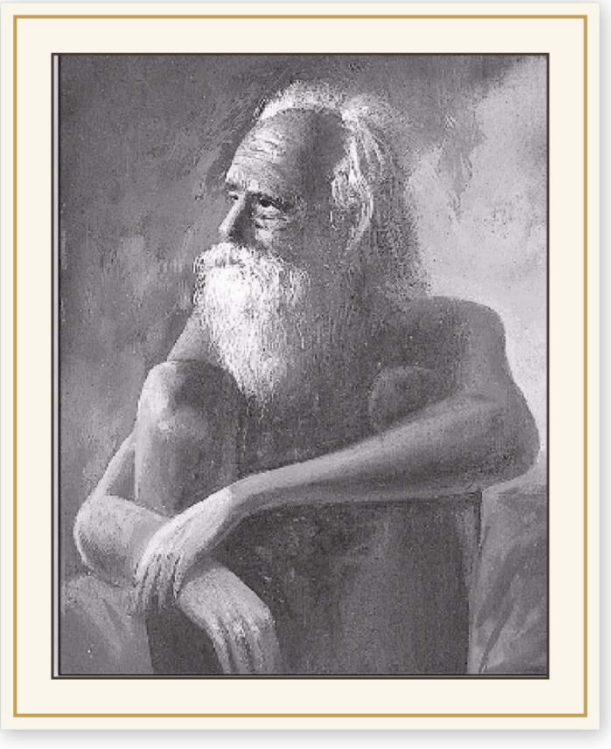

इस वंश का मूल — परमानंद जी महाराज के गुरु।

परमहंस स्वामी श्री परमानंद जी महाराज

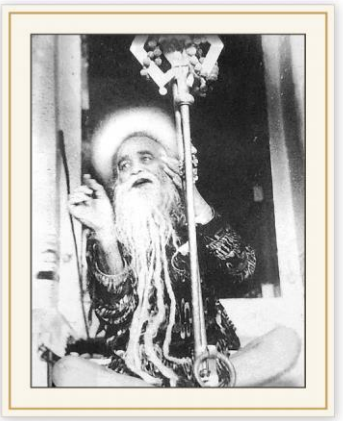

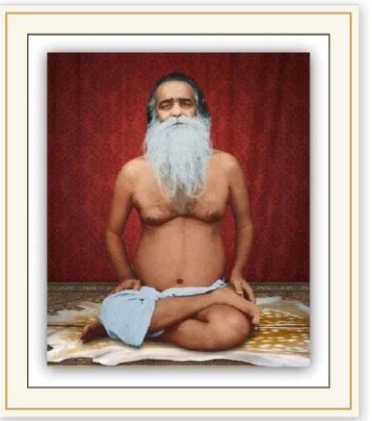

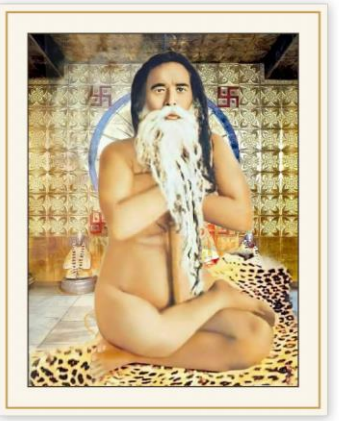

स्वामी जी के गुरु — वह पहलवान जो ऋषि बन गया।

परमहंस स्वामी श्री सच्चिदानंद जी महाराज



परमानंद जी महाराज की परम्परा में।

परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानंद जी महाराज



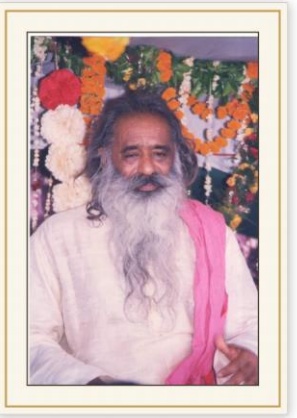

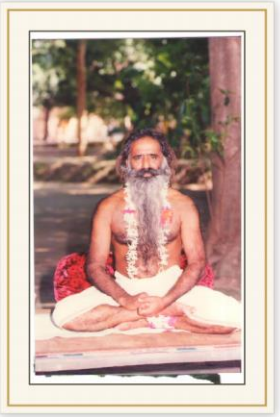

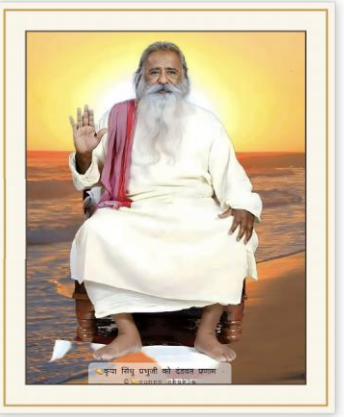

लेखक के सद्गुरु।

परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानंद जी महाराज



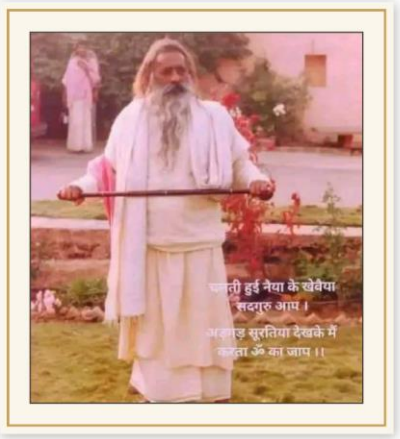

आश्रम और दैनिक जीवन के कुछ क्षण।

परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानंद जी महाराज

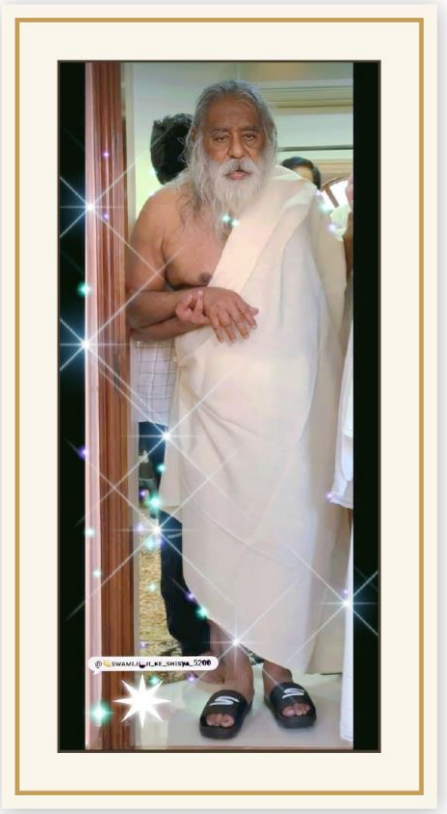

लेखक के घर के द्वार पर पधारते हुए — वह अविस्मरणीय क्षण।

स्वामी जी का जन्म-स्थान



ओसियाँ, राजस्थान — वह घर जहाँ उनका जन्म हुआ; आज भी अपनी उसी अवस्था में। आश्रम यहाँ से लगभग एक किलोमीटर दूर है।

तीन सिद्ध शिष्य

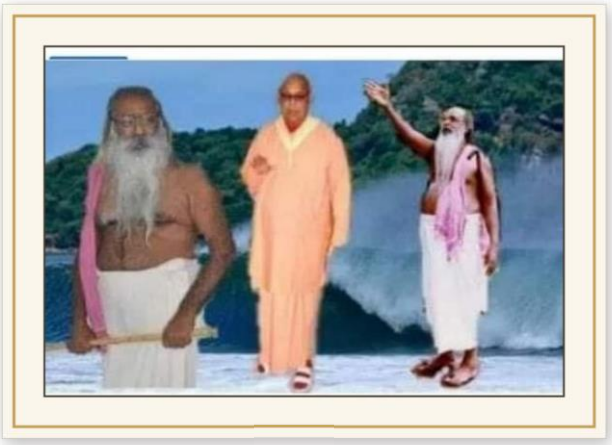

स्वामी श्री अड़गड़ानंद जी, स्वामी श्री सच्चिदानंद जी, एवं स्वामी श्री भगवानंद जी।

स्वामी श्री भगवानंद जी महाराज

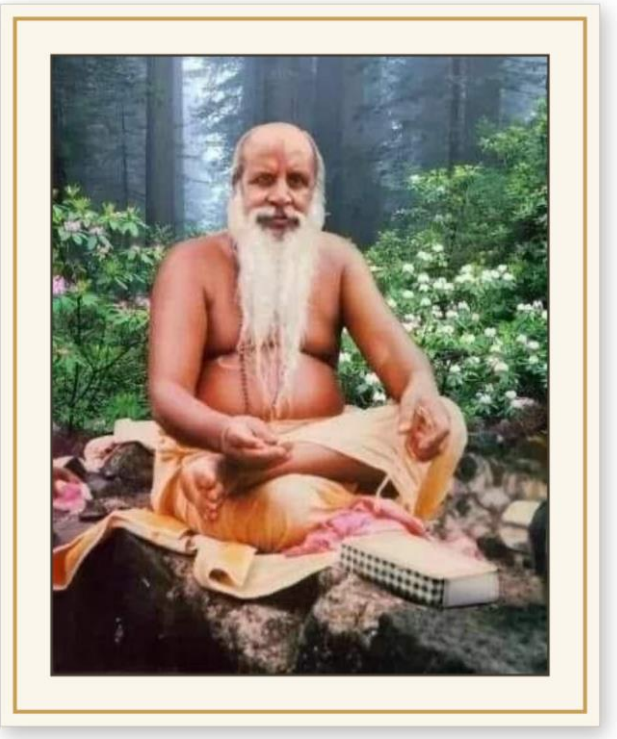

अनुसूया के परमहंस।

स्वामी श्री राम बाबा जी महाराज

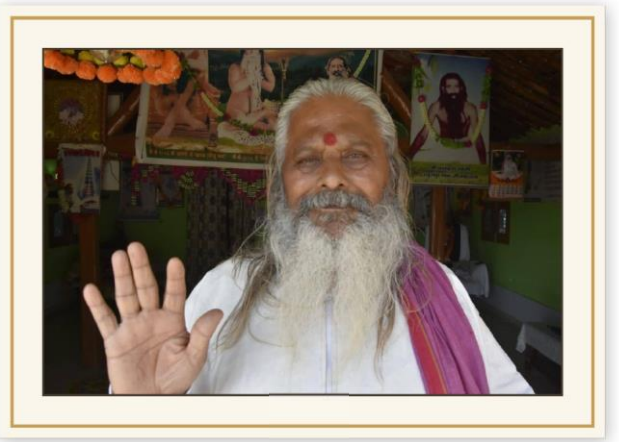

स्वामी श्री बच्चा बाबा जी महाराज



श्री मृत्युंजयानंद जी



आश्रम के एक साधु, स्वामी जी के निकट।

स्वामी श्री नारद महाराज जी

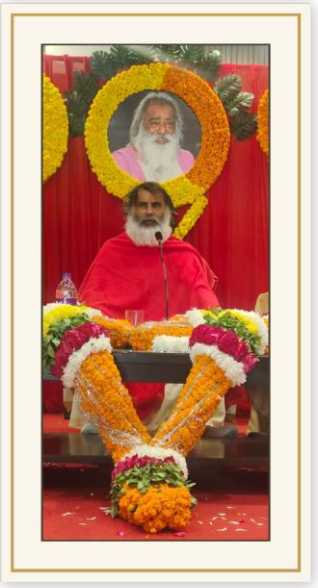



तेरह वर्ष की आयु से स्वामी जी के साथ; लेखक उनके चरणों में।

आश्रम में एक भेंट



श्री मोहन भागवत जी — आशीष बाबा के साथ, आश्रम में।

विनय

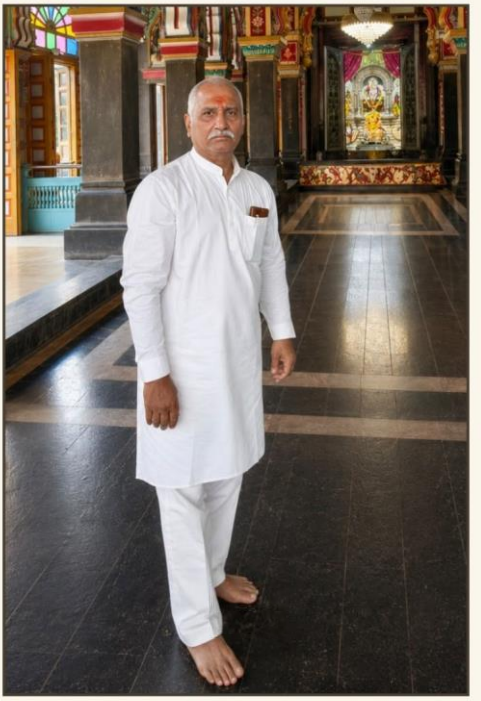

जिन्होंने सबसे पहले वह ग्रंथ लेखक के हाथों में रखा।

अध्याय उनतीस:

नौ ऐब

मैं आपको इस पुस्तक का सबसे ख़तरनाक वाक्य बताने जा रहा हूँ।

वह ख़तरनाक इसलिए है कि पाठक उसका क्या कर सकता है, और इसलिए कि मैं उसका क्या कर सकता हूँ; और मैंने बहुत समय तक सोचा कि उसे सम्मिलित करूँ भी या नहीं। मैं इसे इसलिए सम्मिलित कर रहा हूँ क्योंकि उसे छोड़ देना छिपाकर बोला गया झूठ होता, और क्योंकि पच्चीस वर्षों बाद मैं ठीक-ठीक जानता हूँ कि उसने मुझे नष्ट क्यों नहीं किया। कारण मेरी लम्बाई पर किया गया एक विनोद है, और मैं उस तक पहुँचूँगा; और वही विनोद वह कारण है जिससे यह अध्याय लिखा जा सकता है।

मैं इसमें से कुछ भी किसी बात के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत नहीं कर रहा। मैं वह अंकित कर रहा हूँ जो हुआ, उसी क्रम में जिस क्रम में हुआ, बिना कुछ जोड़े और बिना कुछ मिलाए। यही मैंने इस पुस्तक में सर्वत्र किया है और यही यहाँ भी कर रहा हूँ।

पहले वाक्य, और उससे पहले जो हुआ।

उस समय तक बैठक स्थिर हो चली थी।

मैं यह कहने के बजाय कि मेरा चिंतन गहरा हो चुका था, ऐसे कहता हूँ — क्योंकि *गहरा* एक ऐसा शब्द है जो अंक देता है, और मैं स्वयं को अंक देने की स्थिति में नहीं हूँ। जो मैं बता सकता हूँ वह छोटा और नीरस है। मैं वर्षों लगा रहा था। भीतर पहले से अधिक मौन हो गया था। और उस मौन में कुछ घटने लगा जो पहले नहीं घटता था — कि उनका रूप और परम, भीतर, दो अलग वस्तुएँ रहना बंद हो गए। मैं वहाँ पहुँचा नहीं। मैंने बैठने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया था।

वर्ष 2019 था। मैं पालघर आश्रम में था, ठीक उनके सामने बैठा हुआ, और मेरे बगल मेरे मित्र योगेश्वर वशिष्ठ थे।

मैंने आँखें बंद कीं।

और मुझे उनका रूप दिखाई दिया। उनका प्रतीक नहीं, स्मृति से उठा कोई चित्र नहीं — उनका रूप, उस विस्तार में जो आप एक हाथ की दूरी से देखते हैं: श्वेत वस्त्र, श्वेत दाढ़ी, नेत्र, पलकें, भौंहें, केश, वक्ष पर के महीन रोम। उस देह का प्रत्येक विवरण जिसे मैं वर्षों से देखता आ रहा था।

और वह सब प्रकाश था। कोमल श्वेत ज्योतिर्मय प्रकाश — बाहर की ओर चमकता हुआ नहीं, बल्कि प्रकाश से ही बना हुआ, मानो जिस द्रव्य से वे बने थे उसे प्रकाश से बदल दिया गया हो और प्रत्येक विवरण ज्यों का त्यों रख दिया गया हो।

और फिर वह फैला।

यही अकेला शब्द मेरे पास है। रूप चौड़ा हुआ और चौड़ा होता चला गया, जब तक उसने ब्रह्मांड को अधिकृत न कर लिया — जब तक ऐसा कोई स्थान न बचा जहाँ वह न हो — और उसने ब्रह्मांड को उस तरह नहीं भरा जैसे जल पात्र को भरता है। उसने उसे थामा। वह नीचे था, जैसे भूमि किसी घर के नीचे होती है। ब्रह्मांड उस पर विश्राम कर रहा था जैसे कोई वस्तु अपने अधिष्ठान पर करती है, और अधिष्ठान वही कोमल श्वेत प्रकाश था, और उस कोमल श्वेत प्रकाश के वक्ष पर महीन रोम थे।

मैंने आँखें खोलीं।

और उन्होंने कहा:

"तुम ब्राह्मण हो।"

सबसे पहले वह व्याख्या, जो मैं तब देता यदि यह कथा कोई और मेरे पास लाता — क्योंकि इन पृष्ठों की प्रत्येक अन्य विचित्र वस्तु को मैंने जो सुनवाई दी है, वही इसे भी देनी है, और क्योंकि मैंने आज तक स्वयं को इससे छूट नहीं दी।

एक मनुष्य वर्षों तक एक चेहरे के सामने बैठता है। वह उसे अपने चेहरे से भी अधिक जान लेता है। वह उसी के सामने आँखें बंद करता है — उस हॉल में जहाँ वह विशेष रूप से उसी के निकट होने के लिए आया है, और एक जमे हुए, वर्षों सींचे गए प्रेम की दशा में। और

उसकी दृश्य-स्मृति वह चेहरा उसे विस्तार सहित लौटा देती है — क्योंकि किसी अत्यंत परिचित विषय को विस्तार सहित लौटाना ही दृश्य-स्मृति का काम है। प्रकाश ध्यानस्थ अंतःकरण की सबसे साधारण मुद्रा है; प्रत्येक परम्परा का साहित्य उससे भरा है। विस्तार दूसरी सबसे साधारण। और इस परम्परा का कोई गुरु किसी से भी *तुम ब्राह्मण हो* कह सकता है, क्योंकि परम्परा इसे किसी के भी विषय में सत्य मानती है — और जो संत किसी शिष्य को लम्बी बैठक से बदले हुए चेहरे के साथ उठते देखे, उसके पास वह स्पष्ट और परम्परागत बात कहने का स्पष्ट, पूर्णतः मानवीय और पूर्णतः परम्परागत कारण है।

यह एक पूर्ण व्याख्या है। इसमें एक श्रद्धालु मन और एक स्नेही वृद्ध के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहिए। मैंने इसे उस अनुभव के साथ-साथ वर्षों ढोया है। इसने उस अनुभव को एक बार भी घोला नहीं, और उस अनुभव ने इसे एक बार भी नहीं घोला, और मैं इस पृष्ठ पर यह ढोंग नहीं करूँगा कि इनमें से कोई जीता।

अब।

यहाँ मुझे इस पुस्तक के किसी भी अन्य स्थान से अधिक सावधान रहना है, और मैं चाहता हूँ कि पाठक मुझे सावधान होते देखे, क्योंकि वह सावधानी ही मुख्य बात है, उसके लिए क्षमायाचना नहीं।

उस वाक्य के साथ करने योग्य स्पष्ट काम यह है कि उसे पहन लिया जाए। एक मनुष्य उस पर जीवन खड़ा कर सकता है। वह लोगों को बता सकता है, और सुना जा सकता है, और कुछ लोग उसके इर्द-गिर्द जुट सकते हैं, और उसे फिर कभी साधारण व्यक्ति नहीं होना पड़ेगा। यह कोई काल्पनिक प्रलोभन नहीं है और मैं इससे ऊपर होने का स्वाँग नहीं करूँगा; मैंने उसका खिंचाव अनुभव किया है, और मैं उसे लिख देना ही उचित समझता हूँ। किन्तु उस वाक्य पर मेरा तनिक भी अधिकार नहीं, और मैं सादे ढंग से बताना चाहता हूँ कि क्यों नहीं।

कारण ये हैं, और तीन हैं, और वे विनम्रता नहीं हैं।

पहला वही है जिसे मेरी अपनी परम्परा सबसे सीधे कहती है, और वही कारण है कि यह अध्याय लिखना ही ख़तरनाक है।

जो जाना सो कहा नहीं, जो कहा सो देखा नाहीं।

जिसने जाना, उसने कहा नहीं। जिसने कहा, उसने देखा नहीं।

अब इसे उसके सामने रखिए जो मैं इस पृष्ठ पर कर रहा हूँ। मैं एक ऐसी पुस्तक में, जिसके आवरण पर मेरा नाम है, यह अंकित कर रहा हूँ कि मेरे सद्गुरु ने एक बार मुझसे कहा था कि मैं ब्राह्मण हूँ। यह दोहा मुझे नौ शब्दों में निपटा देता है। उस वाक्य ने जिसे भी नाम दिया हो, उसे लिखने वाला व्यक्ति प्रत्यक्षतः वह नहीं है — क्योंकि जो वह होता, वह उसे लिख नहीं रहा होता। मुझे इससे बचने का कोई मार्ग नहीं मिला और मैंने खोजना छोड़ दिया है। मैं वह वाक्य इसलिए सम्मिलित करता हूँ कि उसे छोड़ देना छिपाकर बोला गया झूठ होता। और मैं यह दोहा उसके ठीक बाद इसलिए रखता हूँ कि इस पृष्ठ की दो वस्तुओं में से यही अधिक सच्ची है।

और दूसरी बात यह कि उस शब्द का अर्थ क्या नहीं है। यहाँ *ब्राह्मण* न कोई जाति है और न कोई जन्म। *ब्रह्म जानाति इति ब्राह्मणः* — जो ब्रह्म को जानता है वही ब्राह्मण है। यह नाम जानने से अर्जित होता है और किसी अन्य वस्तु से नहीं; और ठीक इसीलिए इसे कोई कुलनाम प्रदान नहीं कर सकता — और मेरा कुलनाम पाण्डेय है। जिसने भी उस वाक्य को मेरे जन्म पर की गई टिप्पणी समझा, उसने कहे गए का ठीक उल्टा समझा। और जो उसे जानने का प्रमाणपत्र समझे — सबसे पहले मैं स्वयं — उसे उसे थामे रखने से पूर्व उस दोहे का उत्तर देना होगा।

दूसरा वह है जो वे मुझे संगमरमर के पर्वत की चोटी पर पहले ही सिखा चुके थे। *जागृति हो चुकी है* — और फिर, उसी साँस में, इससे पूर्व कि मैं उस पर अपना भार रख पाता, *इसके आगे भगवान ही पढ़ाएँगे*। उन्होंने एक ही गति में स्थान दिया और हटा लिया। वे यह आजीवन करते रहे। इतनी सावधानी से यह करते देख लेने के बाद उनके दिए अगले वाक्य को उठाकर उस पर खड़े हो जाना असाधारण मूर्खता होती।

और तीसरा कारण वही है जिस पर मैं वस्तुतः टिका हूँ, और वही कारण है जिससे इस अध्याय का यह नाम है।

वे मेरी लम्बाई का मज़ाक़ उड़ाते थे।

मैं पाँच फुट साढ़े तीन इंच का हूँ। पाठक यह जानता है; मैं अपने ही गाँव की कीचड़ में खड़े होकर छह फुट से भी ऊँचे व्यक्ति के गले में माला डालने का प्रयत्न कर चुका हूँ, जिन्होंने स्वयं को पंजों पर उठा लिया था ताकि मेरी श्रद्धा साफ़-साफ़ न उतर सके। उन्होंने मेरी लम्बाई लक्षित की थी। उन्हें उसे लक्षित करने में आनंद आता था।

और वे कहते:

"नाटे लोगों में नौ ऐब होते हैं।"

उन्होंने यह एक से अधिक बार कहा, लोगों के बीच कहा, और स्वयं को तथा कक्ष को प्रसन्न करने के लिए कहा, और कक्ष प्रसन्न हुआ, और मैं भी। मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि मुझे एक बार भी बुरा नहीं लगा — न उससे, न उनकी मेरे विषय में की गई किसी टिप्पणी से, पच्चीस वर्षों के किसी एक दिन भी नहीं। मैं उन्हें प्रेम करता था। मैंने किसी को भी वैसे प्रेम नहीं किया जैसे उन्हें किया। और उस प्रेम के नीचे एक जमी हुई निश्चिति थी कि उनकी ओर से जो कुछ भी मेरी दिशा में आएगा वह केवल मेरे हित में ही हो सकता है — जिससे मेरी क़ीमत पर किया गया विनोद मुझ तक पहुँचने से पहले ही ऐसी वस्तु में बदल चुका होता जिससे मैं प्रसन्न होता।

और फिर, वर्षों बाद, उन्होंने उल्टा कहा।

"नाटे लोगों में नौ गुण होते हैं।"

और मैंने — क्योंकि मैं जो हूँ सो हूँ, और क्योंकि मैं अभिलेख रखता हूँ, और क्योंकि जिस मनुष्य ने अपना जीवन इस अंतर पर लगाया हो कि विनिर्देश क्या कहता है और मशीन वस्तुतः क्या करती है, वह किसी असंगति को जाने नहीं दे सकता — मैंने उन्हें स्मरण दिलाया। स्वामीजी, मैंने कहा, आपने तो कहा था कि नाटे लोगों में नौ ऐब होते हैं।

वे हँसे, और बोले:

"बदल कर अच्छे भी हो जाते हैं।"

मैं चाहूँगा कि पाठक इस पर एक क्षण ठहरे, इससे पूर्व कि मैं इस विषय में कुछ कहूँ, क्योंकि मैं इस पर बहुत समय ठहरा हूँ और ठहरने से यह बेहतर होता जाता है।

यह, सबसे पहले, एक विनोद है। एक स्मरणशक्ति वाले शिष्य ने उन्हें पकड़ लिया था और वे उससे सुंदरता से निकल गए, जैसे कोई फुर्तीला वृद्ध निकल जाता है, और कक्ष हँसा और मैं भी।

और यह, उसी समय, और स्वर में तनिक भी परिवर्तन के बिना, साधना का समूचा सिद्धांत है — पाँच शब्दों में।

क्योंकि समूचा मार्ग यही है। नौ ऐबों का हटाया जाना नहीं — आप उन्हें हटा नहीं सकते; वे वही सामग्री हैं जिससे आप बने हैं, और जो मनुष्य आरम्भ करने से पूर्व अपनी वृत्तियों से मुक्त होने की प्रतीक्षा करेगा वह आरम्भ ही न करेगा। वे *बदले* जाते हैं। वही ऊर्जा, दूसरी दिशा पाकर, गुण बन जाती है। क्रोध वह बल बन जाता है जो खोज को छोड़ता नहीं। हठ अनुशासन बन जाता है। एक नाटे व्यक्ति का यह अहंकार कि उसे गम्भीरता से लिया जाए, यदि बदल दिया जाए, तो उस मनुष्य का हठ बन जाता है जो एक प्रश्न को पच्चीस वर्ष तक नीचे नहीं रखेगा — जो कम-से-कम उसका एक उपयोग है, और उस प्रश्न का उत्तर पा लेने के समान नहीं है। कुछ भी फेंका नहीं जाता। सब कुछ घुमा दिया जाता है।

उन्होंने इसमें से कुछ नहीं कहा। उन्होंने कहा *बदल कर अच्छे भी हो जाते हैं*, और हँसे, और किसी और बात पर चले गए — ठीक वैसे ही जैसे उन्होंने मुझे एक टूटी जीप थमाकर किसी और बात पर चले गए थे। मैंने इसे यहाँ इसलिए खोला है क्योंकि मैं अपनी पुस्तक के अंत में हूँ और मुझे अनुमति है, और क्योंकि मुझे इसके लिए बीस वर्ष मिले हैं। उस दिन तो यह बस एक व्यक्ति था जो एक असंगति से निकल रहा था और आनंद ले रहा था।

और अब आप देखते हैं कि इस अध्याय के आरम्भ वाले वाक्य ने मुझे बर्बाद क्यों नहीं किया।

क्योंकि दोनों एक ही मुख से निकले। जिस व्यक्ति ने मुझसे कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ, उसी ने, लोगों के सामने, कहा कि नाटे लोगों में नौ ऐब होते हैं — और जब मैंने उन्हें अपने ही विरोध में पकड़ा, तो वे हँस पड़े और यह मानने के बजाय कि वे मुझे छेड़ रहे थे, ऐबों को गुणों में बदल दिया। दोनों वाक्य एक ही व्यक्ति से आए, एक ही स्वर में, उसी स्वर-रहित स्वर में जो वे हर बात के लिए काम में लाते थे। उनके पास तत्त्वज्ञान के लिए कोई गम्भीर ढंग और विनोद के लिए कोई हल्का ढंग नहीं था। एक ही मनुष्य था, और वे वही कहते थे जो सत्य था, और

कभी सत्य यह होता था कि तुम ब्राह्मण हो और कभी सत्य यह होता था कि नाटे लोग एक समस्या हैं।

यदि उन्होंने केवल पहली प्रकार की बातें ही कही होतीं, तो उनके विरुद्ध मेरे पास कोई बचाव न होता। वे नौ ऐब ही थे जिन्होंने उस दूसरे वाक्य को अनुपात में रखा। उन्होंने अपनी दी हुई प्रत्येक ऊँची वस्तु में कुछ ऐसा मिला दिया जिससे उसे थामे रहते हुए स्वयं को गम्भीरता से लेना असम्भव हो जाए; और मैं मानने लगा हूँ कि यह उनके स्वभाव की आकस्मिकता नहीं थी, बल्कि उनका किया सबसे व्यावहारिक शिक्षण था।

उन पिछले वर्षों की एक और बात है, और मैं उसे बिना व्याख्या के अंकित करता हूँ क्योंकि मेरे पास कोई व्याख्या है ही नहीं।

2021 में मैं अपनी पत्नी और उनके परिवार के साथ पालघर गया। मैं भीड़ में खड़ा था — उनके पास नहीं, किसी विशेष स्थान पर नहीं, बहुतों में से एक।

और उन्होंने मुझसे पूछा:

"जब तुम विदेश यात्रा करते हो, क्या खाते हो?"

मैंने सच बताया, कि मैं सब कुछ खाता हूँ, माँस भी।

बस इतना ही संवाद है। उन्होंने उसके बाद कोई निर्देश नहीं दिया। उन्होंने मुझे रोकने को नहीं कहा। उन्होंने भीड़ में, बाईस वर्षों से उनके पास आते रहे एक व्यक्ति से, एक प्रश्न पूछा कि वह दूसरे देशों में क्या खाता है, और फिर वह क्षण बीत गया।

मैं नहीं जानता उन्होंने क्यों पूछा। मैंने सोचा है कि क्या वह जान-बूझकर था और मैं आपको बता नहीं सकता, और मैंने इस समूची पुस्तक में आपसे वचन दिया है कि जहाँ मैं नहीं जानता वहाँ मैं कह दूँगा।

मैं इसके बगल एक वस्तु रख दूँगा और फिर दोनों को छोड़ दूँगा, जैसा मैंने उन्हीं से सीखा है।

उस प्रश्न से तीन वर्ष पूर्व, एडमॉन्टन के एक होटल-कक्ष में, मुझे अपने जीवन का सर्वोच्च स्वप्न आया था। मैंने आपको परिस्थितियाँ बताई थीं और तब भी उन पर बल दिया था और अब फिर देता हूँ: मैं एक कार्य-यात्रा के अंत में पहुँचा हुआ थका अधिकारी था, रात दो बजे

होटल पहुँचा, और उस रात अपने जीवन की किसी भी अन्य रात से अधिक न तैयार था, न शुद्ध। मैंने इस पर बल इसलिए दिया क्योंकि वह स्वप्न किसी शुद्ध किए गए व्यक्ति के पास नहीं आया था और मैं किसी को यह दिखावा न करने देता कि आया था।

और तीन वर्ष बाद उन्होंने मुझसे, भीड़ में, पूछा कि मैं विदेश में क्या खाता हूँ।

मैं उन दोनों को जोड़ने नहीं जा रहा। मैं केवल यह लक्षित करता हूँ कि इस पुस्तक को तथ्यों को एक-दूसरे के पास रखकर पीछे हट जाने की आदत है, और यह कि मैं अपने जीवन में कभी सिद्ध नहीं कर पाया कि वे जानते थे कि मैं क्या कर रहा हूँ, और एक बार भी यह भाव नहीं झटक पाया कि वे जानते थे।

उनके साथ मैं सदा यहीं रहा हूँ और आज भी यहीं हूँ।

और एक व्यक्ति और है जिसका इस अध्याय में होना आवश्यक है, क्योंकि वह प्रत्येक अन्य अध्याय में रही हैं।

अनुपमा यह पृष्ठ पढ़ेंगी, जैसे वे मेरा लिखा सब कुछ सबसे पहले पढ़ती हैं। वे इस पर विश्वास नहीं करतीं। उन्होंने पच्चीस वर्षों में इसमें से किसी पर विश्वास नहीं किया, उन्होंने कभी इसका दिखावा भी नहीं किया, और अब इसलिए आरम्भ नहीं करेंगी कि उनके पति ने लिख दिया है कि किसी संत ने उनसे कहा था कि वे ब्रह्म हैं। वे यह मानती हैं कि वे उच्चतम कोटि के संत थे। वे यह भी मानती हैं कि वे वह देख सकते थे जो अन्य नहीं देख सकते। और वे वही मानती हैं जो सदा से मानती आई हैं — कि इससे यह नहीं बदलता कि मनुष्य को कैसे जीना चाहिए; और यह कि जो व्यक्ति किसी प्रिय के सामने बैठकर प्रकाश देखता है, वह एक ऐसा व्यक्ति है जो किसी से प्रेम करता है।

मैं नहीं चाहता कि वे विश्वास करें। मैं चाहता हूँ कि पाठक इस अध्याय में विशेष रूप से उन्हें कक्ष में रखे, क्योंकि वे मेरे उनके साथ बीते समूचे जीवन में कक्ष में रही हैं, और क्योंकि इस अध्याय के शीर्ष जैसे वाक्य को ठीक यही चाहिए — कक्ष में एक पत्नी।

मैंने उन्हें अपने पास अनुभव किया है। रूपक के अर्थ में नहीं — पास, उसी अनुभूत ढंग से, अपने किए अच्छे कामों में भी और उनमें भी जिन्हें मैं लिखा हुआ नहीं देखना चाहूँगा। विमानतलों में, बैठकों में, होटल-कक्षों में, एक प्लाज़ा की दुकान में, और अपने ही गाँव की

कीचड़ में। एक बार भी अनुमोदन या निषेध करते हुए नहीं। बस उपस्थित; और वर्ष बीतने के साथ मैंने उस उपस्थिति को एक प्रकार के त्वरण के रूप में समझा: कि जो कुछ भी मेरे चारों ओर संचालित था, वह मुझे मेरी इच्छाओं और उलझनों की पकड़ से उससे तेज़ बाहर निकालने में लगा था जितना तेज़ मैं स्वयं निकल पाता — और कुछ कम सुविधा से।

उन्होंने मुझसे कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ।

उन्होंने यह भी कहा कि नाटे लोगों में नौ ऐब होते हैं।

इन दो वाक्यों के बीच वह सब कुछ है जो मुझे दिया गया, और मैं कभी एक को दूसरे के बिना थाम नहीं पाया, और मैं समझ गया हूँ कि उनका अभिप्राय ठीक यही था।

अध्याय तीस:

वे कौन थे, इससे पहले कि मैं उन्हें जानता

सत्ताईस अध्यायों तक मैंने आपको अपने सद्गुरु को वैसे बताया जैसे मैं उनसे मिला — एक उपस्थिति, एक स्वर, एक रुका हुआ मन, एक छड़ी, एक चाल, एक पर्वत के शिखर पर एक झील। मैंने आपको इस विषय में लगभग कुछ नहीं बताया कि वे कौन थे इससे पहले कि मैं उन्हें जानता, और यह जान-बूझकर रहा है, क्योंकि मैं उनसे एक उपस्थिति के रूप में मिला, एक जीवनी के रूप में नहीं, और मैं चाहता था कि आप उनसे उसी ढंग से मिलें। किन्तु जो पाठक इतनी दूर तक आया है उसका हक़ है कि अब उसे वह दूसरी वस्तु मिले। यह व्यक्ति कौन था? वे कहाँ से आए? किसके शिष्य थे, इससे पहले कि वे किसी के सद्गुरु थे? मैं, उनके साथ अपने पहले वर्षों के बाद, जानने निकला — और जो मैंने पाया, और जिस ढंग से मैंने उसे बताने का चुनाव किया है, उसके लिए पहले ईमानदारी के विषय में एक शब्द आवश्यक है।

◆

मैं एक अभियंता हूँ। जब मैं कोई वस्तु नहीं जानता, तो मैं उस अंतराल को किसी आत्मविश्वासी अनुमान से भरने के बजाय ऐसा कह देना अधिक पसंद करूँगा। और किसी संत का जीवन, उनके भक्तों द्वारा कहा गया, इस संसार के उन स्थानों में से एक है जहाँ आत्मविश्वासी अनुमान सबसे सरलता से उसे भीड़ में दबा देते हैं जो वास्तव में ज्ञात है।

अतः मैं आपको उनका जीवन एक विशेष ढंग से बताऊँगा। जहाँ कोई तथ्य प्रकाशित स्रोतों में अंकित है — उनके अपने आश्रम ट्रस्ट द्वारा रखे गए विवरण, स्वयं *यथार्थ गीता*, और वंश-जीवनियाँ *जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति* तथा *अनुसूया के परमहंस जी* — वहाँ मैं उसे स्पष्ट रूप से दूँगा और बताऊँगा कि वह कहाँ से आता है। जहाँ कुछ शिष्यों के बीच ढोया जाता है किन्तु मैं उसका किसी दस्तावेज़ तक पता नहीं लगा सकता, वहाँ मैं उसे वही कहूँगा जो वह है। और जहाँ मैं नहीं जानता — जैसे उनके आरम्भिक जीवन के अधिकांश के साथ

— वहाँ मैं वह भी कहूँगा, बजाय इसके कि उस व्यक्ति के लिए एक बचपन गढ़ूँ जिसने अपना समूचा जीवन किसी भी वस्तु को गढ़े जाने देने से इनकार करने में बिताया।

मैं उन पुस्तकों को पुनः प्रस्तुत नहीं करूँगा; वे स्वयं में सारगर्भित कृतियाँ हैं, और जो पाठक पूरा विवरण चाहता है उसे उन तक जाना चाहिए। मेरा अभिप्राय केवल यह है कि, विश्वस्तता से, उतना सारांश दूँ जितना उस व्यक्ति को समग्र रूप में देखने के लिए आवश्यक है।

◆

केंद्रीय तथ्य, आश्रम के अपने सभी स्रोतों में संगति के साथ अंकित, यह है। **नवम्बर 1955 में, तेईस वर्ष की आयु में, एक युवक संसार से निकलकर एक जंगल में आया, सत्य की खोज में।** वे एक विरक्त के पास आए — एक सांसारिक संत, जैसा विवरण उन्हें कहते हैं — जिनका नाम था **परमानंद जी**, जिनकी कुटी **मध्य प्रदेश के सतना ज़िले के, चित्रकूट में, अनुसुइया** में खड़ी थी, इतने घने जंगल में गहरे कि वह वन्य पशुओं को समेटे रहे, बिना एक भी साधारण सुख के। कि वहाँ कोई व्यक्ति रहता भी था, विवरण लक्षित करते हैं, यह आपको बताता है कि वे किस प्रकार के ऋषि रहे होंगे। जो युवक उस नवम्बर आया, वह, समय के साथ, संसार को **स्वामी अड़गड़ानंद** के रूप में ज्ञात होने वाला था — और मुझे, दशकों बाद, बस मेरे सद्गुरु के रूप में।

वे नवम्बर 1955 में तेईस वर्ष के थे। यह उनका जन्म लगभग **1932** में रखता है। और यहाँ मैं आपको उससे कुछ बता सकता हूँ जो जंगल से पहले आया — वंश की प्रकाशित जीवनियों से नहीं, जो उस पर मौन हैं, बल्कि उससे जो उनके निकट लोगों के बीच थामा जाता है, और जिसे आज एक स्थान अंकित करता है।

कहा जाता है कि उनका जन्म **ओशिया** में हुआ — ओसियाँ, राजस्थान में, जोधपुर के उत्तर का वह पुराना क़स्बा — और कि अब वहाँ, उनके जन्म-स्थान से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर, एक आश्रम खड़ा है; जबकि उनका जन्म-स्थान — वह घर — आज भी अपनी उसी अवस्था में है, जैसा वह था। उनके बचपन के विषय में परम्परा थोड़ा कहती है, और मैं उस मौन को गढ़ंत से न भरूँगा। जो महत्वपूर्ण है, और जो निश्चित है, वह यह है कि वह मार्ग कहाँ ले गया: कि राजस्थान के एक मरुस्थली क़स्बे का एक युवक अपने भीतर, आरम्भ से ही, वह महान बेचैनी ढोता था जिसका कोई सांसारिक उपचार नहीं — वस्तुओं की

अनित्यता से परे जाने की वह तड़प — और कि उसने उन्हें अंततः समूचे देश के आर-पार एक यात्रा पर लगा दिया, चित्रकूट की पहाड़ियों में अनुसुइया के एक जंगल तक, एक ऐसे पहलवान के चरणों तक जो एक ऋषि बन गया था।

मैं इसे वही देता हूँ जो यह है — सार्वजनिक अभिलेख में प्रलेखित नहीं, जो उनकी कहानी उनके गुरु के द्वार से आरम्भ करता है, बल्कि उनके निकट लोगों की स्मृति में थामा हुआ और ओशिया के आश्रम द्वारा अंकित।

मैं इतना भी उस व्यक्ति के साथ के अपने सम्बन्ध को अनुभव किए बिना नहीं पढ़ सकता जिसे मैंने बाद में जाना। एक युवक एक मरुस्थली क़स्बा छोड़ता है, एक ऐसी बेचैनी ढोता हुआ जिसे वह नाम नहीं दे सकता, और उसके बल पर एक समूचा देश पार करता है — और बनता है, अंततः, वह सद्गुरु जिसने एक नौ वर्ष की बालिका से, जिसने पूछा था कि क्या उन्होंने भगवान को देखा है, कहा *मैंने आपको देखा है।* वह जो एक साधारण फ़्लैट में बैठने के लिए चार मंज़िल सीढ़ियाँ चढ़ा और सीढ़ियों पर एक परिहास किया। वह जिसने, जब मैंने एक कीड़े के काटने पर उन्हें विफल किया, मेरे अज्ञान को वही पढ़ा जो वह था और दोपहर तक प्रेम पर लौट आया। जो खोज ओशिया में आरम्भ हुई वह एक ऐसी कोमलता में समाप्त हुई जो मैंने, अपात्र, पच्चीस वर्ष पाई। मैं उसे सिद्धांत के रूप में नहीं देता। मैं उसे एक पुत्र की कृतज्ञता के रूप में देता हूँ, उस लंबे मार्ग को पीछे की ओर खींचते हुए और विस्मय करते हुए कि वह इतनी दूर आरम्भ हुआ, एक ऐसे क़स्बे में जिसे मैंने कभी नहीं देखा, एक ऐसे बालक में जो अभी नहीं जान सकता था कि वह किसकी ओर चल रहा था।

जिस पर स्रोत इसके बजाय ठहरते हैं वह वह भेंट है — और उस पर ठहरना योग्य है, क्योंकि वह किस विचित्र ढंग से मेरी अपनी कहानी से तुक मिलाती है।

◆

आश्रम के अपने विवरण के अनुसार, **परमानंद जी जानते थे कि वह युवक आ रहा है, उसके पहुँचने से पहले।** उन्हें, स्रोत कहते हैं, एक पूर्वाभास मिला था — वर्षों पहले — इस साधक के आगमन का। और ठीक उसी दिन जब वह युवक जंगल पहुँचा, परमानंद जी ने अपने चारों ओर के शिष्यों से कहा कि कोई निकट है: *एक युवक, जीवन की अनित्यता से परे जाने को उत्कट रूप से खोजता हुआ, अभी किसी भी क्षण आ रहा होगा।* और जब उनकी

दृष्टि पहली बार पेड़ों से होकर आती आकृति पर पड़ी, तो कहा जाता है कि उन्होंने बस घोषित किया: **"यह रहा वह।"**

मैं उसे वही अंकित करता हूँ जो वह है — आश्रम का अपना अंकित विवरण, उनके लोगों के बीच कहा गया और वंश-जीवनियों में प्रकाशित, ऐसा कुछ नहीं जिसे मैं स्वतंत्र रूप से सत्यापित कर सकूँ। किन्तु मैं उसे एक विशेष सिहरन के बिना नहीं पढ़ सकता, और मैं आपको बताऊँगा क्यों, क्योंकि वही कारण है कि यह अध्याय पुस्तक में यहाँ बैठता है न कि आरम्भ में।

परमानंद जी ने अपने शिष्य के आगमन का पूर्वज्ञान किया। *सत्य खोजता एक युवक आ रहा है।*

और दशकों बाद, उस शिष्य ने — मेरे सद्गुरु ने — मेरे पुत्र के आगमन का पूर्वज्ञान किया। मेरी पत्नी की पीठ से एक छड़ी, एक से दो होने के विषय में एक प्रश्न, मेरे एक शब्द कहने से पहले कहा गया एक पूर्वज्ञान।

वह पूर्वाभास वंश में नीचे तक दोहराता है। वह सद्गुरु जिसका पूर्वज्ञान किया गया, वह सद्गुरु बना जिसने पूर्वज्ञान किया। मैं इस पर कोई सिद्धांत नहीं बनाता। मैं केवल लक्षित करता हूँ कि जो प्रतिरूप मुझे अपने ही जीवन में इतना असम्भव लगा, वह पहले-से-जानना जिसे समझा-बुझाकर किनारे करने में मैं पच्चीस वर्ष असमर्थ रहा, वह मेरे सद्गुरु के साथ नया न था। वह उनके साथ, आरम्भ में, दूसरी ओर से हुआ था — वे वह युवक थे जिसके आगमन की घोषणा एक संत ने उसके पेड़ों से बाहर निकलने से पहले की थी। यह वस्तु जो भी है, उन्होंने उसे गढ़ा नहीं। उन्होंने उसे उत्तराधिकार में पाया, और उसने उन्हें उत्तराधिकार में पाया।

विवरण उन आरम्भिक दिनों के विषय में एक और बात जोड़ते हैं जो मुझे चुपचाप द्रवित करती है, क्योंकि मैं वह अनुभूति भीतर से जानता हूँ। किसी गुरु में श्रद्धा एक साथ नहीं आ जाती, एक होने-वाले संत के लिए भी नहीं। युवा अड़गड़ानंद, आश्रम का विवरण कहता है, उस ऋषि की महानता को तत्काल नहीं समझ पाए जिनके पास वे आए थे — जैसे मैं न समझ पाया, हवाई अड्डे पर, पहलवानों के घर पर, जंगल के फ़र्श पर। और फिर उन्होंने स्वप्न देखा: एक दिव्य आकृति, एक ब्रह्मचारी ब्राह्मण, उन्हें निद्रा में प्रकट हुआ और उन्हें बताया कि उनके गुरु में समस्त महानतम ऋषियों के सारे गुण हैं। उनकी श्रद्धा गहरी हुई;

उनकी साधना तेज़ हुई; और, गुरु द्वारा निर्देशित, वे मुक्ति के मार्ग पर निकल पड़े। एक स्वप्न जिसने एक शिष्य की श्रद्धा को दृढ़ किया — मैं उनके विषय में कुछ जानता हूँ। जिस वंश में मैं प्रवेश कर चुका था वह उन्हीं पर चलता था।

आश्रम के अपने अभिलेख के अनुसार, **स्वामी जी ने अपने गुरु की निकटता में लगभग पंद्रह वर्ष गहन ध्यान में बिताए** — वे वर्ष जिनमें, साक्षी कहते हैं, वे महीनों तक भोजन, जल और निद्रा त्याग देते। वे 1955 में आए; उनके गुरु ने **1969** में निर्वाण प्राप्त किया; और वे चौदह या पंद्रह वर्ष वह भट्ठी थे। मेरे सद्गुरु जो भी बने, वे वहीं बने, उस जंगल में, उस पहलवान-से-बने-ऋषि के चरणों में, डेढ़ दशक की एक ऐसी साधना पर जिसकी मैं मुश्किल से कल्पना कर सकता हूँ — मैं, जो उनके स्वप्नों के आकर मुझे उसकी ओर लज्जित करके लौटाए बिना एक दैनिक बैठक भी न रख सका।

◆

उनके गुरु, परमानंद जी के विषय में, वंश-जीवनी *जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति* — जिससे आश्रम के अपने विवरण लेते हैं — एक ऐसा जीवन अंकित करती है जिस पर ठहरना योग्य है, क्योंकि यह निकलता है कि मेरे सद्गुरु के सद्गुरु, आरम्भ में, कोई पवित्र व्यक्ति थे ही नहीं।

उनका **जन्म उत्तर प्रदेश के देवरिया ज़िले के, रामकोला गाँव में, एक साधारण परिवार में** हुआ; उनकी माता **फुलमनी देवी** और उनके पिता **श्री जगरूप शर्मा** थे। विवरण उनके शैशव का एक छोटा, मानवीय दृश्य सुरक्षित रखते हैं: एक ज्योतिषी ने, उस बालक को देखकर, माता से कहा कि उसने किसी असाधारण को जन्म दिया है — कि वह बड़ा होकर या तो एक राजा होगा या एक सिद्ध गुरु — और चकित माता ने एक छोटा-सा लोक-अनुष्ठान किया, बालक के सिर के ऊपर से नमक और मिर्च उतारकर बुरी नज़र से बचाने के लिए। उनकी पढ़ाई आरम्भ होने से लगभग पहले ही समाप्त हो गई: पाँच वर्ष की आयु में विद्यालय में डाले गए, तीसरे दिन गुरु द्वारा हल्का दंडित हुए, चिल्ला उठे, और उनकी माता ने घोषित कर दिया कि बस इतना ही। अतः वे बड़े हुए, परम्परा के अपने कहे से, अनिवार्यतः निरक्षर।

और यहाँ वह विवरण है जिसे मैं मुस्कुराए बिना नहीं पढ़ सकता, यह देखते हुए कि यह पुस्तक हमें पहले ही कहाँ ले जा चुकी है। वे बड़े होकर जो बने वह एक **पहलवान** था। वह इलाक़ा उसके लिए दीवाना था; उस गाँव के अपने अखाड़े थे; और वे एक अपराजित पहलवान बने,

अट्ठाईस वर्ष की आयु तक कभी न हारे, स्वयं महान गामा से कुश्ती लड़ने की महत्वाकांक्षा पाले। मेरे सद्गुरु के सद्गुरु कुश्ती के मैदान के एक चैंपियन थे — और आपको स्मरण होगा कि मेरे सद्गुरु के साथ मेरी अपनी दूसरी भेंट, गधे-और-ऊँट वाले प्रश्न का दिन, पहलवानों के घर पर हुई थी। मैं इसका कोई अर्थ नहीं निकालता। मैं केवल लक्षित करता हूँ कि यह पुस्तक मुझे बार-बार अखाड़े में लौटाती है, और कि जिस वंश में मैं ठोकर खाकर आ गिरा था वह एक ऐसे व्यक्ति तक पीछे जाता था जिसने स्व को जीतने से पहले शरीर को जीता था।

वह मोड़ आया, विवरण कहते हैं, तीन दिव्य निर्देशों से — एक स्वर, मानो आकाश से। पहले ने उन्हें एक विशेष ऋषि को भोजन कराने को कहा। दूसरे ने उन्हें बीच-कदम रोक दिया जब वे किसी भ्रष्ट करने वाली संगति की ओर चल रहे थे, उन्हें चेताते हुए कि वे पाप की ओर चल रहे हैं। और तीसरे ने उन्हें स्पष्ट रूप से बताया: *तुम्हारे गुरु इस मंदिर में हैं।* वे एक अंधकारमय, जर्जर मंदिर में गए, उसे प्रत्यक्षतः ख़ाली पाया, व्यथा में चले गए — और फिर अँधेरे में एक खाँसी सुनी। उनके गुरु वहाँ थे, अंततः। उन्होंने वृद्ध की सेवा को तीन दिन दिए, ध्यान की प्रक्रिया आश्चर्यजनक रूप से तेज़ी से सीखी, और समझ गए — जैसे मैं दशकों बाद एक भिन्न सद्गुरु के माध्यम से समझने वाला था — कि जिसे उन्होंने अपना समूचा जीवन उपासना कहा था वह उपासना थी ही नहीं। चार महीने बाद, विवरण कहते हैं, उनमें आध्यात्मिकता प्रज्वलित हुई, और वह पहलवान ऋषि बन गया। समय के साथ वे एक परमहंस के रूप में पहचाने गए, वह जो उच्चतम अवस्था में स्थित हो, और अनुसुइया की वन-कुटी उनकी उपस्थिति के चारों ओर उगी; उनके बाद, उनके शिष्यों ने उत्तर भारत भर आश्रमों की एक शृंखला फैलाई। वे मूल थे; वृक्ष उनसे फैला — और मेरे सद्गुरु उसकी एक शाखा थे।

मुझे, बंद करने से पहले, उन अन्य लोगों को नाम देना चाहिए जो इस वंश के हैं, क्योंकि एक सद्गुरु सिद्धों की संगति से जाना जाता है, और क्योंकि यह पुस्तक पहले ही, भली-भाँति ऐसा कहे बिना, उनके चारों ओर घूमती रही है।

वह वंश परमानंद जी से आरम्भ न हुआ। उनके भी एक सद्गुरु थे — **सत्संगी महाराज** — ताकि वह वंश जिसमें मैं एक ऊबी हुई दोपहर में ठोकर खाकर आ गिरा, कम-से-कम सिद्ध पुरुषों की तीन पीढ़ियों से होकर पीछे जाता है इससे पहले कि वह कभी मुझ तक पहुँचा:

सत्संगी महाराज, फिर परमानंद जी, फिर मेरे अपने सद्गुरु, प्रत्येक अपने से पहले वाले के शिष्य। मैं किसी व्यक्ति में सम्मिलित न हुआ। मैं एक नदी में सम्मिलित हुआ, और वह नदी उस एक मोड़ से पुरानी और गहरी थी जिसमें मैं संयोगवश क़दम रख बैठा।

और मेरे सद्गुरु के चारों ओर उनके अपने गुरु के बनाए और उनके अपने बनाए अन्य लोग खड़े थे। दो महान **गुरु-भाई** थे, मेरे सद्गुरु के अपने गुरु-भाई: **स्वामी सच्चिदानंद जी महाराज**, धरकुंडी के, और **स्वामी भगवानंद जी महाराज**, अनुसूया के — दोनों सिद्ध, दोनों ज्येष्ठ, दोनों उसी अवस्था में स्थित जिस तक मेरे सद्गुरु पहुँचे। **श्री राम बाबा** थे — मड़ैया बाबा, जैसा गाँववाले उन्हें जानते थे। और **स्वामी श्री बच्चा बाबा जी महाराज** थे। और **श्री नारद महाराज जी** थे, जो तेरह वर्ष के एक बालक के रूप में इस वंश के चरणों में आए थे और उसी में वृद्ध हुए, और एक समूचे जीवन की लम्बाई भर मेरे सद्गुरु के बगल में रहे — अपने आप में एक पूजित संत, और उनमें से अंतिम जिसे मैं नाम दूँगा।

मैं उन्हें तथ्य के रूप में अंकित करता हूँ, स्पष्ट रूप से, और उसमें कुछ नहीं जोड़ता। किन्तु मैं इतना कहूँगा, और फिर और नहीं कहूँगा, और शेष आप पर छोड़ दूँगा। परमानंद जी के, अपने शिष्यों में, तीन थे जो अवस्था की पूर्णता तक आए — सच्चिदानंद जी, भगवानंद जी, और मेरे अपने सद्गुरु। तीन सिद्ध पुरुष, एक गुरु के, एक वंश के। मैं इसे केवल इसलिए अंकित करता हूँ क्योंकि यह सत्य है। यदि यह, एक ऐसे पाठक में जो मेरे साथ इतनी दूर तक आया है, एक जंगल में एक विशेष रात के एक विशेष स्वप्न की स्मृति जगाता है — तीन आकृतियाँ, एक पहाड़ी से नीचे आती हुईं, एक के बाद एक, उनके चेहरे कभी न दिखाए गए — तो वह पाठक उस समानता का जो चाहे अर्थ निकाले। मैंने, इस पुस्तक में बहुत पहले, एक वचन दिया था कि मैं आपको कभी नहीं बताऊँगा कि उस स्वप्न का क्या अर्थ था। मैं उसे निभाने का अभिप्राय रखता हूँ। मैं केवल तीन के तथ्य को तीन की स्मृति के बगल में रखता हूँ, और पीछे हट जाता हूँ, और उन्हें मौन में एक-दूसरे के निकट खड़ा रहने देता हूँ, जैसा मैंने अपने सद्गुरु से हर उस वस्तु के साथ करना सीखा है जिसे मैं समझा नहीं सकता।

◆

अब वह पुस्तक जिसने मुझे उलट दिया — *यथार्थ गीता*।

यहाँ स्रोत स्पष्ट और संगत हैं, और जो वे अंकित करते हैं वह, मेरे लिए, समूचे उद्यम के विषय में सबसे असाधारण वस्तु है, क्योंकि वह उसका विपरीत है जिसकी आप अपेक्षा करेंगे। **लेखक लिखना नहीं चाहते थे।** आश्रम के अपने विवरण और पुस्तक की अपनी साक्षी के अनुसार, स्वामी जी बेचैन आध्यात्मिक स्वभाव के व्यक्ति थे, सांसारिक अर्थ में निरक्षर, जो स्वयं लेखन को परम की ओर के मार्ग पर एक बाधा मानते थे — घुलाई जाने वाली एक और मानसिक आसक्ति। उन्होंने, ध्यान के माध्यम से, इसे भी घुलाने का प्रयास किया। किन्तु लिखने का निर्देश, विवरण कहते हैं, एक ऐसे स्रोत से आया जिसे वे रद्द नहीं कर सकते थे; और अतः वह भाष्य किसी साहित्यिक महत्वाकांक्षा से नहीं बल्कि लगभग उनकी अपनी इच्छा के विरुद्ध लिखा गया, एक माने गए आदेश के रूप में। जहाँ त्रुटियाँ आईं, विवरण मानते हैं, वे उसी स्रोत से सुधारी गईं।

और यहाँ मुझे ऊँट पर लौटना होगा — क्योंकि मैंने आपको, कई अध्याय पहले, जब मैंने स्वप्नों की शब्दावली अंकित की थी, बताया था कि ऊँट एक बची हुई इच्छा है, एक *वृत्ति* जो अभी भस्म नहीं हुई, और कि जिस महानतम व्यक्ति को मैं कभी जान पाया उनका अपना एक ऊँट था। यही वह था। गीता पर भाष्य लिखने की इच्छा, जैसा मैं समझ पाया, स्वामी जी की अपनी अंतिम *वृत्ति* थी — एक ऐसे व्यक्ति में शेष एकमात्र अवशिष्ट चाह जिसने शेष सब कुछ छोड़ दिया था। कहा जाता है, एक ऊँट उनके इर्द-गिर्द भटकता था। एक इच्छा खड़ी रह गई थी जब बाकी सब घुल चुकी थीं, और वह यह थी: गीता को वैसा ही प्रस्तुत करना जैसी वह वास्तव में है। और उन सारी इच्छाओं में से जिनके साथ कोई मनुष्य शेष रह सकता है, विचार कीजिए कि यह उनकी थी — धन नहीं, यश नहीं, सुख नहीं, बल्कि उस वस्तु को, स्पष्ट करके, सबको वापस दे देना।

और विचार कीजिए कि इसके विरुद्ध क्या खड़ा था। वे संस्कृत नहीं जानते थे। उनकी औपचारिक शिक्षा केवल तीसरी कक्षा तक हुई थी। हर सांसारिक माप से, इस सभ्यता के सर्वाधिक व्याख्यायित शास्त्र पर एक भाष्य की रचना — एक ऐसा पाठ जिसे विद्वान अपना समूचा जीवन देते हैं — ऐसे व्यक्ति के लिए कठिन नहीं बल्कि सीधे-सीधे *असम्भव* थी। तीसरी कक्षा की शिक्षा और कोई संस्कृत नहीं, भगवद्गीता के सामने रखी हुई। यह किया नहीं जा सकता। और ठीक यही कारण है कि यह विवरण कि वह उनके *द्वारा* नहीं बल्कि उनके *माध्यम से* किया गया, मुझे सदा किसी श्रद्धापूर्ण अलंकरण से कम और एकमात्र ऐसी व्याख्या

अधिक लगा है जो तथ्यों में बैठती है। तीव्र *तपस्या* के माध्यम से — जंगल के उन लंबे वर्षों के माध्यम से, एक ऐसे अनुशासन के जिसकी मैं कल्पना करने का दावा भी नहीं कर सकता — विवरण मानते हैं कि ईश्वर ने गीता उनके माध्यम से लिखी: कि वह उनके हृदय में प्रकट हुई, और उन्होंने केवल वही अंकित किया जो उन्हें दिया गया। असम्भवता उस विवरण के लिए कोई समस्या नहीं है। असम्भवता उसका प्रमाण है।

मैं आश्रम के विवरण का सारांश दे रहा हूँ, किसी तत्त्वमीमांसा का समर्थन नहीं। किन्तु उसे उस हर वस्तु के बगल में रखिए जो आप अब उनके विषय में जानते हैं। यह वही व्यक्ति है जिसने, एक संगमरमर के पर्वत के शिखर पर एक झील पर, मुझसे कहा *इसके आगे भगवान ही पढ़ाएँगे।* वही व्यक्ति जिसने, मेरे पुत्र के विषय में पूछे जाने पर, कहा *ईश्वर ने मुझे बताया* न कि *मैंने यह किया।* उन्होंने *यथार्थ गीता* वैसे ही लिखी जैसे उन्होंने हर वस्तु की: एक ऐसे के रूप में जिसे निर्देशित किया जाता है, न कि एक ऐसे के रूप में जो रचता है; एक खिड़की, न कि प्रकाश। वह पुस्तक जिसे एक ऊबे हुए अभियंता ने खोला और रख न सका, एक ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखी गई थी जो उसे लिखना नहीं चाहते थे और जिसने उसके रचयिता होने का कोई दावा न किया। वह संगति — इस बीच कि वह पुस्तक कैसे बनी और उस व्यक्ति के विषय में हर वस्तु जो मैंने बाद में देखी — मेरे लिए, किसी भी चमत्कार से अधिक मूल्यवान है।

संसार ने, समय के साथ, उसका सम्मान किया। **'भारत गौरव'** — भारत का गौरव — *यथार्थ गीता* के लिए **अप्रैल 1998** में हरिद्वार के महाकुम्भ में प्रदान किया गया। प्रयाग महाकुम्भ में, **26 जनवरी 2001** को, एकत्रित शंकराचार्यों और विद्वानों के समक्ष, स्वामी जी को **'विश्व गुरु'** के रूप में सम्मानित किया गया। वह पुस्तक तब से लगभग पंद्रह अंतरराष्ट्रीय भाषाओं में और उतनी ही भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत की जा चुकी है, उसका श्रव्य और पाठ हर उस व्यक्ति के समक्ष निःशुल्क रखा गया जो उन्हें चाहता है।

और उन्होंने अन्य वस्तुएँ भी लिखीं, प्रत्येक उसी एक ध्येय की सेवा में। उनकी सभी कृतियों में सबसे पहली, आश्रम लक्षित करता है, *जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति* थी — स्वयं उनके अपने गुरु की वही जीवनी जिससे मैं इस अध्याय में लेता रहा हूँ, अंशतः परमानंद जी का जीवन-चित्र और अंशतः उन सिद्धि की तकनीकों का अभिलेख जो गुरु ने उन्हें दी थीं। उन्होंने

शंका समाधान में रूढ़िवादी समाज के संदेहों का उत्तर दिया। उन्होंने उन विचित्र शारीरिक चिह्नों को भी सम्बोधित किया जो साधना की जागृति के साथ आते हैं — अंगों के अनैच्छिक कम्पन — एक और छोटी पुस्तक में। और उन्होंने कबीर के पदों को लिया, संत-कवियों की वही सांकेतिक भाषा जिसके विषय में मैंने लिखा है, और उन्हें *अमृतवाणी* में व्याख्यायित किया — जो वहाँ है जहाँ उनकी सिखाई अधिकांश स्वप्न-शब्दावली का सार्वजनिक मूल है।

आश्रम उनके विषय में दो वस्तुएँ अंकित करता है जिन्हें मैं अपना एक शब्द भी जोड़े बिना रखना चाहता हूँ, क्योंकि वे उस व्यक्ति का सर्वाधिक सम्भव सच्चा चित्र हैं जिसे मैंने जाना और वह पूर्ण स्वर जिस पर उनके जीवन को बंद किया जाए। पहली: *स्वामी जी ने एक बार भी दिव्यता प्राप्त करने का दावा नहीं किया।* उन्होंने समाज के समक्ष केवल वे रत्न प्रस्तुत किए जो उन्होंने अपनी ही खोज में एकत्र किए थे — कभी स्वयं को उस कोष के रूप में नहीं। दूसरी: 1969 में अपने गुरु के निर्वाण से आगे, दशक-दर-दशक, वे जहाँ भी रहे, उन्होंने उन लोगों के प्रवाहों के लिए भोजन और विश्राम और आश्रय की व्यवस्था की जो उनके पास बड़ी दूरियों से आते — पवित्र और शोक-संतप्त एक समान — निःशुल्क, बिना कभी किसी और से उसका ख़र्च उठाने को कहे। एक ऐसा व्यक्ति जिसने कभी ईश्वर होने का दावा नहीं किया, और जिसने चुपचाप हर उस व्यक्ति को भोजन कराया जो आया। यही उनका समस्त है, और यह ठीक वही व्यक्ति है जो मेरे फ़्लैट तक चार मंज़िल सीढ़ियाँ चढ़ा और सीढ़ियों पर एक परिहास किया।

किन्तु यह *यथार्थ गीता* ही है जो मुझ तक एक मित्र के घर की एक अलमारी पर पहुँची और मेरा जीवन मोड़ दिया, और यह *यथार्थ गीता* ही है जो संसार तक पहुँची।

मैं स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि मैं उसके विषय में क्या मानता हूँ, क्योंकि मैंने इस पुस्तक में हर अन्य वस्तु पर इस व्यक्ति के वचन पर विश्वास किया है और मैं अब, अंत में, उस वस्तु पर चुप नहीं रहूँगा जो उनके लिए सबसे अधिक महत्व रखती है। मैं वही मानता हूँ जो उन्होंने सिखाया: कि *यथार्थ गीता* का हर शब्द स्वयं ईश्वर द्वारा कहा गया है, और इसलिए उसमें परिवर्तन का कोई अवकाश नहीं है — कि उसे वैसा ही लिया जाना है जैसी वह है। उनका मानना था, और मेरा मानना है, कि जो भी उसे पढ़ता है और उस पर चिंतन करता है जैसी

वह है, कम से कम तीन बार, वह जागृत हो जाएगा; कि पठन ही, ईमानदारी से और दोहराकर किया गया, अपना कार्य करता है। जो कुछ और आश्रम से आया है — और मैं इसमें *अमृतवाणी* को सम्मिलित करता हूँ, जो मुझे लगता है उसमें सबसे उत्कृष्ट है, कबीर की वह महान व्याख्या जिसने मुझे इतना कुछ दिया जो मैं समझता हूँ — वह सब सहायक सामग्री है, केंद्रीय वस्तु के चारों ओर का ढाँचा। किन्तु *यथार्थ गीता*, उनकी शिक्षा में, सीधे ईश्वर द्वारा आशीषित है, और अलग खड़ी है। यह उनकी इच्छा थी, स्पष्ट रूप से और बार-बार कही गई, कि इसे समूचे संसार भर, हर भाषा में ले जाया जाए, और सबके समक्ष रखा जाए।

वह इच्छा संयोग पर नहीं छोड़ी गई। आरम्भ के दिनों में यह शिष्य ही थे जिन्होंने इसे ढोया — वे लोग जिन्होंने पुस्तक ली, अपने ही ख़र्च और परिश्रम पर, और उसे छपते और लोगों के हाथों में पहुँचते देखा। **जितेन चौकसी** उन वर्षों में उस कार्य के अग्रणी व्यक्तियों में से एक थे, उनमें से एक जिन्होंने पुस्तक को प्रकाशित और वितरित कराने में सहायता की जब वह अभी अपने पाठक खोज ही रही थी। बाद में और बहुत-से जुड़े, एक के बाद एक हाथ, जब तक कि उस वस्तु की अपनी एक गति न बन गई। और यह कार्य कर गया। *यथार्थ गीता* अब एक ऐसी पुस्तक है जो आपको उत्तर और पूर्व और पश्चिम और देश के मध्य भर अधिकांश घरों में मिलेगी — एक साधारण वस्तु एक साधारण अलमारी पर, ठीक वैसे ही जैसे वह घाटकोपर की उस अलमारी पर एक साधारण वस्तु थी जहाँ वह मेरे उठाने की एक वर्ष प्रतीक्षा करती रही। इसी ढंग से ये वस्तुएँ यात्रा करती हैं। तमाशे से नहीं। एक व्यक्ति के इसे दूसरे को थमाने से, और कहने से: इसे पढ़ो।

अमृतवाणी — कबीर की *उलट-वासी* की व्याख्या, उस संत-कवि के "उलटे पद", जिन्हें स्वामी जी ने पहले प्रवचनों के रूप में दिया जो कैसेट बने, फिर सीडी, फिर जो भी रूप आगे आया — अभी तक, मेरी जानकारी में, पूरी तरह हिंदी पाठ में उस ढंग से प्रस्तुत नहीं की गई जिसकी वह पात्र है। मैं चाहूँगा, इससे पहले कि मैं समाप्त हो जाऊँ, यह करना: उस स्पष्टता को एक ऐसे रूप में ले जाने में सहायता करना जिसे और लोग थाम सकें। यह वह कार्य है जिसके साथ मैं सबसे अधिक शेष रहना चाहूँगा — मेरे अपने काले अंगूर, शायद, अब भी मेरे हाथों से छलकते हुए, अब भी बाँटे जाने के लिए ही।

◆

मैं, अंततः, यह कहना चाहता हूँ कि मैंने उनका जीवन यहाँ, अंत के निकट क्यों रखा है, न कि आरम्भ में जहाँ एक जीवनी उसे रखेगी।

यह इसलिए कि वे मेरे पास एक जीवन के रूप में नहीं आए। वे मेरे पास एक उपस्थिति के रूप में आए, और उस उपस्थिति ने अपना काम किया — वह रुका हुआ मन, वे स्वप्न, वे पच्चीस वर्ष — इससे बहुत पहले कि मैं जानता कि वे कब जन्मे थे या किसके शिष्य थे या *यथार्थ गीता* कैसे लिखी गई। वे तथ्य, जब मैंने अंततः उन्हें एकत्र किया, मेरी धारणा को रचा नहीं; वे उसके बाद आए, और उसे केवल गहरा किया। यह जानने ने कि उनके अपने सद्गुरु ने *उनके* आगमन का पूर्वज्ञान किया था, मुझे यह विश्वास न कराया कि उन्होंने मेरे पुत्र का पूर्वज्ञान किया — मैं वह पहले से जानता था; मैं उसे जी चुका था। इसने मुझे केवल यह दिखाया कि मैं किसी ऐसी वस्तु के भीतर खड़ा था जो मेरे अपने विचित्र जीवन से पुरानी और बड़ी थी: एक ऐसा वंश जिसमें वह असम्भव वस्तु जिसे मैं समझा न सकता था, चुपचाप, गुरु से शिष्य तक, बहुत पहले से हो रही थी, इससे पहले कि वह मुझ पर हुई।

अतः उनके जीवन को उसी रूप में लीजिए जो वह है: उसकी नींव नहीं जिसे मैं मानने आया हूँ, बल्कि उसका संदर्भ। कारण हमारे पीछे के सत्ताईस अध्यायों में है — जंगल में, स्वप्नों में, वर्षा में, झील में। यह अध्याय आपको केवल यह बताता है कि उनमें बैठा व्यक्ति कौन था, इससे पहले कि एक ऊबे हुए अभियंता ने एक ऐसी पुस्तक खोली जिसे वह पहले ही न पढ़ने का निश्चय कर चुका था, और पाया, उसके दूसरे छोर पर, वह व्यक्ति जिस तक लाने के लिए उसका समूचा जीवन प्रत्यक्षतः व्यवस्थित किया गया था।

अध्याय इकतीस:

उन्होंने मुझे देखना सिखाया

मैं अंत पर आ पहुँचा हूँ, और मैं पाता हूँ कि मेरे पास आपको देने के लिए कोई निष्कर्ष नहीं है — जो कि, मैं धीरे-धीरे समझा हूँ, वह सबसे सच्ची वस्तु है जिस पर यह पुस्तक सम्भवतः समाप्त हो सकती है। मेरे सद्गुरु निष्कर्षों का व्यापार नहीं करते थे। उन्होंने एक बार भी मुझसे किसी वस्तु पर विश्वास करने को नहीं कहा। और अतः मैं आपसे भी ऐसा कहकर समाप्त नहीं करूँगा।

◆

मुझे इकट्ठा करने दीजिए कि उन्होंने कभी क्या नहीं माँगा।

उन्होंने कभी मुझसे यह विश्वास करने को नहीं कहा कि वे भगवान हैं। मैंने वह कहा — अपनी पुत्री से, एक साधारण संध्या को, एक पिता की समूची धारणा के साथ — और जब वह वह प्रश्न उनके पास ले गई, तो उन्होंने उसकी पुष्टि नहीं की। *मैंने आपको देखा है,* उन्होंने उससे कहा। मैंने आपको देखा है। उन्होंने प्रकाश को स्वयं से दूर मोड़ा और एक बालिका पर डाल दिया।

उन्होंने कभी मुझसे उनकी शक्तियों में विश्वास करने को नहीं कहा। जब मैंने अंततः उनसे पूछा, बारह वर्ष बाद, कि क्या वे मेरे पुत्र के विषय में जानते थे, तो उन्होंने यह नहीं कहा *मैंने यह किया।* उन्होंने कहा *ईश्वर ने मुझे बताया।* उन्होंने स्वयं को वह बनाया जिसे बताया गया, कभी वह नहीं जिसने किया।

उन्होंने कभी मुझसे किसी सिद्धांत को स्वीकार करने को नहीं कहा। उन्होंने मेरे सबसे तीखे प्रश्न का उत्तर एक टूटी हुई जीप से दिया और मुझे उसे बीस वर्ष ढोने दिया। उन्होंने मन के विषय के मेरे प्रश्न का उत्तर उस प्रश्न को ही घोलकर दिया। उन्होंने ईश्वर के विषय में एक बालिका के प्रश्न का उत्तर उस बालिका की ओर संकेत करके दिया। उन्होंने मुझे कभी कोई ऐसा निष्कर्ष नहीं थमाया जिसे मैं लिख लेता और निपटा देता।

उन्होंने तो कभी मुझसे उनका आँख मूँदकर आज्ञापालन करने को भी नहीं कहा। जब मैं ऐसा करने में विफल रहा — एक कीड़े का काटना, एक बगीचा, एक सादा आदेश जिसका कारण मैं न देख सका — तो उन्होंने मुझे दंड नहीं दिया। उन्होंने मुझे, एक अकेली सुबह के लिए, अपनी ही असावधानी की क़ीमत अनुभव करने दी, और फिर दोपहर तक वे वही स्नेहपूर्ण व्यक्ति थे, क्योंकि उन्होंने मेरी विफलता को वही पढ़ा जो वह थी: अवज्ञा नहीं, बल्कि अज्ञान, और अज्ञान में क्षमा करने को कुछ नहीं होता, केवल सिखाने को कुछ होता है।

तो फिर उन्होंने क्या माँगा, पच्चीस वर्षों में?

उन्होंने मुझसे साधना करने को कहा। बैठने को, श्वास को देखने को, वह कार्य करने को जिसे केवल मैं कर सकता था। उन्होंने मुझसे चिंतन करने को कहा — उस जीप, उस चिता, उस एक नदी को ढोने को, जब तक कि वे परिपक्व न हो जाएँ। उन्होंने मुझसे *देखने* को कहा। निष्कर्ष निकालने को नहीं। देखने को।

उन्होंने मुझसे, दूसरे शब्दों में, भोगने को कहा — जो ठीक वही है जो मैंने एक मित्र से, एक भोजनालय के बाहर, एक जीवन-भर पहले कहा था कि सत्य के लिए आवश्यक है। *सत्य को भोगना पड़ता है। उसे किसी मनुष्य पर घटित होना पड़ता है।* मैंने वह एक पुस्तक को अस्वीकार करने के लिए कहा था। उन्होंने एक चौथाई शताब्दी उसे मुझ पर घटित कराने में बिताई।

◆

मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मैं कहाँ पहुँचा हूँ, और मैं सटीक रहना चाहता हूँ, क्योंकि वह सटीकता ही अंतिम उपहार है जो मैं आपको दे सकता हूँ।

मैं *मुझे ईश्वर मिल गया* पर नहीं पहुँचा हूँ। वह ऐसा वाक्य नहीं जिसे मैं लिख पाने और उसका अभिप्राय रख पाने में समर्थ हूँ। वह बहुत अधिक होगा, और वह उस सावधान व्यक्ति के प्रति असत्य होगा जो होने का मैंने इस पुस्तक के हर पृष्ठ पर प्रयास किया है, और वह उस विधि को धोखा देगा जो उन्होंने मुझे सिखाई, जो कभी उससे अधिक का दावा न करना थी जितना वास्तव में घटित हुआ था।

यहाँ वह है जो मैं लिख पाने, और उसका अभिप्राय रख पाने में समर्थ हूँ।

पच्चीस वर्षों में — एक ऐसी पुस्तक के माध्यम से जिसे मैंने अस्वीकार किया और रख न सका, एक ऐसे मन के माध्यम से जो रुका और मुझे उसे रुकते देखने दिया, एक पूर्वज्ञात पुत्र और एक छड़ी और एक छोटे फ़्लैट में कहे गए एक नाम के माध्यम से, ऐसे स्वप्नों के माध्यम से जो मृत्यु की बात करते थे और जागृति का अर्थ रखते थे, ग्रीष्म के शुष्क हृदय में एक वर्षा और एक ऐसी चाल के माध्यम से जो मैंने देखने से पहले देखी और एक संगमरमर के पर्वत के शिखर पर ज्ञान की एक झील के माध्यम से — इस सबके माध्यम से, क्रमशः, अपने समूचे प्रशिक्षण और अपने समूचे स्वभाव के विरुद्ध, हर वह अनुभव जिसे मैं समझा न सका, किसी ऐसी वस्तु में संचित हो गया जिसे मैं अब समझा-बुझाकर किनारे नहीं कर सकता। मैं यह नहीं कहता कि वे ब्रह्म थे। मैं यह कहता हूँ कि मैं, पच्चीस वर्षों तक, ठीक उसी अवस्था की उपस्थिति में जिया हूँ जिसे उपनिषद वर्णन करने का प्रयास करते हैं, और कि मुझमें वह हर वस्तु जो कभी ऐसी उपस्थिति को समझा-बुझाकर किनारे करना जानती थी, एक-एक अनुभव करके, मौन हो गई है।

वह कोई निष्कर्ष नहीं है। वह एक दशा है। उन्होंने मुझे कोई निष्कर्ष नहीं दिया। उन्होंने मुझे एक दशा दी — उस मनुष्य की दशा जिसके निश्चय, कोमलता से और स्थायी रूप से, उसके अपने अनुभव द्वारा दरका दिए गए हैं, और जिसने उन्हें फिर बंद करने का प्रयास करना छोड़ दिया है।

◆

और मुझे उनके बिना समाप्त नहीं करना चाहिए।

अनुपमा इसमें से किसी पर विश्वास नहीं करतीं। उन्होंने ये पृष्ठ पढ़े हैं — वे उस हर वस्तु की पहली पाठक हैं जो मैं लिखता हूँ — और वे उन पर विश्वास नहीं करतीं। वे मानती हैं कि वे उच्चतम कोटि के संत थे। वे यह भी मानती हैं कि वे वह देख सकते थे जो अन्य नहीं देख सकते। और वे, स्थिरता से, तनिक भी संदेह के बिना, यह मानती हैं कि इनमें से कुछ भी यह नहीं बदलता कि किसी व्यक्ति को कैसे जीना चाहिए: कि आपको ईमानदार होना चाहिए, और अपना कर्तव्य करना चाहिए, और दयालु होना चाहिए, और जीवन को जैसे वह आए वैसे लेना चाहिए, और वस्तुओं में अर्थ ढूँढ़ने नहीं जाना चाहिए। वे मानती हैं कि जो हुआ, वह हुआ; कि ब्रह्मांड जैसे उद्घाटित होता है वैसे उद्घाटित होता है; कि वे उस उद्घाटन का

भाग थे और उसमें कोई अचम्भे न किए। कुछ नहीं हुआ, वे उस छड़ी और उस गर्भ के विषय में कहती हैं। और वे अब भी यही कहती हैं।

मैं इसे आपके लिए सुलझाने वाला नहीं हूँ, क्योंकि यह मेरे लिए कभी सुलझा नहीं, और अंतिम पृष्ठ पर इसे सुथरे ढंग से बाँध देना वह एक बेईमानी होगी जो उससे पहले की समूची ईमानदारी को उलट सकती है। हमने एक ही पच्चीस वर्षों को देखा है — वही छड़ी, वही वर्षा, वही पुत्र — और मैंने एक सम्बोधन देखा है और उन्होंने एक उद्घाटन देखा है, और हम दोनों में से कोई कभी दूसरे को ग़लत सिद्ध नहीं कर पाया। हम, सुखपूर्वक, सच्चाई से, एक चौथाई शताब्दी तक, एक अकेले प्रकाशमान प्रश्न के दो विपरीत छोरों पर जिए हैं।

मैं मानने लगा हूँ कि यह मेरे विवरण में कोई दोष नहीं बल्कि उसमें सबसे गहन वस्तु है। यदि किसी मनुष्य की अपनी पत्नी, उसे पच्चीस वर्ष निकटतम दूरी से देखते हुए, आश्वस्त नहीं हुई — तो आप पर भी आश्वस्त होने का कोई दायित्व नहीं है। आप उत्कृष्ट संगति में हैं। आप उनकी संगति में हैं, जो सबसे अच्छी संगति है जिसे मैं जानता हूँ। उन्होंने मुझे एक चौथाई शताब्दी ईमानदार रखा, और वे इस पुस्तक को उसके अंतिम पृष्ठ पर ईमानदार रखती हैं, ठीक वहीं खड़ी जहाँ वे सदा खड़ी रही हैं, अनाश्वस्त और अविचलित और पूर्णतः शांत, जबकि उनका पति लिखता है कि वह उपनिषदों की अपनी अवस्था की उपस्थिति में जिया है। हम दोनों सत्य बोलते हुए। हम दोनों एक ऐसे ढंग से सही जिसका मेल नहीं कराया जा सकता। वह अंतराल ही वह है जहाँ मैं वास्तव में जिया हूँ, और मैं उसे आपको अपने ही विवाह से अधिक सुथरा अंत देने के लिए ढाँकूँगा नहीं।

◆

अतः मैं वहीं समाप्त करूँगा जहाँ वे मुझे सदा छोड़ते थे। छोर पर।

उन्होंने मुझे उत्तर नहीं दिए। मैंने उनसे बहुत-से प्रश्न पूछे, पच्चीस वर्षों में, और उन्होंने उनमें से प्रायः किसी का भी उस ढंग से उत्तर नहीं दिया जिस ढंग से मैंने पूछा — क्योंकि वे उत्तरों के व्यापार में न थे। वे दृष्टि के व्यापार में थे। वे मुझे नहीं बताते कि क्या देखना है। उन्होंने मुझे देखना सिखाया, और फिर उन्होंने वह देखना मुझ पर छोड़ दिया, क्योंकि देखना वह एक वस्तु है जो दी नहीं जा सकती, केवल जगाई जा सकती है। *अब जाग जाएगा,* उन्होंने उस सोई हुई वस्तु के विषय में कहा। अब वह जाग जाएगा। उन्होंने उसे मेरे लिए नहीं जगाया।

उन्होंने उसकी परिक्रमा की, धैर्यपूर्वक, जितने वर्ष भी लगें, जब तक कि वह स्वयं हिलने न लगे — और वह हिलना मेरा है, और अपूर्ण, और चलता हुआ, और यह इस पुस्तक की एकमात्र वस्तु है जिसके विषय में मैं पूर्णतः निश्चित हूँ।

वह यात्रा जो एक ऐसी पुस्तक से आरम्भ हुई जिसे मैंने निरस्त कर दिया था, समाप्त नहीं हुई है। वह समाप्त होती ही नहीं। मैं अब समझता हूँ कि सत्य एक मन से दूसरे मन में क्यों हस्तांतरित नहीं किया जा सकता, कोई भाष्य मुझे वह क्यों कभी न दे सकता जिसे मैं उस ऊबी हुई दोपहर उस अलमारी पर खोजने गया था — क्योंकि सत्य कोई सौंपा जाने वाला निष्कर्ष नहीं है। वह जगाई जाने वाली एक दृष्टि है। मेरे सद्गुरु ने मुझे उत्तर नहीं दिए। उन्होंने कुछ कहीं अधिक महान और कहीं अधिक कठिन किया, कुछ ऐसा जिसमें एक चौथाई शताब्दी लगी और जो समाप्त नहीं हुआ और जो इस पुस्तक के लिखे जाने या पढ़े जाने में समाप्त नहीं होगा।

उन्होंने मुझे देखना सिखाया।

और यदि इस पुस्तक ने अपना काम किया है, तो उसने आपकी यात्रा भी समाप्त नहीं की है। उसने, सम्भवतः, उसे आरम्भ किया है। जो कुछ भी मैंने यहाँ अंकित किया है — हर स्वप्न, हर प्रश्न, हर मौन, हर छोटा असह्य उत्तर — मैंने उसे इसलिए अंकित नहीं किया कि आप मुझ पर विश्वास करें, बल्कि इसलिए कि आप देखें। मैंने आपसे एक भी निष्कर्ष स्वीकार करने को नहीं कहा है। मैं केवल आपके बगल में चला हूँ, जैसे वे मेरे बगल में चले, और आपको वह दिखाया जो मैंने देखा, और वह देखना आप पर छोड़ दिया।

शेष आपका है।

अब वह जाग जाएगा।

परिशिष्ट — वे वचन जो उन्होंने कहे

इस समूची पुस्तक भर मेरे सद्गुरु के अपने शब्द वैसे ही आते हैं जैसे उन्होंने उन्हें कहा, हिंदी में। वे इन पृष्ठों की सबसे सच्ची वस्तुएँ हैं, और मैंने उन्हें यहाँ एक स्थान पर एकत्र किया है — ताकि कोई पाठक उन्हें एक साथ थाम सके, और उन पर लौट सके — प्रत्येक के उस सादे भाव के साथ जो मैं दे सकता हूँ, और इस टिप्पणी के साथ कि वह पुस्तक में कहाँ का है। मैं वे भाव केवल एक द्वार के रूप में देता हूँ। स्वयं शब्द ही वह कक्ष हैं।

"वे सब एक ही हैं।"

पहली सुबह उनका उत्तर, जब मैंने पूछा कि मन को कैसे शांत किया जा सकता है — और मेरे विखंडन का आरम्भ। (अध्याय ९)

"मैंने आपको देखा है।"

मेरी नौ वर्ष की पुत्री को उनका उत्तर, जब उसने दूरभाष पर पूछा कि क्या उन्होंने भगवान को देखा है। (अध्याय १६)

"मार डाला रे।"

वह छोटा परिहास जो उन्होंने, मुस्कुराते हुए, तब किया जब वे मेरी चार मंज़िल सीढ़ियों के शिखर पर पहुँचे — उनके वचनों में सबसे मानवीय, और मेरे सबसे प्रिय में से एक। (अध्याय १३)

"चिता सजी हुई थी, माने चित्त सोया हुआ है — अब जाग जाएगा।"

ग्यारह वर्ष बाद, उस चिता का उनका अर्थ-उद्घाटन जो मैंने अपने बचपन की भूमि पर स्वप्न में देखी थी। इस पुस्तक की आधारशिला। (अध्याय २३)

"मा प्रकृति है, तीन गुणों से बनी है, उसका विच्छेद शुरू हो गया है।"

उस स्वप्न का उनका अर्थ जिसमें मैंने अपनी माता को फेंके जाते हुए कुछ अनुभव न किया — यह संकेत कि आत्मा प्रकृति से मुक्त होने लगी थी। (अध्याय २२)

"अब मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा या बताऊँगा।"

एक कीड़े के काटने पर उनकी अवज्ञा करने के अगली सुबह — एक ऐसा हटाया जाना जो दोपहर तक उठा लिया गया, क्योंकि उन्होंने मेरी चूक को अज्ञान पढ़ा था, अवज्ञा नहीं। (अध्याय १८)

"जब ख़ूब बूँदा-बाँदी होगी तब जाएँगे।"

आश्रम के अभिषेक के लिए उनकी असम्भव शर्त — भारी वर्षा, तेईस मई को, उत्तर प्रदेश की ग्रीष्म के शुष्क हृदय में। (अध्याय २४)

"चलो, हम चलेंगे — हेलिकॉप्टर की तरह।"

उनका उत्तर जब वर्षा ठीक वैसे ही आई जैसा वचन दिया था और मेरे अपने लोग मुझसे विनती कर रहे थे कि मैं उन्हें उसकी बर्बादी के आर-पार न लाऊँ। (अध्याय २४)

"यह पुण्य तुम्हारे बुढ़ापे में काम आएगा।"

जो उन्होंने उस आश्रम की छोटी खिड़की पर कहा जो मैंने बनाया था, एक ऐसे गाँव की ओर देखते हुए जिसे वे देख सकते थे और एक घर जिसे वे न देख सकते थे। (अध्याय २४)

"यह गंगा है, बेटा। जगतानंद से गंगा और सुंदर लगती है।"

निस्तब्ध नीले जल की उस झील पर, संगमरमर के पर्वत के शिखर पर, एडमंटन के स्वप्न में। (अध्याय २७)

"बेटा, जागृति हो चुकी है।"

जो उन्होंने, फ़रीदाबाद के निजी जमघट में, तब कहा जब मैं उन्हें वह स्वप्न सुना चुका था। (अध्याय २७)

"इसके आगे भगवान ही पढ़ाएँगे। तुम्हारे मन जो उठता है, भगवान पहले से जानते हैं।"

जिस ढंग से उन्होंने वह जागृति मुझसे उसी साँस में ले ली जिसमें उन्होंने उसे दिया — संकेत करते हुए, जैसा वे सदा करते थे, स्वयं से परे ईश्वर की ओर। (अध्याय २७)

"जगत में आनंद ही जगतानंद है।"

मेरे शाब्दिक अनुमान का उनका सुधार, एक स्थान को एक अवस्था में, और एक नदी को ज्ञान में बदलते हुए। (अध्याय २७)

वंश-परम्परा पर एक टिप्पणी

यह वंश मेरे सद्गुरु से आरम्भ नहीं होता। यहाँ, स्पष्ट रूप से, वह वंश-परम्परा अंकित है जैसा मैं उसे जानने आया हूँ, ताकि पाठक उस नदी को देख सके जिसका मेरा अपना छोटा मोड़ एक भाग था।

सत्संगी महाराज — परमानंद जी के गुरु, और उस वंश का मूल जैसा वह मुझ तक पहुँचता है।

परमहंस स्वामी श्री परमानंद जी महाराज — मेरे सद्गुरु के गुरु। उत्तर प्रदेश के देवरिया ज़िले के रामकोला गाँव में, एक साधारण परिवार में जन्मे; एक चैंपियन पहलवान, अट्ठाईस वर्ष की आयु तक अपराजित, इससे पहले कि तीन दिव्य निर्देशों ने उन्हें मार्ग की ओर मोड़ा। उन्होंने चित्रकूट में, अनुसुइया में वन-कुटी स्थापित की, और उनके सिद्ध शिष्यों ने उत्तर भारत भर आश्रमों की एक शृंखला फैलाई। उन्होंने 1969 में निर्वाण प्राप्त किया।

परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानंद जी महाराज — मेरे सद्गुरु। कहा जाता है, राजस्थान में ओशिया में, लगभग 1932 में जन्मे; वे नवम्बर 1955 में, तेईस वर्ष की आयु में, जंगल में परमानंद जी के पास आए, और अपने गुरु के चरणों में लगभग पंद्रह वर्ष गहन ध्यान को दिए। *यथार्थ गीता* और अन्य कृतियों के रचयिता। उन्होंने एक बार भी दिव्यता प्राप्त करने का दावा नहीं किया, और दशक-दर-दशक हर उस व्यक्ति को भोजन, विश्राम, और आश्रय निःशुल्क दिया जो आया।

उस वंश के सिद्ध शिष्य, जिनमें से इस पुस्तक ने नाम दिए हैं: धरकुंडी के **स्वामी श्री सच्चिदानंद जी महाराज** और अनुसूया के **स्वामी श्री भगवानंद जी महाराज**, मेरे सद्गुरु के गुरु-भाई; और **स्वामी श्री राम बाबा जी महाराज**, **स्वामी श्री बच्चा बाबा जी महाराज**, और **स्वामी श्री नारद महाराज जी**, जो तेरह वर्ष के एक बालक के रूप में इस वंश के चरणों में आए।

जो पाठक समूची पुस्तक चल चुका है, वह, इस बिंदु पर, जंगल में एक पहाड़ी से नीचे आती तीन आकृतियों के एक विशेष स्वप्न को स्मरण कर सकता है, जिनके चेहरे कभी न दिखाए गए। मैंने परमानंद जी के तीन सिद्ध शिष्यों के तथ्य को उस स्वप्न की स्मृति के बगल में एक बार रखा, इन पृष्ठों में, और पीछे हट गया। मैं उसे न सुलझाने का अपना वचन निभाता हूँ। मैं केवल वंश को अंकित करता हूँ, और उसे उस स्वप्न के निकट, मौन में, छोड़ देता हूँ।

शब्दावली

शब्द उसी अर्थ में दिए गए हैं जिस अर्थ में वे इस पुस्तक में और मेरे सद्गुरु की शिक्षा में उपयोग किए गए हैं, न कि विस्तृत विद्वत्तापूर्ण परिभाषाओं के रूप में।

अध्यात्म — आत्मा का विज्ञान; विश्वास के बजाय भीतरी साधना के रूप में समझी गई आध्यात्मिकता।

आत्मा / आत्मन् — स्व; वह चेतना जो सच्चा विषयी है, शरीर और मन से भिन्न।

भगवद्गीता — कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर कृष्ण और अर्जुन का संवाद; वह मूल शास्त्र जिस पर *यथार्थ गीता* एक भाष्य है।

चिता — श्मशान की चिता।

चित्त — मन-पदार्थ; विचार की सतह के नीचे चेतना का आधार या क्षेत्र। *चिता* और *चित्त* की निकट-समानता ही अध्याय २३ के हृदय का श्लेष है।

गुण — तीन तंतुओं (सत्त्व, रजस्, तमस्) में से एक, जिनका गुँथाव, सांख्य दर्शन में, समूची प्रकृति का गठन करता है।

गुरु-भाई — "गुरु में भाई"; एक ही सद्गुरु का सहशिष्य।

जागृति — जागरण; आध्यात्मिक चेतना का उदय।

खटिया — एक सादी बुनी हुई खाट।

निर्वाण — अंतिम मुक्ति; यहाँ, एक सिद्ध आत्मा का देहावसान।

परमहंस — शब्दशः "परम हंस"; उच्चतम आध्यात्मिक अवस्था में स्थित व्यक्ति के लिए एक उपाधि।

प्रकृति — प्रकृति; आद्य भौतिक तत्त्व, तीन गुणों से बना, जिससे समूचा व्यक्त संसार बुना गया है, और जिससे आत्मा को पृथक किया जाना है।

पुण्य — पुण्य; भले और धार्मिक कर्म का फल।

साधु — एक विरक्त; वह जिसने आध्यात्मिक मार्ग के लिए संसार छोड़ दिया है।

साक्षी — साक्षी; वह चेतना जो मन को देखती है बिना मन हुए। पहली बार अध्याय ८ में झलकी।

समाधि — गहन तल्लीनता की अवस्था भी, और किसी संत के विश्राम-स्थल के ऊपर उठाया गया मंदिर भी।

सांख्य — पुरुष (चेतना) और प्रकृति के बीच भेद का वह शास्त्रीय दर्शन जो गीता के अधिकांश को आधार देता है।

सत्संग — सत्य की संगति; आध्यात्मिक प्रवचन के लिए एक जमघट।

श्वास यज्ञ — भीतरी "श्वास का यज्ञ"; एक ध्यान-साधना के रूप में श्वास का अवलोकन।

तत् त्वम् असि — "वह तू है"; उपनिषदों का महावाक्य, कि जिस स्व को कोई खोजता है वही वह स्व है जो खोजता है।

त्रिशूल स्थापना — त्रिशूल का प्रतिष्ठान; किसी साधना-स्थल के अभिषेक का संस्कार।

यथार्थ गीता — शब्दशः "गीता जैसी वह वास्तव में है"; भगवद्गीता पर मेरे सद्गुरु का भाष्य।

संदर्भ-ग्रंथ

प्राथमिक स्रोत — वंश-परम्परा

अड़गड़ानंद, स्वामी। *यथार्थ गीता*। श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानंद जी आश्रम ट्रस्ट। [भगवद्गीता पर वह भाष्य जिसने लेखक की यात्रा आरम्भ की; लगभग पंद्रह अंतरराष्ट्रीय और उतनी ही भारतीय भाषाओं में निःशुल्क उपलब्ध।]

अड़गड़ानंद, स्वामी। *जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति*। श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानंद जी आश्रम ट्रस्ट। [लेखक द्वारा अपने गुरु, परमानंद जी का जीवन-चित्र, और सिद्धि की तकनीकों का एक अभिलेख; उनकी लिखित कृतियों में सबसे पहली।]

अनुसुइया के परमहंस जी। श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानंद जी आश्रम ट्रस्ट। [अनुसुइया के परमहंस परमानंद जी का सचित्र जीवन।]

अड़गड़ानंद, स्वामी। *शंका समाधान*। श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानंद जी आश्रम ट्रस्ट। [रूढ़िवादी समाज के संदेहों के उत्तर।]

अड़गड़ानंद, स्वामी। *अमृतवाणी* — कबीर के पदों पर प्रवचन। [अध्याय २० में वर्णित सांकेतिक स्वप्न-शब्दावली के अधिकांश का सार्वजनिक मूल।]

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानंद जी आश्रम ट्रस्ट। प्रकाशित विवरण और सामग्री, जिनमें yatharthgeeta.com पर उपलब्ध सामग्री सम्मिलित है। [नौवें भाग में प्रलेखित जीवनी का स्रोत: तिथियाँ, वह पूर्वाभास, प्रदान किए गए सम्मान, और यथार्थ गीता की रचना का विवरण।]

संदर्भित शास्त्रीय ग्रंथ

भगवद्गीता।

प्रमुख उपनिषद — विशेषकर महावाक्य *तत् त्वम् असि* और साक्षी की शिक्षा के लिए।

कबीर के पद और दोहे, जैसा मेरे सद्गुरु के प्रवचनों में व्याख्यायित।

◆

"चलो, तुम आगे घर चलते हैं — ख़ूब अच्छा खिलाना-पिलाना, अच्छी जगह है।"

कल्याण आश्रम में, उस फ़्लैट के लिए निकलने से पूर्व जिसे उन्होंने देखा न था। (अध्याय १३)

"मौत ही तो ठीक जाती है इस संसार में।"

ठाणे के एक भरे हुए फ़्लैट में उस वृद्धा से, जिसने अच्छी मृत्यु माँगी थी — और जिसे बताया गया कि उसने वही एक वस्तु माँगी है जो कभी नहीं बिगड़ती। (अध्याय १३)

"सबके बच्चे फ़र्स्ट आ जाएँ।"

हँसते हुए, उस माता से जो चाहती थीं कि उनका पुत्र परीक्षा में प्रथम आए। उन्होंने एक बालक को दूसरे से ऊपर रखने से मना कर दिया और सबको आशीर्वाद दे दिया। (अध्याय १३)

"देखो — इसको किसने बुद्धि दी है?"

नगद की एक पगडंडी पर उस बंदर के विषय में, जिसने यह निकाल लिया था कि संतरा कैसे खोला जाए कि छिलके का रस आँखों में न जाए। लेखक के प्रथम दिनों की एक सुबह पूछा गया, और समझाया नहीं गया। (अध्याय १२)

"चलो, चलते हैं — नहीं तो गड़बड़ हो जाएगी।"

एमराल्ड प्लाज़ा में पत्नी के नए खुले बुटीक के विषय में, उससे कुछ महीने पूर्व जब परिवार के निकट कोई भूखी वस्तु आ पहुँची। (अध्याय २१)

"हम कह रहे हैं लीचड़ है, और यह कह रहा है महँगा है।"

दुकान में हँसते हुए, जब लेखक ने एक कुरते पर की गई टिप्पणी का उत्तर उसके मूल्य से दे दिया। (अध्याय २१)

"अब पांडेय भी बड़ा आदमी हो गया है — कहीं भी आ-जा सकता है।"

ऊँचे स्वर में, अन्य पुरुष में, उस शिष्य से जिसने अभी-अभी एक आश्रम बनवाया था और बिना खटखटाए शयनकक्ष में चला आया था। (अध्याय २४)

"आ जाएगी। कहीं भाग नहीं जाएगी।"

लाठी के एक धक्के के साथ, पालघर आश्रम में, उस व्यक्ति से जो भरे हॉल के आर-पार उस पत्नी के लिए चिल्ला रहा था जो तीस फ़ीट दूर थी। (अध्याय २४)

"तुम ब्राह्मण हो।"

पालघर आश्रम में, उस चिंतन से आँखें खोलने पर जिसमें लेखक ने अपने सद्गुरु के रूप को द्युतिमान श्वेत प्रकाश के रूप में देखा था, फैलते हुए, ब्रह्मांड को अधिष्ठान की भाँति थामे हुए। लेखक ने कुछ कहा न था। (नया अध्याय, अंतिम अध्याय से पूर्व)

"तुम ब्राह्मण हो।"

पालघर आश्रम में, जब लेखक ने उस चिंतन के बाद आँखें खोलीं जिसमें उनके सद्गुरु का रूप प्रकाश बन गया था और ब्रह्मांड को अधिष्ठान की भाँति थामे हुए था। महावाक्य, साधारण स्वर में, एक साधारण दोपहर। (नया अध्याय, भाग आठ)

"नाटे लोगों में नौ ऐब होते हैं।"

लेखक की लम्बाई पर उनका चिर-परिचित विनोद, लोगों के बीच किया गया और सबको प्रिय — जिस पर किया गया उसे भी। (नया अध्याय, भाग आठ)

"बदल कर अच्छे भी हो जाते हैं।"

हँसते हुए, जब उन्हें स्मरण दिलाया गया कि पहले उन्होंने नाटे लोगों में नौ ऐब बताए थे और अब नौ गुण बता रहे हैं। एक असंगति से निकलता हुआ व्यक्ति, और साधना का समूचा सिद्धांत — उन्हीं पाँच शब्दों में। (नया अध्याय, भाग आठ)

"जब तुम विदेश यात्रा करते हो, क्या खाते हो?"

2021 में पालघर की भीड़ में पूछा गया, एडमॉन्टन के उस स्वप्न के तीन वर्ष बाद जो एक ऐसे व्यक्ति के पास आया था जिसने उड़ान में मदिरा पी थी और मुर्ग़ा खाया था। इसके बाद कोई निर्देश नहीं आया। (नया अध्याय, भाग आठ)

◆

स्रोतों के विषय में एक टिप्पणी। जहाँ यह पुस्तक मेरे सद्गुरु के जीवन या उनके गुरु के जीवन के विषय में कोई तथ्य कहती है, वह आश्रम ट्रस्ट के प्रकाशित विवरणों और ऊपर की वंश-जीवनियों पर आधारित है, और मैंने पाठ में यह अंकित करने का प्रयास किया है कि क्या प्रलेखित है, क्या परम्परा में थामा जाता है, और क्या मेरा अपना अनुभव है। जहाँ यह मेरे सद्गुरु के कहे शब्दों को प्रस्तुत करती है, वे पच्चीस वर्षों की मेरी अपनी स्मृति से अंकित हैं, उनकी अपनी हिंदी में रखे गए। जो भी त्रुटि शेष रहती है वह मेरी है, परम्परा की नहीं।